॥ ॐ अर्हं नमः ॥

० श्री आत्म वल्लभ समुद्र इंद्रदिन्न सद्गुरुभ्यो नमः ०

'वल्लभ ग्रंथमाला' पुष्प–३

जैन प्रश्नमाला

(अर्ध सहस्री)

●

लेखक :

भारत दिवाकर, पंजाब केसरी, आचार्यदेव श्रीमद्विजय वल्लभ सूरीश्वर जी महाराज के शिष्य स्व: महातपस्वी पन्यास श्री बलवन्त विजय जी महाराज के शिष्यरत्न मधुरवक्ता विद्वान्

मुनि श्री हेमचन्द्र विजय जी महाराज



सम्पादक :

विद्वान् मुनिराज श्री हेमचन्द्र विजय जी महाराज

के शिष्यरत्न

मुनि श्री यशोभद्र विजय जी महाराज

- पुस्तक : जैन प्रश्न माला
- विषय : जैन सिद्धांत के सरल तथा गूढ़ ५०४ प्रश्न तथा उनके उत्तर
- लेखक : मुनि हेमचन्द्र विजय
- सम्पादक : मुनि यशोभद्र विजय
- प्रकाशक : श्रीमती राजमती जैन W/O स्व: ला० बाबू राम जैन
  बाबू राम कस्तूरी लाल जैन,
  N.H. 393, सर्कुलर रोड, जालन्धर

मुद्रक :
जसपाल प्रिंटिंग प्रेस,
कटड़ा कन्हैयां, अमृतसर
(पंजाब)

प्रथम संस्करण : प्रतियां ११००
वीर संवत् २५०९ : विक्रम संवत् २०४०
अप्रैल १९८३
मूल्य : १५/- रुपये

प्राप्ति स्थान :—

(१) भारतीय संस्कृत भवन
माई हीरां गेट, जालन्धर शहर (पंजाब)

(२) श्री माघी शाह जैन
वेट गंज लुधियाना (पंजाब)

(३) सोमचन्द डी. शाह
जीवन निवास के सामने, पालीताणा (गुजरात)

(४) सरस्वती पुस्तक भण्डार
हाथी खाना, रतनपोल, अहमदाबाद (गुजरात)

आशीर्वचन

काव्य शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां, निद्रया कलहेन वा।।

'जैन प्रश्नमाला' में मुनिराज श्री हेम चन्द्र विजय जी ने त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र, जीवाभिगम सूत्र तथा पन्नवणा सूत्र आदि ग्रन्थों से प्रश्नों का संकलन कर के एक मोतियों की माला का सुन्दर गुन्थन किया है यह जान कर प्रसन्नता हुई। हिन्दी में होने से हिन्दी-भाषा-भाषी जिज्ञासुओं के लिए यह संकलन उपयोगी सिद्ध होगा। यह पुस्तक समाज में ज्ञान वृद्धि का साधन बनेगी—ऐसा मेरा विश्वास है। निष्प्रमादी बन कर अध्ययन अध्यापन द्वारा ऐसी कृतियों का निर्माण करते हुए स्व पर कल्याण करते रहें। यही शासन देव से चाहते हैं।

विजयेन्द्र दिन्न सूरि
तपागच्छ जैन उपाश्रय
गट्टामण दरवाजा
पालनपुर

दिनांक २६-८-१९८२

समर्पणम्

परम पूज्य, शासन-प्रभावक, प्रशान्तमूर्ति, गच्छाधिपति, परमार
क्षत्रियोद्धारक श्री श्री १००८ आचार्य श्रीमद्विजयेन्द्र दिन्न
सूरीश्वर जी महाराज जिन की छत्र छाया में अनेक बार
रहने तथा धर्म चर्चा श्रवण करने का सौभाग्य
मिला, पूर्वावस्था से अद्यावधि जिनके अनन्त
उपकारों ने मुझ लघु को धर्म मार्ग पर
जोड़ने का सतत अनुग्रह किया।
उन्हीं श्री चरणों के अमोघ
आशीर्वाद एवं अपार
कृपा से मुझ
जैसे लघु में जैन आगम
के अनन्त रत्नाकर से इस
प्रश्नोत्तरी को संकलित करने का
अदम्य साहस उत्पन्न हो पाया है अतः
उन्हीं आचार्य श्री जी के कर कमलों में यह
प्रयास सादर समर्पित है।

चरणकिङ्कर
हेमचन्द्र विजय

विश्व पूज्य, पंजावदेशोद्धारक, न्यायांभोनिधि श्री श्री १००८ श्रीमद्
विजयानन्द सूरीश्वर जी महाराज के पट्ट प्रभावक पंजाब केसरी
आचार्य श्रीमद् विजय वल्लभ सूरीश्वर जी महाराज के
पट्टधर जिनशासनरत्न, राष्ट्रसंत शान्तमूर्ति आचार्य
श्रीमद् विजय समुद्र सूरीश्वर जी महाराज के
अद्वितीय पट्टालंकार परमार क्षत्रियोद्धारक
प्रशान्त मूर्ति गच्छाधिपति आचार्य देव



श्रीमद् विजय इन्द्र दिन्न सूरीश्वर जी महाराज

प्रशस्ति

जयन्तु वीतरागाः

जगाधरी
७-८-१९८२

श्री आत्मवल्लभसमुद्रसद्गुरुभ्यो नमः

आप का पत्र मिला। आप स्वनिर्मित जैन प्रश्न माला का प्रकाशन करवा रहे हैं यह जानकर प्रसन्नता हो रही है।

पंजाब देशोद्धारक श्रीमद् विजयानन्द सूरि जी महाराज (प्रसिद्ध नाम आत्माराम जी महाराज) द्वारा रचित जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तर पुस्तक के पश्चात् अपने समुदाय में आपका यह प्रथम प्रयास है। अतः विशेष प्रशस्य एवं श्लाघ्य है।

प्रश्न करना आसान है परन्तु प्रश्न का स्पष्ट, सत्य एवं सन्तोष प्रद उत्तर देना बहुत कठिन है। करीब ५०० प्रश्नोत्तरों से युक्त २५० पृष्ठों वाली पुस्तक का निर्माण और उसका प्रकाशन करवाने का आपका यह कार्य असाधारण है।

निरन्तर स्वाध्याय-शीलता, गंभीर चिन्तन-मनन, अध्यात्म रुचि, तत्त्व जिज्ञासा और विशाल वांचन के बिना ऐसी पुस्तक का निर्माण सम्भव नहीं।

आप प्रारम्भ से ही अध्यात्मनिष्ठ एवं तत्त्व चिन्तक रहे हैं।

आपकी दीर्घ स्वाध्याय तपस्या फलीभूत हुई है। तदर्थ आप हम सब के धन्यवाद के पात्र हैं। वर्तमान में स्वाध्याय प्रवृत्ति साधु साध्वी संस्था में अत्यल्प हो गई है। ऐसे समय में आपका यह प्रयास समाज के लिए आदर्श एवं प्रेरक रहेगा।

आप के इस सत्पुरुषार्थ से जैन संघ निश्चित लाभान्वित होगा, ऐसा विश्वास है।

गणी जनक विजय

प्रकाशकीय

जैन प्रश्नमाला के रूप में एक अद्वितीय संग्रह आप के हाथ में देते हुए हमें अतीव हर्षानुभूति हो रही है। जिस समय पूज्य विद्वान् मुनि श्री हेमचन्द्र विजय जी म० ने इस ग्रन्थ के विषय में बताया तो हम ने इस पुस्तक का प्रकाशन-कार्य अपने हाथ में लिया। पुस्तक प्रकाशन में अनेक कठिनाइयां आईं। लेकिन गुरुदेवों के आशीर्वाद से यह कार्य अंततः सम्पन्न हुआ। जैन सिद्धान्त का सरल शैली में अवबोध करा सके, ऐसे ग्रन्थ की अतीव आवश्यकता महसूस हो रही थी। हमारा विश्वास है कि इस ग्रन्थ के प्रकाशन से यह कमी पूरी हो सकेगी। सुज्ञ जिज्ञासु प्रायः जीवन व्यवहार में आने वाले अनेक विषयों का संकलन इस पुस्तक में देखेंगे। पूज्य लेखक मुनि श्री का यह वैदुष्यर्ण प्रयास अभिनंदनीय है।

सिद्धान्त जैसे कठिन ग्रन्थ का सम्पादन एक कठिन कार्य था। जो कि विद्वान् सम्पादक २६ वर्षीय युवा मुनिवर्य श्री यशोभद्र विजय जी के द्वारा दायित्व पूर्ण रीति से किया गया है। इस बात का पद-पद पर आप को परिचय मिलेगा। जसपाल प्रिंटिंग प्रैस तथा श्री जितेन्द्र जैन के सहयोग के लिए आभार व्यक्त करते हैं। द्रव्य सहायक दानवीरों के नाम इस ग्रन्थ में दे दिये हैं। यह ग्रन्थ जैन जैनेतर जिज्ञासुओं के लिये रुचिकर होगा तथा जैन दर्शन के तत्त्व ज्ञान के और भी गहन ग्रन्थ पढ़ने की प्रेरणा देगा।

इसी आशा के साथ
प्रकाशक

संपादकीय वक्तव्य

'जैन प्रश्नमाला' ग्रन्थ आपके हाथों में प्रस्तुत है। जैन दर्शन के परितः विस्तीर्ण तत्त्वरूपी रत्नों को एकत्र करके लेखक ने पाठकों को रत्नपुञ्ज सम यह ग्रन्थ दिया है। इस ग्रन्थ में गणितानुयोग, चरण-करणानुयोग तथा द्रव्यानुयोग को समान रूप से प्रधानता दी गई है, जिससे विषय रसपूर्ण हो गया है।

मानव-मस्तिष्क में समय समय पर प्रसूत होने वाली छोटी बड़ी विभिन्न प्रकार की दार्शनिक तथा व्यावहारिक शंकाओं को प्रश्न के रूप में उठाकर लेखक ने सरल शैली में उसका समाधान दिया है।

जैन धर्म से सम्बन्धित अन्य अनेक सरल तथा कठिन विषयों के अतिरिक्त-आत्मा, जीवों के भेद व विस्तार, सम्यग्दर्शन, कर्म, कालचक्र, ज्ञान, लोक, ६ द्रव्य, ९ तत्त्व, व्रत, गुणस्थान, जैन भूगोल, ६३ महा-पुरुषों के खास बोल, अष्ट पूजा, अरिहंत के गुण, अतिशय तथा वाणी के गुण, जैन धर्म की प्राचीनता और उसकी तर्क पूर्ण सिद्धि, त्रिक, लेश्या, ४ तथा १२ भावना आदि जैन दर्शन शिविर का अधिकतर पाठ्यक्रम भी पुस्तक में दे दिया गया है जिससे यह ग्रन्थ जैन समाज के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हो सके। प्रयत्न तो यह रहा है कि कोई भी ऐसा विषय अछूता न रहे जो कि किसी भी 'जैन' कहलाने वाले के लिए आवश्यक हो। विषय का संक्षेप, विस्तार, भिन्न-भिन्न प्रश्नों के रूप में विभाजन या एक स्थल पर कृत वर्णन, विषय की उपयोगिता के आधार पर किया गया है क्योंकि पुस्तक का उद्देश्य ज्ञान प्राप्ति के प्रति उदासीन जैन जनता को कुछ बोध कराना ही है। श्रुतसागर के बिन्दु रूप इस ग्रन्थ का पूरी समझ के साथ अध्ययन कर लेने के पश्चात् पाठक को जैन धर्म के ज्ञान की विशालता का कुछ तो अनुमान लग सकेगा।

इस ग्रन्थ में विवादास्पद विषयों तथा चर्चाओं को स्थान नहीं दिया गया है। पुस्तक कैसी है? यह निर्णय पाठकों को ही करना है। फिर भी यह बता देना आवश्यक होगा कि समस्त प्रश्नों को पूरी तरह समझ लेना साधारण पाठक के लिए कठिन ही होगा। जिस पाठक

को कुछ रूचि तथा ज्ञान है, उनके लिए यह ग्रन्थ अवश्य ही ज्ञानवर्धक रुचिकर तथा संग्रहणीय भी होगा।

ग्रन्थ की प्रामाणिकता के लिए जहां तक सुलभ हो सका-स्थान स्थान पर शास्त्रों एवं ग्रन्थों के उद्धरण दे दिये गए हैं। पुस्तक के विषय में विभिन्न विद्वानों की सम्मतियां, सहायक ग्रन्थ सूची तथा प्रश्न सूची भी दे दी गई है। परिस्थितिवशात् मैटर के बार बार बढ़ाने के कारण कोई कोई विषय ग्रंथ में पुनरूक्त प्रतीत होगा। प्रैस दूर होने के कारण एवं विहार में कतिपय अंतिम प्रूफ संशोधित न किए जाने के कारण कई स्थलों पर प्रैस दोष से शाब्दिक अशुद्धियां भी रह गई हैं, तदर्थ मुख्य अशुद्धिओं का शुद्धि पत्र भी ग्रन्थान्त में दे दिया गया है, अशुद्धियां सुधार कर पढ़ें।

कुछ बाधाओं के कारण ग्रन्थ कुछ विलम्ब से प्रकाशित हुआ है। ग्रन्थ के विद्वान् लेखक के द्वारा सम्पादन का दायित्व-पूर्ण कार्य अध्ययनादि में व्यस्त होने पर भी मुझे ही सौंपा गया। मैं इस दायित्व के निर्वाह में कहां तक सक्षम रहा हूं—यह निर्णय विचक्षणजनों को करना है। ग्रन्थ को उपयोगी तथा शुद्ध बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है, फिर भी ग्रन्थ में कहीं पर भावात्मक अशुद्धि या सैद्धांतिक त्रुटि रह गई हो तो पाठक हमें सूचित करने की कृपा करें।

जिन के द्रव्य से यह ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है वे आगे भी ज्ञान-प्रचार तथा साहित्य सेवा के क्षेत्र में कार्य करते रहें। शासनपति प्रभु महावीर तथा पूज्य गुरुदेवों से प्रार्थना है कि वे मुझे शासन तथा साहित्य की अधिकतम सेवा करने का बल प्रदान करें।

गच्छतः स्खलनं क्वापि, भवत्येव प्रमादतः।
हसंति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

जैन उपाश्रय
जालन्धर
फरवरी १९८३

मुनि यशोभद्र विजय

अपनी बात

जीवन के प्रारम्भ से ही मुझे जैन साहित्य के पठन-पाठन तथा लेखन में रुचि रही। दीक्षा काल का द्वितीय चातुर्मास विक्रम सं २०२८ में अपने पूज्य गुरु देव महातपस्वी श्री श्री १००८ पन्यास श्री बलवन्त विजय जी महाराज साहिब की छत्र-छाया में गुर्जर देशान्तर्गत बोटाद ग्राम में किया। चातुर्मास के प्रारंभ में ही मेरे अंतर्मन में इच्छा उत्पन्न हुई, कि मैंने अनेक ग्रन्थों का अध्ययन करने के पश्चात् सार-भूत लेखन रूप में जो संग्रह किया है, यदि उसे प्रश्नोत्तरी का रूप दे दिया जाय तो अधिक उपयुक्त रहेगा, इसी प्रेरणा को लेकर मैंने प्रश्नोत्तरी लेखन का कार्य प्रारंभ कर दिया। एक दिन दोपहर में मैं लेखन कार्य में व्यस्त था, पूज्य गुरुदेव अपने पाट पर विराजमान थे, मुझे व्यस्त देखकर फरमाने लगे "हेमचन्द्र ! यह क्या लेखन माला लिख रहे हो ?" मैं तत्काल ही उन की बात सुनकर खड़ा हो गया, और उनके चरणों में जाकर अपनी लिखी कापी उन के हाथों में दे दी। गुरु देव ने अच्छी प्रकार से उसे देखकर कहा, बहुत अच्छा कार्य कर रहे हो। लगन के साथ इसे पूर्ण करो। गुरु देव के आशीर्वाद से मेरे साहस में और भी वृद्धि हुई, और मैं प्रश्नोत्तरी को बढ़ाता चला गया। चातुर्मासान्त में लगभग १५० प्रश्न तैयार हो चुके थे। इस प्रकार शेष काल में समयाभाव होने के कारण हर चातुर्मास में मैं इस प्रश्नोत्तरी का कार्य आगे बढ़ाता रहा। विक्रम सं० २०२९ का चातुर्मास परम पूज्य गच्छाधिपति श्री श्री १००८ शान्तमूर्ति जिन शासन रत्न स्वर्गीय आचार्य विजय समुद्र सूरि जी की छत्र छाया में बड़ौदा शहर (गुजरात) (पजाब केसरी गुरु वल्लभ की जन्म भूमि) में किया। इस चातुर्मास में भी यह कार्य लगभग ३०० प्रश्नों तक पहुंच गया। पश्चात् विक्रम सं. २०३० का चातुर्मास पाटन में, २०३१ का सेवाड़ी (राजस्थान) में २०३२ का सोजत शहर (राजस्थान) में, २०३३ का दिल्ली में किया। चातुर्मास के अन्त तक ५०० प्रश्न पूरे हो गए, और मैं लिखी गई प्रश्नोत्तरी का स्वयं ही स्वाध्याय करता रहा। पश्चात् संवत् २०३७ में इस प्रश्नोत्तरी को छपवाने का निर्णय किया। सम्पादन

का कार्य-भार विद्वान् मुनिराज श्री यशोभद्र विजय जी को सौंपा गया, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया, अतः मुनि जी का मैं हार्दिक आभारी हूं।

आशा है—इस जैन प्रश्न माला ग्रन्थ के माध्यम से जैन जगत में एवं समस्त मानव समाज में ज्ञानोपासना की रुचि जागृत होगी। एवं मानव जीवन में आगे बढ़ते हुए परम पद की प्राप्ति होगी।

इसी शुभ कामना के साथ—
मुनि हेमचन्द्र विजय

अनुक्रमणिका

पञ्जाब केसरी, कलिकाल कल्पतरु, अज्ञान तिमिरतरणि

श्री श्री १००८

आचार्य श्रीमद् विजय वल्लभ सूरीश्वर जी

महाराज के शिष्य स्वर्गीय महान् तपस्वी पन्यासप्रवर

श्रीमद् बलवन्त विजय जी महाराज



लेखक के गुरु देव



लेखक :

मुनि श्री हेमचन्द्र विजय जी महाराज



जैन प्रश्नमाला

प्रश्न 1–आत्मा है, इस का प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है ?

उत्तर—आप के दादा के दादा या आप की दसवीं सौवीं लाखवीं पीढ़ी के बुजुर्ग थे, इस का प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है ? 'वे नहीं थे' ऐसा तो आप कह ही नहीं सकते। आप कहेंगे कि 'हमारी सौवीं लाखवीं पीढ़ी अवश्य थी, कारण कि उनका प्रमाण उन के कार्य के रूप में हम स्वयं ही हैं'। बस–उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर भी यही है, अर्थात् आत्मा इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष नहीं दिखने पर भी उसका कार्य तो प्रत्यक्ष दृष्टि-गोचर होता ही है। अतः आत्मा अनुमानगम्य है, प्रत्यक्षगम्य नहीं। अथवा—आत्मा प्रत्यक्षगम्य भी है, क्योंकि मैं हूं, इस प्रकार का अनुभव हमें प्रत्यक्ष ही होता है।

प्रश्न 2–आत्मा का प्रत्यक्ष कार्य क्या है, जिस से कि आत्मा की सिद्धि होती है ?

उत्तर—आत्मा चैतन्य, ज्ञान तथा दर्शन गुण वाला है। यह गुण दूसरे जड़ पदार्थों में दृष्टि-गोचर नहीं होता। ईंट, पत्थर, लोहा आदि में चैतन्य-ज्ञान-दर्शनादि गुणों का अभाव है, किन्तु हमारे स्वयं के अन्दर सुख, दुःख, चैतन्यादि गुणों का अनुभव अवश्य होता है, इस से कोई भी इन्कार नहीं कर सकता। आत्मा के प्रत्यक्ष कार्य-रूप देखना, जानना, सुनना, उठना, बैठना आदि क्रियाएं, जो शरीर के द्वारा होती हैं—जड़ शरीर का कार्य नहीं है, बल्कि शरीर में विद्यमान आत्मा का कार्य है। क्योंकि जब मृत्यु हो जाती है, तब यह शरीर तो विद्यमान ही रहता है, किन्तु जानना, सुनना, बोलना, दुःख सुखादि का अनुभव किंचित् भी नहीं होता। क्योंकि शरीर के अन्दर जो आत्मा चैतन्य, ज्ञान, दर्शन गुण वाला था, वह चला गया एवं समस्त क्रियाएं बंद हो गईं। अतः दर्शनादि तथा स्वैच्छिक क्रिया का आश्रय आत्मा है—इस अनुमान से भी आत्मा की सिद्धि होती है।

प्रश्न 3—प्रत्येक प्राणी में ज्ञान, दर्शन, तथा जानना, देखना आदि क्रियाओं का कारण आत्मा है। परन्तु आत्मा इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष दृष्टि-गोचर क्यों नहीं होता ?

उत्तर—प्रत्यक्ष प्रमाण से ही प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व मानना यह बुद्धिमत्ता नहीं है, क्योंकि वहुत सी वस्तुएं अनुभव आदि अन्य कारणों से भी सिद्ध होती हैं। जैसे:—पवन चलती है किन्तु प्रत्यक्ष किसने देखी है ? ध्वजादि हिलने से या शरीर में ठण्ड अनुभव होने से कहा जाता है कि पवन चल रही है। अथवा किसी व्यक्ति के पेट में दर्द होता हो या किसी को वहुत भूख लगी हो तो बड़े से बड़ा डाक्टर या सिविलसर्जन भी दर्द या भूख को प्रत्यक्ष नहीं दिखा सकता तथा वह स्वयं भी नहीं देख सकता, किन्तु सामने वाला व्यक्ति दर्द एवं भूख प्यास को (इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष न होने पर भी) अनुभव अवश्य करता है। यह ऐसी अनुभूति है जिस से कोई कदापि इन्कार नहीं कर सकता। इसी प्रकार आत्मा भी अनुभव गम्य है, चक्षु आदि इन्द्रियों से प्रत्यक्ष होने योग्य नहीं है।

(आचारांग श्रुतस्कंध अ-१-उ-१)

प्रश्न 4—आत्मा का लक्षण क्या है ?

उत्तर—आत्मा स्वभाव से चैतन्य स्वरूप, दर्शनज्ञानस्वरूप तथा अविनाशी है। (ठाणांग १, सूत्र २)

इसके अतिरिक्त पूर्ण चरित्र, तप, उपयोग तथा संपूर्ण शक्ति भी आत्मा का लक्षण हैं। कहा है :—

'उपयोगः लक्षणं' (तत्त्वार्थसूत्र अ० २ सू० ८)

नाणं च दंसणं चेव चरित्तं च तवो तहा।
वीरिअं उवओगो अ एअं जीअस्स लक्खणं ॥

(नवतत्त्व प्रकरण गाथा ५)

प्रश्न 5—आत्मा एवं परमात्मा में क्या अन्तर है ?

उत्तर—परमात्मा रागादि रहित है तथा जन्म मरण से भी रहित है जवकि संसारी आत्मा राग द्वेष सहित है तथा जन्म

मरण के चक्र में है। संसारी आत्मा आठों कर्मों से युक्त हैं जबकि मुक्तात्मा (परमात्मा) सर्वथा कर्म रहित हैं। एवं पूर्ण स्वभाव दशा में लोकाग्र-भाग पर विराजमान है।

प्रश्न 6–कषाय एवं रागादि परिणाम आत्मा का स्वभाव है या विभाव है ?

उत्तर—क्रोध, मान, माया, लोभ एवं रागादि परिणाम मोहनीय कर्म के उदय से उत्पन्न होते हैं। मोह आत्मा की विभाव दशा है। आत्मा का स्वभाव तो वीतरागता तथा निर्विकल्प दशा है किन्तु विभाव दशा के कारण कषाय परिणाम होने से आत्मा कर्मबंध करता है।

प्रश्न 7–आत्मा में रागादि के परिणाम क्यों होते हैं ?

उत्तर—सभी संसारी आत्माओं के साथ जो पूर्वकृत कर्मों की सत्ता, (स्थिति-अस्तित्व) है, उन पूर्वोपार्जित कर्मों के उदय से रागादि परिणाम उत्पन्न होते हैं, एवं शुभाशुभ कर्म का बंध होता रहता है।

प्रश्न 8–कर्म-सत्ता आत्मा के साथ कब से है ?

उत्तर—कर्म सत्ता संसारी आत्मा के साथ अनादिकाल से ही लगी हुई है, प्रतिक्षण आत्मा के साथ कर्मों का अपचय उपचय होता रहता है। आत्मा एवं कर्म अनादि काल से नीर-क्षीर के सदृश सम्मिलित हैं।

प्रश्न 9–यदि आत्मा एवं कर्म का सम्बन्ध अनादि-कालीन माना जाये तो फिर आत्मा कभी भी कर्म से मुक्त नहीं हो सकेगी। आत्मा और कर्म अनंत काल तक एकत्र रहेंगे तथा मुक्तावस्था की बात निराधार हो जायेगी। क्या समाधान है ?

उत्तर—आत्मा एवं कर्म का अनादि सम्बन्ध स्वभाव से नहीं है, बल्कि अनादि प्रवाह से है। उदाहरणार्थ—नदी में जो पानी वर्तमान

1. आगमों की भाषा में इसे कार्मण शरीर कहा है।

में है, क्षण बाद वह पानी निकल जायेगा तथा नया पानी आ जायेगा। क्षण बाद वह भी निकल जायेगा, फिर नया पानी आ जायेगा। ठीक इसी प्रकार पूर्वोपार्जित कर्म उदय में आकर क्षय होते रहते हैं एवं साथ ही साथ नया नया कर्म बंध भी होता रहता है। आत्मा व कर्म अनादि प्रवाह से इकट्ठे चले आ रहे हैं। कोई भी कर्म अनादि काल से आत्मा के साथ नहीं है। जब किसी भव्यात्मा के मिथ्यात्व का उदय रुक जाये, और वह सम्यक्त्व प्राप्त कर क्षपक श्रेणि पर आरूढ़ होकर शुक्लध्यान के द्वितीय भेद में पहुंच जाए, तव वह समस्त मोहनीय कर्म का नाश कर डालता है, (इस अवस्था में नवीन कर्म बंध रुक जाता है) जिस के परिणाम स्वरूप घाती कर्मों का क्षय होने पर केवल ज्ञान प्राप्त होता है। एवं आत्मा वीतराग, सर्वज्ञ दशा को प्राप्त होता है। एवं जो अघाती कर्म शेष हैं, वह आयुष्य के अन्त में अन्तर्मुहूर्त्त के अन्दर ही समाप्त हो जाते हैं और आत्मा एक समय में लोकाग्र भाग कर विराजमान हो जाता है। अर्थात् समस्त कर्मों से सर्वथा मुक्त हो जाता है तथा पुनः कर्मलिप्त नहीं होता।

प्रश्न 10–केवल ज्ञान के पश्चात्, क्या केवली भगवन्त का किसी भी प्रकार का कर्मबंध नहीं होता ?

उत्तर—केवल ज्ञान के पश्चात् केवली भगवन्त का मात्र अघाती कर्म का ही बंध होता है, जिस से आत्मा की किसी भी प्रकार की हानि नहीं होती। तात्पर्य यह है कि केवली भगवन्त का मात्र वेदनीय कर्म का प्रकृतिबंध तथा प्रदेश बंध ही होता है जो कि महत्त्वहीन है। कारण कि केवली भगवन्त का कर्म, प्रथम समय में बंध होकर द्वितीय समय में उदय में आ जाता है तथा तृतीय समय में उसकी निर्जरा हो जाती है। इसी कारण केवली भगवन्त का कर्मबंध क्षन्तव्य कहा गया है।

प्रश्न 11–शुक्ल ध्यान के कितने भेद हैं ?

उत्तर - शुक्लध्यान के चार भेद हैं :
पृथक्त्ववितर्कसविचार, एकत्ववितर्कनिर्विचार,
सूक्ष्मक्रियाअप्रतिपाती एवं समुच्छिन्नक्रियाऽनिवृत्ति।

प्रश्न 12–इस काल में (पांचवें आरे में) शुक्लध्यान हो सकता है या नहीं ?

उत्तर—इस काल में शुक्लध्यान की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसी कारण वर्त्तमान समय में मोक्ष प्राप्ति नहीं हो सकती। आजकल धर्मध्यान ही हो सकता है। आज की समस्त धर्म क्रियाएं धर्मध्यान में ही समाविष्ट होती हैं।

प्रश्न 13–आत्मा मुक्त होने के पश्चात् कहां जाता है ?

उत्तर—आत्मा सर्व कर्मों से मुक्त होने के पश्चात् लोकाग्रभाग पर एक समय में ही पहुंच जाता है। आत्मा की यह ऊर्ध्वगति स्वाभाविक ही होती है। जैसे—तुम्बी को मिट्टी का लेप कर पानी में डाल दिया जाये तो ज्यूं ज्यूं मिट्टी उतरती जायेगी, तुंबी स्वाभाविक रूप से पानी के ऊपर आ जायेगी। तथा जैसे–कुम्भार का चाक, चला कर छोड़ देने के वाद भी, स्वयं चलता रहता है, वैसे ही आत्मा संसार चक्र से छूट जाने पर भी ऊर्ध्वगति करता है और लोकाग्र भाग पर पहुंचकर सदा के लिए निश्चल हो जाता है।

प्रश्न 14–लोकाग्र स्थान (लोक का ऊपरी अन्तिम भाग) यहाँ से कितनी दूर है, एवं चौड़ाई में कितना है ?

उत्तर—लोकाग्र भाग समभूतला पृथ्वी[1] से सात रज्जू प्रमाण ऊंचा है। एवं चौड़ाई में एक रज्जू प्रमाण गोलाकार है।

(लोक प्रकाश भाग २ सर्ग १२)

प्रश्न 15–सिद्धशिला लोकाग्र भाग से कितनी नीची है, उसकी लम्बाई चौड़ाई कितनी है तथा वह किस आकृति में है ?

उत्तर—लोकाग्र भाग से एक योजन नीचे सिद्धशिला है। यह गोलाकार है तथा पैंतालीस लाख योजन लम्वी चौड़ी है। यह मध्य में

1. सुमेरू पर्वत के पास समभूतला नामक पृथ्वी का सपाट भाग है।

आठ योजन मोटी एवं अन्तिम किनारे पर मक्खी के पंख समान पतली है। इसकी आकृति उल्टे छत्र जैसी है।

प्रश्न 16–एक रज्जू का माप क्या है?

उत्तर—एक रज्जू असंख्यात योजन प्रमाण है। इसे उपमा द्वारा इस प्रकार समझाया गया है:—तीन करोड़ इकासी लाख सताईस हज़ार नौ सौ सत्तर (३८१२७९७०)। मन वज़न का एक भार माना गया है। ऐसे एक हज़ार भार का लोहे का ठोस गोला ऊपर से गिरे और गिरते गिरते वह गोला रास्ते में ६ महीने ६ दिन ६ पहर ६ घड़ी ६ समय के पश्चात् जितना क्षेत्र नाप कर नीचे आये उसे एक रज्जू कहा गया है। सम्पूर्ण लोक चौदह रज्जू प्रमाण ऊंचा है।

प्रश्न 17–मुक्तावस्था में आत्मा की अवगाहणा एवं कोई आकृति होती है या नहीं?

उत्तर—जीव के चरम शरीर की जितनी अवगाहणा (ऊंचाई) हो, उस से $\frac{2}{3}$ अवगाहणा मुक्तावस्था में आत्मा की होती है। तथा जिस अवस्था (खड़े, बैठे या लेटे आदि) में जीव मुक्त हुआ हो वैसी ही आकृति वहां पर होती है।

प्रश्न 18–सिद्धात्मा में तीनों योगों में से कौन सा योग विद्यमान है?

उत्तर—सिद्धात्मा के (मन. वचन, काया) में से कोई भी योग विद्यमान नहीं है। क्योंकि त्रयोदश गुणस्थान में मन की चंचलता नष्ट होकर मन पूर्ण समाधिस्थ हो जाता है लेकिन वचन व काया के योग विद्यमान होते हैं। पश्चात् चतुर्दश गुण स्थान में शैलेशीकरण क्रिया के समय आत्मा वचन एवं काया के योग से भी निवृत्त हो जात. है। इस कारण तेरहवें गुणस्थान को सयोगी केवली कहा है और चतुर्दश गणस्थान को अयोगी केवली कहा है।

प्रश्न 19–सिद्धात्मा को वाह्य सुख साधनों के अभाव में किसी भी

प्रकार का सुख नहीं होना चाहिये, जबकि जैनागमों में सिद्धात्मा को अनन्त सुखी कहा है। ऐसा क्यों ?

उत्तर—संसार के सभी दुःखों का मूल कारण मनुष्य के मन की इच्छाएं हैं। मनुष्य के मन में कई प्रकार की इच्छाएं उत्पन्न होती रहती हैं। पहली इच्छाएं पूर्ण नहीं हो पातीं कि अन्य इच्छाएं, वासनाएं उत्पन्न हो उठती हैं। इसी प्रकार ससारी जीव इच्छाओं तृष्णाओं के वशीभूत होकर सर्वदा दुःखानुभव करता ही रहता है, एवं संकल्पों, विकल्पों के जाल में उलझा ही रहता है। कभी भी संसारी जीव की इच्छाएं समाप्त नहीं होतीं। इसी कारण संसारी जीव अनंत दुःख सागर में डूबा रहता है। किन्तु सिद्धावस्था में आत्मा को किसी भी प्रकार की इच्छाएं तृष्णाएं वासनाएं एवं मोह ममता नहीं होती। सिद्धावस्था में आत्मा, शरीर-इन्द्रियां-मन आदि सभी उपाधियों से रहित है। वह निजस्वभाव[1] दशा में रमण करता है, अतः सुखी है। दुःख का कारण विभाव दशा है। सभी संसारी जीव विभाव दशा के कारण संसार में भ्रमण करते हैं, एवं सुखों से वंचित रहते हैं। सिद्धात्मा के विभाव दशा का पूर्णतया अभाव होने से उसे अनंतानंत आनंद है, सुख है। वह समस्त कर्मों से मुक्त होने के कारण, निराबाध अनुपम आनंद का धारक होकर अनंतानंत काल पर्यन्त स्वस्वभाव में ही रहता है। कभी भी स्वभाव-च्युत नहीं होता। संसार के चक्रवर्ती, राजा, देव, इन्द्रादि के सभी सुखों को इकट्ठा किया जाये, तथा उसे अनंत गुणा किया जाए तो भी सिद्धात्मा का सुख उस से अनंत गुणा कहा गया है।

प्रश्न 20—आत्मा मुक्त होने के पश्चात् लोकाग्र पर नहीं ठहर कर अलोक में जाय तो क्या आपत्ति है ?

उत्तर—सभी द्रव्यों के गमनागमन में सहायक धर्मास्तिकाय नामक एक द्रव्य है। वह लोकाग्र तक ही विद्यमान है। उस से आगे अलोक

---

1. आत्मा निजस्वभाव से अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत वीर्य (शक्ति) अनंत सुख एवं वीतरागता से परिपूर्ण है।

(स्याद्वाद मंजरी की टीका)

में उस द्रव्य का अभाव होने से, मुक्तात्मा आगे गति नहीं करता, अतः लोकाग्र पर ही ठहर जाता है।

प्रश्न 21–जबकि मुक्तात्मा में अनंत वीर्य (शक्ति) माना गया है। तो धर्मास्तिकाय की सहायता के बिना भी वह स्वशक्ति से अलोकाकाश में ऊर्ध्वगमन क्यों नहीं करता ?

उत्तर—वस्तुस्थिति यह है, कि सभी कार्य नियमानुसार ही होते हैं। नियम विरुद्ध कोई भी कार्य नहीं होता। जैसे–मछली में चलने की शक्ति स्वाभाविक ही है। किन्तु फिर भी वह पानी के अभाव में गतिमान् नहीं होती। इसी प्रकार मुक्तात्मा में अनंत शक्ति होने पर भी सहायक द्रव्य के अभाव में उसकी ऊर्ध्वगति नहीं हो सकती। यदि सहायक द्रव्य के अभाव में गति मान भी ली जाय, तो अलोक (जिस का प्रमाण अनंतानंत रज्जू है, जिस का कहीं पर भी अंत नहीं है) में वह मुक्तात्मा किस स्थान पर किस काल में जाकर ठहरेगा? उसकी गति निरन्तर चालू ही रहेगी, जो कि सर्वथा असम्भव एवं अमान्य है। अतः आगमों के कथन में श्रद्धा रखकर साधना के मार्ग पर चलने में आत्महित है। तथा यही तर्क संगत भी है। (अनुयोगद्वार)

(उत्तराध्ययन सूत्र-अ० २८ गा-७-१२)

प्रश्न 22–कर्मक्षय करके जीवात्माएं मोक्ष में जाती रहेंगी तो वहां पर मुक्त आत्माएं बहुत हो जाएंगी। तो वे सभी परमात्मा वहां इकट्ठे कैसे रहेंगे ?

उत्तर—यह ठीक है कि जैन दर्शन मुक्तात्मा को ही परमात्मा मानता है, दूसरा कोई भी संसार का कर्त्ता हर्त्ता परमात्मा जैन दर्शन को मान्य नहीं है। और जैन दर्शनानुसार मोक्ष में बहुत ही नहीं, अनंत मुक्तात्माएं हैं। वह सभी परमात्मा रूप होने से अनंत परमात्मा मानने में कोई आपत्ति नहीं है। यह ठीक है कि लोक में व्यवहार से एक परमात्मा माना गया है। जैन दर्शन भी सभी मुक्त आत्माओं का दर्शन, ज्ञान समान होने से एक ही स्वभाव तथा स्वरूप की दृष्टि से एक परमात्मा मान सकता है। किन्तु

निश्चय से प्रत्येक मुक्तात्मा परमात्मा है। अतः जैन धर्म अनंत परमात्मा भी मानता है।

प्रश्न 23–मुक्तात्माओं के रहने का स्थान लम्बाई एवं चौड़ाई में कितना है ?

उत्तर—जितनी लम्बाई चौड़ाई अढ़ाई द्वीपों की है, उतना ही क्षेत्र मुक्तात्माओं का है। अर्थात् पैंतालीस लाख योजन क्षेत्र में सिद्धात्मा विराजमान हैं।

प्रश्न 24–मुक्तात्माओं का क्षेत्र सीमित होने से क्या अनन्त आत्माओं के रहने में क्षेत्र संकुचित नहीं पड़ता होगा ? तथा क्या उन्हें परेशानी नहीं होती होगी ?

उत्तर—नहीं, कभी नहीं। कारण कि आत्मा अरूपी है। अरूपी पदार्थ क्षेत्र को रोकते नहीं हैं। उदाहरणार्थ, किसी कमरे में विजली का प्रकाश है। सारा कमरा प्रकाश से परिपूर्ण है। यदि उस कमरे में और प्रकाश कर दिया जाये तो क्या वह प्रकाश उस कमरे में समाएगा या नहीं ? तो कहना होगा कि वह प्रकाश भी उसी कमरे में अवश्य ही समाएगा। विजली आदि का प्रकाश रूपी पदार्थ है। जब वही स्थान (क्षेत्र) को नहीं घेरता, तो फिर अरूपी पदार्थों की तो बात ही क्या है ! अर्थात् अरूपी द्रव्य आत्मा क्षेत्र को नहीं रोकती अतः मुक्तात्माओं को भी संकुचन की परेशानी का सामना नहीं करना पड़ता।

प्रश्न 25–जैनदर्शन की मान्यता है कि अनादि काल से अनंत भव्यात्माएं कर्म-क्षय कर के मोक्ष में जा चुकी हैं तथा जा रही हैं। किसी काल में भी महाविदेह की अपेक्षा से मोक्ष मार्ग बन्द नहीं होता है। एवं मुक्तात्मा पुनः लौट कर संसार में कभी नहीं आती। तो क्या कभी ऐसा समय नहीं आ जायेगा कि समस्त आत्माएं मोक्ष में चली जायेंगी और यह संसार आत्माओं से खाली हो जायेगा ?

उत्तर—नहीं, कभी नहीं। अनंतानंत काल से यही क्रम चला आ रहा है। अनंत आत्माएं मोक्ष में जा चुकी हैं। भविष्य के अनंत काल में अनंत आत्माएं मोक्ष में जायेंगी, तो भी यह संसार जीवों से कभी खाली नहीं होगा। जैनागमों का कथन है कि इस चौदह रज्जू लोक में असंख्यात गोले सूक्ष्म निगोद के हैं। एक एक गोले में असंख्यात निगोद के शरीर हैं। एक एक शरीर में अनंतानंत जीव हैं और एक निगोद शरीर का अनंतवां भाग अभी तक मोक्ष में गया है। अनंत कोई सामान्य संख्या नहीं है। अनंत में से अनंत निकाल देने पर भी शेष अनंत ही रहेगा। उदाहरणार्थ, जैसे समय का प्रवाह अनादि काल से चला आ रहा है। भूतकाल में अनंतकाल व्यतीत हो चुका है। भविष्य का शेष काल भी अनंत ही है। जिस प्रकार समय का अन्त असम्भव है, उसी प्रकार संसारी जीवों का अन्त भी असम्भव ही है। यदि समय का अन्त आ जायेगा तो फिर संसारी जीवों का भी अन्त मान लेना। आकाश को सभी दर्शन मानते हैं किन्तु आकाश का अन्तिम छोर कभी किसी ने माना या देखा नहीं है। आकाश अनंतानंत है। इसी प्रकार जीव भी अनतानंत हैं।

प्रश्न 26–मुक्तात्माएं अधिक हैं, या संसारी आत्माएं अधिक हैं ?

उत्तर—जैन दर्शन अपेक्षावाद (अनेकान्तवाद) को लेकर हर वस्तु का निरूपण करता है। इसी कारण एक अपेक्षा से संसारी आत्माएं अधिक हैं। दूसरी अपेक्षा से मुक्तामाएं (मोक्ष में) अधिक हैं। ससारी जीव भी दो प्रकार के हैं। व्यवहार राशि वाले, तथा अव्यवहार राशि (सूक्ष्म निगोद) वाले। व्यवहार राशि वाले जीवों की अपेक्षा मोक्ष में अधिक आत्माएं हैं तथा अव्यवहार राशि वाले जीवों की अपेक्षा मोक्ष में आत्माएं कम हैं। संसार में अधिक हैं।

प्रश्न 27–व्यवहार राशि तथा अव्यवहार राशि वाले जीवों में क्या भेद है ?

उत्तर—संसार में जीव दो प्रकार के हैं। त्रस[1] एवं स्थावर[2]। स्थावर जीवों के दो भेद हैं—सूक्ष्म एवं बादर। स्थावर बादर जीव जो सर्वदा उपयोग में आते हैं। जैसे, मट्टी-पानी-पृथ्वी-अग्नि-वनस्पति, वायु। बादर वनस्पति में पाँचों प्रकार की काई (जो पानी के ऊपर आती है) एवं समस्त कंदमूलादि का समावेश होता है। यह व्यवहार राशि है। सूक्ष्मस्थावर वह है, जो समस्त चतुर्दश रज्जू लोक में व्याप्त है। तथा वह किसी भी उपयोग में नहीं आ सकती एवं छद्मस्थ के दृष्टिगोचर नहीं है। उसे ही अव्यवहार राशि वाले जीव कहा गया है।

(जीवाभिगम सूत्र।पन्नवणा टीका)

इस निगोद सूक्ष्म का संक्षिप्त वर्णन प्रश्नोत्तर 25 में देखें।

प्रश्न 28–सूक्ष्म निगोद के जीवों की उत्कृष्ट[3] व जघन्यायुष्य[4] कितनी है?

उत्तर—सूक्ष्म निगोद जीवों की उत्कृष्ट तथा जघन्यायुष्य अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण ही है। तथा यह जीव एक श्वासोच्छ्वास में कुछ अधिक सत्रह (१७) भव करता है। (जीव विचार प्रकरण, गा. १४)

प्रश्न 29–उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त तथा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त का समय कितना है?

उत्तर—नव समय का जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त है तथा ४८ मिन्ट में एक समय न्यून (कम) को उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कहते हैं।

प्रश्न 30–बादर निगोद वाले जीवों का उत्कृष्ट व जघन्यायुष्य कितना है?

उत्तर—बादर निगोद (साधारण वनस्पति) वाले जीवों का उत्कृष्ट व जघन्यायुष्य एक अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण ही है।

प्रश्न 31–बादर पृथ्वीकाय का उत्कृष्ट व जघन्यायुष्य कितना है, तथा उन जीवों के शरीर की आकृति कैसी है?

उत्तर—बादर[5] पृथ्वीकाय की उत्कृष्ट आयु बाईस हज़ार (२२०००) वर्ष है। तथा जघन्यायु अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण होती है। इन जीवों की

1. चलने फिरने वाले, 2. स्थिर, 3. अधिक से अधिक, 4. कम से कम
5. स्थूल।

आकृति अर्धचन्द्र सदृश एवं मसूर सदृश होती है।
(जीव विचार प्रकरण, गा. ३४)

प्रश्न 32–बादर अप्काय (जल के) जीवों की उत्कृष्ट व जघन्यायुष्य कितनी है? तथा इन के शरीर की आकृति कैसी है?

उत्तर—बादर अप्काय की उत्कृष्टायुष्य सात हज़ार (७०००) वर्ष है। एवं जघन्यायुष्य अन्तर्मुहूर्त्त की है तथा शरीराकृति पानी के बुद्बुदे के सदृश है। (जीव विचार प्रकरण)

प्रश्न 33–बादर तेउकाय (अग्नि) जीवों की उत्कृष्ट व जघन्यायुष्य कितनी है, तथा शरीराकृति कैसी है?

उत्तर—बादर तेउकाय (अग्नि) जीवों की उत्कृष्टायुष्य तीन दिन है एवं जघन्यायुष्य मात्र अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण है तथा शरीराकृति सूई के सदृश है। (जीव विचार प्रकरण, गा. ३४)

प्रश्न 34–बादर वायुकाय की उत्कृष्ट व जघन्यायुष्य कितनी है, तथा शरीराकृति कैसी है?

उत्तर—बादर वाउकाय जीवों की उत्कृष्टायुष्य तीन हजार (३०००) वर्ष है तथा जघन्यायुष्य अन्तर्मुहूर्त्त है। इनकी शरीराकृति ध्वजा के सदृश है। (जीव विचार प्रकरण, गा. ३४)

प्रश्न 35–वनस्पति काय जीवों के कितने भेद हैं?

उत्तर—वनस्पति जीवों के दो भेद हैं। प्रत्येक तथा साधारण।

प्रश्न 36–प्रत्येक वनस्पतिकाय जीवों की उत्कृष्ट व जघन्यायुष्य कितनी है, तथा शरीराकृति कैसी है?

उत्तर—प्रत्येक वनस्पति जीवों की उत्कृष्टायुष्य दस हजार वर्ष (१००००) है। जघन्यायुष्य अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण है। तथा आकृति विविध प्रकार की है। (जीव विचार प्रकरण)

प्रश्न 37–पृथ्वीकायादि-पांचों स्थावर जीवों की उत्कृष्ट व जघन्य अवगाहणा (ऊंचाई) कितनी है?

उत्तर—पृथ्वी काय, अप्काय, तेउकाय, वाउकाय, इन चारों स्थावरों की उत्कृष्ट व जघन्यावगाहणा अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी है। किन्तु वनस्पतिकाय की उत्कृष्ट अवगाहणा एक हज़ार (१०००) योजन एवं जघन्यावगाहणा अंगुल का असंख्यातवां भाग जितनी हो सकती है। (जीव विचार प्रकरण)

प्रश्न 38—दो इन्द्रिय वाले जीव कौन कौन से हैं, तथा उनकी उत्कृष्ट व जघन्यायुष्य कितनी हो सकती है ?

उत्तर—समुद्र में पैदा होने वाले सीप, कोड़ी, शंख, गिडोए एवं पानी में रहने वाले पूरे आदि[1] द्वींद्रिय प्राणी हैं। इन जीवों के शरीर तथा मुंह ही होता है। इन की उत्कृष्टायुष्य बारह वर्ष, एवं जघन्यायुष्य अन्तर्मुहूर्त्त हो सकती है।

(जीव विचार प्रकरण, गा. १५)

प्रश्न 39—तीन इन्द्रिय वाले जीव कौन कौन से हैं, तथा इनकी उत्कृष्ट व जघन्यायुष्य कितनी है ?

उत्तर—तीन इन्द्रिय वाले जीव-कीड़े, मकोड़े, कानखजूरा, धान्य में पैदा होने वाले जीवादि[2] हैं। इन जीवों के शरीर, मुंह एवं नाक यह तीन इन्द्रियां होती हैं। इनकी उत्कृष्टायुष्य उन्नचास (४९) दिन की है। तथा जघन्यायुष्य अन्तर्मुहूर्त्त हो सकती है।

(जीव विचार, गा. १६-१७)

प्रश्न 40—चार इन्द्रियवाले जीव कौन कौन से हैं, तथा इनकी उत्कृष्ट व जघन्यायुष्य कितनी है ?

उत्तर—चतुरिन्द्रिय[3] जीव-मक्खी, मच्छरों की सभी जातियां, पतंगे,

1. काष्ठ में पैदा होने वाले जीव, तथा शरीर के जखमों में पैदा होने वाले जीवादि।
2. तीन इन्द्रिय में, खटमल, जूं, लीख, विष्ठा के कीड़े, एवं लाल रंग वाली वीर व्होटी आदि हैं।
3. चतुरिन्द्रिय जीव के छः या आठ पांव होते हैं। तीन इन्द्रिय जीव के चार तथा छः पैर होते हैं। दो इन्द्रिय जीवों के प्रायः पैर नहीं होते

टिड्डी, बिच्छू, ततैये, (भिरड़) आदि हैं। इन जीवों के शरीर, मुंह, नाक, आंख यह चार इन्द्रियां होती हैं। इनकी उत्कृष्टायुष्य छः महीने है तथा जघन्यायुष्य अन्तर्मुहूर्त्त है।

(जीव विचार प्रकरण, गा. ३५)

प्रश्न 41–पंचेन्द्रिय जीवों के कितने भेद हैं?

उत्तर—पंचेन्द्रिय जीवों के चार भेद हैं। देवता, मनुष्य, तिर्यंच एवं नारकी। इन जीवों के शरीर, मुंह, नाक, आंख तथा कान यह पांच इन्द्रियां है। (जीव विचार प्रकरण)

प्रश्न 42–देवता कितने प्रकार के होते हैं, तथा उनकी उत्कृष्ट व जघन्यायुष्य कितनी हो सकती है?

उत्तर - देवता चार प्रकार के होते हैं। वैमानिक, ज्योतिष, भवनपति एवं व्यन्तर। देवताओं की उत्कृष्ट आयुष्य तेतीस सागरोपम तथा जघन्यायुष्य दस हजार (१००००) वर्ष हो सकती है।

(जीव विचार प्रकरण, गा. ३६)

प्रश्न 43–मनुष्यों की उत्कृष्टायुष्य व जघन्यायुष्य कितनी हो सकती है, तथा उनकी अवगाहना कितनी है?

उत्तर—मनुष्य दो प्रकार के हैं। अकर्मभूमिज (युगलिक) तथा कर्मभूमिज[1]। युगलिक मनुष्यों की उत्कृष्टायुष्य तीन (३) पल्योपम तथा जघन्यायुष्य पल्योपम का असंख्यातवां भाग वर्ष हो सकती है। उनके शरीर की ऊंचाई, उत्कृष्ट तीन कोस[2], तथा जघन्य ऊंचाई आठ सौ (८००) धनुष है। कर्मभूमिज मनुष्यों की उत्कृष्टायुष्य एक करोड़ पूर्व[3] तथा जघन्यायुष्य अन्तर्मुहूर्त्त हो सकती है। इनकी ऊंचाई उत्कृष्ट ५०० धनुष एवं जघन्य दो हाथ हो सकती है। (जीव विचार प्रकरण, गा. ३६)

---

1. कर्म भूमि–जहां युद्ध लेखन व कृषि हो, 2. कोस = 2 मील, 3. चौरासी लाख वर्ष को चौरासी लाख से गुणा करने से जो गुणनफल निकलता है, उसे एक पूर्व कहते हैं।

प्रश्न 44–पूर्वों की आयुष्य वाले मनुष्य, क्या आजकल भी विद्यमान हैं ?

उत्तर—भरत क्षेत्र वर्तमान विश्व की अपेक्षा से आजकल (वर्तमान काल में) पूर्वों की आयुष्य वाले मनुष्यों का अभाव है। किन्तु महाविदेह क्षेत्रों में आज भी पूर्वों की आयुष्य वाले मनुष्य विद्यमान हैं।

प्रश्न 45–तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट व जघन्यायुष्य कितनी हो सकती है ?

उत्तर—तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय जीव भी दो प्रकार के हैं। कर्म-भूमिज एवं अकर्मभूमिज। कर्म भूमिज तिर्यञ्च पांच इन्द्रिय वालों की उत्कृष्टायुष्य एक करोड़ पूर्व तथा जघन्यायुष्य अन्तर्मुहूर्त्त हैं। अकर्म भूमिज तिर्यञ्च पंचेन्द्रियों की उत्कृष्टायुष्य तीन (३) पल्योपम तथा जघन्यायुष्य एक पल्योपम का असंख्यातवां भाग है। (जीव विचार प्रकरण, गा. ३६)

प्रश्न 46–नारकी जीवों का उत्कृष्ट व जघन्यायुष्य कितना है, तथा नरक में पुरुष अधिक हैं या स्त्रियां अधिक हैं ?

उत्तर—नारकी जीवों का उत्कृष्टायुष्य तेतीस सागरोपम है तथा जघन्यायुष्य दस हज़ार वर्ष है। नरक में स्त्री पुरुष जाति का सर्वथा अभाव है, वहां पर सभी नारकी नपुंसक हैं।

(जीव विचार प्रकरण)

प्रश्न 47–देवताओं की उत्कृष्ट व जघन्य अवगाहणा (ऊंचाई) कितनी हो सकती है ?

उत्तर—देवताओं के शरीर की उत्कृष्ट अवगाहणा (ऊंचाई) सात हाथ तथा जघन्यावगाहणा एक हाथ हो सकती है।

(दण्डक प्रकरण, गाथा ६)

प्रश्न 48–सम्मूर्च्छिम मनुष्य कहां पर पैदा होते हैं, तथा इनकी जघन्योत्कृष्ट आयु तथा शरीर की ऊंचाई कितनी है ?

उत्तर—सम्मूर्च्छिम मनुष्य चौदह[1] प्रकार के गन्दे स्थानों में पैदा होते हैं। इनकी जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य अन्तर्मुहूर्त्त होती है। इनकी अवगाहणा अंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण होती है। यह जीव अत्यन्त सूक्ष्म होने से चर्मचक्षुओं द्वारा दृष्टिगोचर नहीं हो सकते। केवलि-गम्य ही हैं।

(जीव विचार प्रकरण, गाथा २३)

प्रश्न 49–तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय जीवों की जघन्योत्कृष्ट अवगाहणा (शरीर की ऊंचाई) कितनी है, एवं तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के कितने भेद हैं?

उत्तर—तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय जीवों के पांच भेद हैं—जलचर, स्थलचर, चतुष्पद, खेचर, भुजपरिसर्प उरपरिसर्प। जलचर एवं उरपरिसर्प की उत्कृष्टावगाहणा एक हजार योजन होती है। स्थलचर चतुष्पद की छः कोस, खेचर की नवधनुष, भुजपरिसर्प की नव कोस हो सकती है। इन सब की जघन्य अवगाहणा अंगुल का असंख्यातवां भाग कही है। यह उत्कृष्ट अवगाहणा, स्वयंभूरमण (मध्य लोक के अन्तिम समुद्र) समुद्र की अपेक्षा; देव कुरु, उत्तर कुरु क्षेत्रों की अपेक्षा तथा भरत क्षेत्र में अवसर्पिणी काल के प्रथम आरे की अपेक्षा से समझनी चाहिए। (पन्नवणा पद १ सूत्र ३२ से ३६)

(उत्तराध्ययन अध्याय ३६, गाथा १६९-१७२)

प्रश्न 50-नारकी जीवों की जघन्योत्कृष्ट अवगाहणा कितनी है?

उत्तर—नारकी जीवों की उत्कृष्ट अवगाहणा पांच सौ धनुष है एवं जघन्यावगाहणा तीन हाथ हो सकती है।

प्रश्न 51—देवता, मृत्यु के पश्चात् कहां कहां पर पैदा हो सकते हैं?

---

1. १-विष्ठा, २-पेशाब, ३-कफ, ४-नाक का मैल, ५-वमन, ६-पित्त, ७-पीप, बिगड़े हुए घाव के-खून में, ८-रुधिर में, ९-वीर्य में, १०-जीव रहित शरीर में, ११-स्त्री पुरुष के समागम में, १२-नगर के खाल में, १३-त्यागे हुए वीर्य के पुद्गलों में, १४-समस्त अशुचिस्थानों में।

उत्तर—देव एवं देवीयां मरने बाद पांच दण्डकों में ही पैदा हो सकते हैं। अन्य किसी दण्डक में पैदा नहीं हो सकते। पांच दण्डक यह हैं। पृथ्वी काय, अपकाय, वनस्पतिकाय, पंचेन्द्रिय मनुष्य तथा पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च।

(दण्डक प्रकरण)

प्रश्न 52–विस्तार पूर्वक देवताओं के कितने भेद हैं ?

उत्तर—बारह प्रकार के वैमानिक देव हैं। नव प्रकार के ग्रैवयक हैं। पांच प्रकार के अनुत्तर देव हैं, दस प्रकार के ज्योतिष हैं, दस प्रकार के भुवनपति हैं। सोलह प्रकार के व्यन्तर वाणव्यन्तर हैं। दस प्रकार के तिर्यकजृंभक हैं। नव प्रकार के लोकान्तिक हैं। तीन प्रकार के किल्विषक हैं। पन्द्रह प्रकार के परमाधार्मिक हैं। इस प्रकार नवानु प्रकार हुए, पर्याप्त एवं अपर्याप्त भेद करने से कुल एक सौ अठानवें (१९८) भेद देवताओं के होते हैं।

(जीव विचार प्रकरण, गाथा-२४)

प्रश्न 53–मनुष्य मर कर कहां कहाँ पैदा हो सकता है ?

उत्तर—मनुष्य मर कर, देवता में, नारकी में, मनुष्य में, तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में, दो इन्द्रिय में, तीन इन्द्रिय में, चौरिन्द्रय में, पृथ्वीकाय में, अपकाय में, वनस्पतिकाय में, पैदा हो सकता है। अर्थात् तेउ काय तथा वाउकाय में पैदा नहीं हो सकता।

(दण्डक प्रकरण गाथा-३८, पृष्ठ ८६)

प्रश्न 54–तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय मर कर कहाँ कहां पर पैदा हो सकता है ?

उत्तर—तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय मर कर चारों गतियों में उत्पन्न हो सकता है अर्थात देवगति में, मनुष्य गति में, पशु गति में, नरक में। तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय आठवें सहस्त्रार देव लोक तक जा सकता है। इस से ऊपर के देव लोक में नहीं जा सकता।

(दण्डक प्रकरण गाथा ३८, पृष्ठ ८६)

प्रश्न 55–नारकी जीव मर कर कहां कहां पर पैदा हो सकते हैं ?

उत्तर—नारकी जीव मर कर गर्भज मनुष्य में या गर्भज तिर्यंच में ही पैदा हो सकते हैं। अन्य किसी भी गति में पैदा नहीं हो सकते।

प्रश्न 56–जीवात्मा किस कारण से नरक में जाता है ?

उत्तर—नरक में जाने के चार कारण हैं। महापारिग्रह, महारम्भ, सारम्भ, पंचेन्द्रिय का वध, मांसाहार तथा रौद्रध्यान करने वाला भी नरक में जाता है। (रौद्रध्यान अर्थात अति बुरे विचार)

(ठाणांग-४ उद्देश्य-४ गाथा ३७३)

प्रश्न 57–तिर्यञ्च गति में जाने के क्या कारण हैं ?

उत्तर—गूढ़ हृदय वाला, (जिस के हृदय की वात कोई भी न जान सके), कपट से लोगों को ठगने वाला, गुणवान पर भी ईर्ष्या, द्वेष करने वाला नाप तोल कम अधिक लेने देने वाला, तिर्यञ्चगति में जाता है। (ठाणांग ४ उद्दे-४, गाथा-३७३)

प्रश्न 58–मनुष्य गति में जीव किस किस कारणों से पैदा होता है ?

उत्तर—हृदय का सरल स्वभावी हो, दयावान हो, गुणवाणों पर स्नेह रखने वाला हो; स्वभाव से नम्र हो, भद्र प्रकृति वाला हो, वह जीव मर कर मनुष्य बन सकता है।

(ठाणांग ४, उद्दे ४, गाथा ३७३)

प्रश्न 59–देव गति में पैदा होने के क्या क्या कारण हैं ? तथा क्या गृहस्थ भी देवगति में जा सकता है ?

उत्तर—गृहस्थ तथा साधु दोनों देव गति में जा सकते हैं अर्थात् सराग संयमी, देश विरति तथा अज्ञान तप करने वाला, अकाम निर्जरा करने वाला देवगति में जा सकता है।

(ठाणांग ४-३-४, गाथा ३७३)

प्रश्न 60–अनादि काल से आत्मा के संसार परिभ्रमण का क्या कारण है ?

उत्तर—आत्मा के संसार परिभ्रमण का मूल कारण राग द्वेष ही है। राग द्वेष व कषाय के परिणाम होने से नया नया कर्म वंध होता रहता है एवं इसीलिए कर्म बंध के पांच कारण कहे हैं। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग।

प्रश्न 61–जन्म-मरण से मुक्त होने का क्या उपाय है ?

उत्तर—जन्म मरण से मुक्ति का वास्तविक उपाय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र है। तत्वार्थ सूत्र के प्रथम अध्याय के प्रथम सूत्र में ही श्री उमास्वाति जी महाराज ने कहा है सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः।

प्रश्न 62–सम्यग्दर्शन की क्या परिभाषा है तथा सम्यग्दृष्टि का क्या लक्षण है ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन अर्थात् सच्ची दृष्टि, आत्म स्वरूप का सच्चा दृष्टि कोण, स्वपर का भेद विज्ञान। चैतन्य तथा जड़ का वास्तविक स्वरूप समझ कर उस पर पूर्ण श्रद्धा करना। तत्वार्थ श्रद्धाणं सम्यग्दर्शनं, यह भी तत्वार्थसूत्र का ही कथन है, कि जो तत्वों की श्रद्धा है। वह सम्यग्दर्शन है।

सम्यग्दृष्टि आत्मा पांच लक्षणों से युक्त होता है। शम-संवेग-निर्वेद, अनुकम्पा, आस्था।

शम—अर्थात् सम्यग्दृष्टि कषाय अधिक प्रवल नहीं होते उसके क्रोध। मान-माया लोभ शीघ्र शांत हो जाते हैं।

संवेग—अर्थात् वह आत्मा मोक्षाभिलाषी होता है। संसार के सुखों को तुच्छ समझता है। यहां तक कि वह राजा चक्रवर्ती तथा देवेन्द्रादि के सुखों की भी इच्छा नहीं करता। मात्र मोक्ष सुख की इच्छा रखता है।

निर्वेद—सम्यग्दृष्टि आत्मा-सांसारिक सुखों को दुःख का कारण मानता है तथा निर्लेप रहता है। सुखोपभोग करते हुए भी भोगों के प्रति सर्वथा अनासक्त रहता है।

अनुकम्पा—सम्यग्दृष्टि आत्मा का हृदय दयावान होता है। दुःखी को देख कर उसका हृदय कांप उठता है। वह यथा शक्ति तन-मन-धन द्वारा उस के दुःख को दूर करने का प्रयत्न करता है।

आस्था—सम्यग्दृष्टि आत्मा देव, गुरु, धर्म में पूर्ण श्रद्धावान होता है तथा वह छः बातों में श्रद्धा रखता है। आत्मा है, वह नित्य है, कर्म का कर्त्ता है, कर्म का भोगता है, आत्मा सर्व कर्मों से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है, तथा मोक्ष का उपाय भी है।

(योग शास्त्र प्रकाश २, गाथा-१५)

प्रश्न 63—गुणस्थानों की कुल संख्या कितनी है, तथा सम्यग्दर्शन कौन सा गुणस्थान है ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन चतुर्थगुण स्थान है, तथा कुल गुणस्थान चतुर्दश है. यह निम्न प्रकार से हैं :

मिथ्यात्व, सास्वादन, मिश्र, अविरति सम्यग्दृष्टि, देशविरति, सर्व विरति (प्रमत्त), अप्रमत्त, अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्म-सपरायण, उपशान्तमोह, क्षीणमोह, सयोगीकेवली, अयोगी केवली

(प्रवचन सारोद्धार द्वार ८९-९०, गाथा ६९४-७०८)

प्रश्न 64—गुणस्थान क्या वस्तु है ?

उत्तर—आत्मा के विशेष शुभाशुभ (परिणति) परिणामों को ही गुण-स्थान कहा गया है। एवं निश्चयनय से यह क्रियाओं का विषय नहीं है।

प्रश्न 65—जीव का मरण किस किस गुणस्थान में हो सकता है ?

उत्तर—जीव का मरण तीन गुणस्थानों को छोड़कर अन्य सभी गुण-स्थानों में हो सकता है। वह तीन गुणस्थानों के नाम निम्न प्रकार से हैं :

मिश्रगुणस्थान, क्षीणमोहगुणस्थान तथा सयोगी केवली गुणस्थान, इन तीन गुणस्थानों में जीव की मृत्यु नहीं हो सकती।

प्रश्न 66–परभव में कौनसा गुणस्थान साथ जा सकता है?

उत्तर—मिथ्यात्व, सास्वादन, सम्यग्दर्शन, यह तीन गुणस्थान ही, अर्थात इन में से कोई एक गुण स्थान पर भव में साथ जा सकता है।

प्रश्न 67–सिद्ध भगवान का गुणस्थान कौन सा है?

उत्तर—सिद्ध भगवान गुणस्थानातीत अवस्था को प्राप्त हैं। अर्थात वह परम विशुद्ध आत्मदशा में मग्न हैं। जिस प्रकार व्यक्ति महल की सभी सीढ़ीयां पार करके महल में प्रवेश कर जाता है। वैसे ही सिद्ध भगवान साधना की चतुर्दश श्रेणियों (गुणस्थानों) को पार करके अपने अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर चुके हैं।

प्रश्न 68–सम्यग्दर्शन कितने प्रकार का है?

उत्तर—सम्यग्दर्शन के अनेक भेद बताए गये हैं। किन्तु मुख्य दो भेद ही अधिक महत्वपूर्ण हैं, व्यवहार सम्यग्दर्शन तथा निश्चय सम्यग्दर्शन। व्यवहार सम्यग्दर्शन, वाह्य व्यवहार से दृष्टिगोचर हो सकता है। जैसे अरिहन्त देव की पूजा, उपासना, नमस्कार महामन्त्र का जाप करना, जैन दर्शनानुसार क्रियाएं करनी, नियम, पच्चक्खान करने, पांच महाव्रत धारी, कंचन, कामिनी के त्यागी, भिक्षावृति से निर्वाह करने वाले, पाद विहारी केशलुंचन करने वाले, जैन परम्परा अनुसार जीवन व्यतीत करने वाले साधुओं को गुरु मानना एवं जैनशास्त्रों के प्रति अनुराग रखना आदि यह सभी व्यवहार सम्यग्दर्शन के लक्षण हैं।

निश्चय सम्यग्दर्शन, अंतरंग का विषय है। अर्थात निश्चय सम्यग्दृष्टि आत्मा निजात्म स्वरूप का ज्ञाता एवं पूर्ण श्रद्धावान होता है। वह कभी भी आत्म स्वरूप के विषय में सशय शील नहीं होता, वह आत्मचिन्तन की गहराईयों में डुबकियां लगाया करता है। एवं उसके मोहनीय कर्म की सात प्रकृतियों का क्षय अथवा उपशम हो चुका होता है। एवं वह अर्धपुद्गल परावर्तन में ही अवश्य

मोक्ष प्राप्त करता है। निश्चय सम्यग्दर्शन केवली गम्य है।

(प्रवचन सारोद्धार द्वार १४९, गाथा ९४२ टीका)

प्रश्न 69—निश्चय सम्यग्दर्शन होने पर, क्या व्यवहार सम्यग्दर्शन की क्रियाएं, तप जपादि होता है या नहीं ?

उत्तर—निश्चय सम्यकत्व प्राप्ति हुए पश्चात भी प्राय: व्यवहार सम्यकत्व की क्रियाएं, नियम, पचक्खानादि होते हैं। निश्चय सम्यकत्वी व्यवहार का त्यागी नहीं बनता। व्यवहार से वह भी अरिहन्तादि को देव, महाव्रत धारी को गुरु, जिनप्ररुपित वचनों को स्वीकार करता है। निश्चयनय से उसे तीनों तत्वों में स्वयं का आत्मा ही प्रमाण भूत है, ऐसा लगता है। निश्चय सम्यकत्वी यदि अविरति सम्यग्दृष्टि है तो उसके यह व्यवहार क्रियाएं होना आवश्यक नहीं है। जैसे मगधाधिपति श्रेणिक राजा निश्चय सम्यकत्वी थे किन्तु अविरति थे।

(प्रवचन सारोद्धार द्वार १०९, गाथा ९४२ टीका)

प्रश्न 70—अभव्यात्मा को जातिस्मरण ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है या नहीं ?

उत्तर—अभव्यात्मा को जब अवधि ज्ञान (विभंग ज्ञान) हो सकता है तो जाति स्मरण क्यों नहीं हो सकता, अर्थात् हो सकता है। जैसे नारकी का अवधि ज्ञान मात्र एक योजन ही होता है किन्तु फिर भी वह अपना पूर्व भवादि जाति स्मरण ज्ञान द्वारा ही देखते हैं।

प्रश्न 71—अट्ठाईस लब्धियों में से अभव्यात्मा को कोई लब्धि प्राप्त हो सकती है, या नहीं ?

उत्तर—अभव्यात्मा को निम्नलिखित पन्द्रह लब्धियां प्राप्त हो सकती हैं:

आमोसहि, विप्पोसहि, खेलोसहि, जल्लोसहि, सव्वोसहि, अवधि, आसीविष, खीरमधुसप्पिआसव, कोठ, पदानुसारणी, बीजवुद्धि, तेजोलेश्या, शीतलेश्या, वैक्रिय, अक्षीणमहाणसी। शेष तेरह

लब्धियां अभव्यात्मा को प्राप्त नहीं हो सकती।

(ठाणांग-२, उद्देशा-२, श्रावक प्रज्ञप्ति, गाथा ६६-६७)

प्रश्न 72—अड्ढाइज्जेसु सूत्र में मुनियों को अट्ठारह हज़ार शीलांग के धारक बताया है। वह किस प्रकार से हैं?

उत्तर—पांच स्थावरकाय, चार त्रसकाय, एक अजीवकाय, यह दस भेद हुए, इन्हें दस यतिधर्म से, चार संज्ञा से, पांच इन्द्रियों से, तीन करण से, तीन योग से, उत्तारोतर गुणा करने पर कुल संख्या अट्ठारह हज़ार आयेगी। इसे ही शील के अट्ठारह हज़ार अंग कहा गया है।

प्रश्न 73—काल चक्र किसे कहते हैं?

उत्तर—दस कोटा कोटी सागर का एक उत्सर्पिणी काल है। वैसे ही, दस कोटा कोटी सागर का अवसर्पिणी काल है। दोनों को मिला कर वीस कोटा कोटी सागरोपम का एक काल चक्र वनता है।

(ठाणांग सूत्र २ उद्देशा १ गाथा-७४)

प्रश्न 74—उत्सर्पिणी व अवसर्पिणि के कितने कितने आरे हैं, तथा उनका क्या स्वरूप है?

उत्तर—प्रत्येक उत्सर्पिणी व प्रत्येक अवसर्पिणी काल के छह छह आरे होते हैं। उत्सर्पिणी काल दुःख की चरम सीमा से प्रारम्भ होकर सुख की चरम सीमा में समाप्त होता है। इसी प्रकार इसके विपरीत अवसर्पिणी काल सुख की चरम सीमा से प्रारम्भ होकर दुःख की चरम सीमा में समाप्त होता है।

उत्सर्पिणी काल के पहले आरे की स्थिति (२१०००) इक्कीस हजार वर्ष है। जिसे दुःखम दुःखम आरा कहते हैं। दूसरे आरे की स्थिति भी (२१०००) इक्कीस हज़ार वर्ष है। उसे दुःखम आरा कहते हैं। तीसरे आरे की स्थिति बयालीस हज़ार वर्ष न्यून, एक कोटा कोटी सागरोपम की है। उसे दुःखम सुखम आरा कहते हैं।

चौथे आरे की स्थिति दो कोटा कोटी सागरोपम की है। उसे सुखम दुःखम आरा कहते हैं। पांचवें आरे की स्थिति तीन कोटा कोटी सागरोपम की है, उसे सुखम आरा कहते हैं। छठे आरे की स्थिति चार कोटा कोटी सागरोपग है। उसे सुखम सुखम आरा कहते हैं। इस प्रकार प्रत्येक आरा भिन्न २ स्थिति वाला है। उत्सर्पिणी काल एवं अवसर्पिणीकाल में यह भी अन्तर है कि उत्सर्पिणी काल में हर वस्तु, आयु, अवगाहणा, बल आदि वृद्धि पाते हैं। एवं अवसर्पिणीकाल में। आयु, बल, अवगाहणा, सुखादि का ह्रास (हीनता) होता है। उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणि काल के आरों की काल स्थिति भी सर्वथा विपरीत ही है।

प्रश्न 75–तीर्थंकर भगवान् किस आरे में पैदा होते हैं ?

उत्तर—तीर्थंकर भगवान्, तीसरे तथा चौथे आरे में ही पैदा होते हैं। शेष आरों में पैदा नहीं होते। यह अनादि नियम है।

प्रश्न 76–सम्यग्दर्शन के मुख्य तीन भेद कौन से हैं ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन के उपशम, क्षय उपशम, तथा क्षायिक यह तीन भेद हैं। इन तीनों प्रकार के सम्यग्दर्शनों में क्षायिक सम्यकत्व सब से श्रेष्ठ है। क्षायिक सम्यकत्व में यह विशेषता है, कि वह आत्मा उसी भव में मोक्ष प्राप्त करता है। किन्तु यदि किसी आत्मा ने क्षायिक सम्यकत्व प्राप्ति से पूर्व ही अगले भव का आयुष्यवन्ध कर लिया हो तो फिर उस भव में मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। वह आत्मा अधिक से अधिक पांचवें भव में अवश्य ही मोक्ष प्राप्ति करता है।

प्रश्न 77–क्षायिक सम्यग्दर्शन से जीव की कौन सी कर्म प्रकृतियों का क्षय हो जाता है ?

उत्तर—मोहनीय कर्म की २८ प्रकृतियां हैं, जिस में २५ प्रकृतियां चारित्र मोहनीय की एवं तीन प्रकृतियां दर्शन मोहनीय की हैं। चारित्र मोहनीय में से अनंतानुबन्धी की चार प्रकृतियां एवं दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतियों का सर्वथा क्षय होने पर अर्थात

मोहनीय कर्म की सात प्रकृतियों का क्षय होने पर ही क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त होता है। (कर्म ग्रन्थ १, गाथा-१५)

प्रश्न 78–उपशम सम्यकत्व कैसा है ?

उत्तर—अनंतानुबन्धी कषाय की चार प्रकृतियां एवं दर्शन मोहनीय की तीनों प्रकृतियां, इन सातों प्रकृतियों का उपशम होने पर जो तत्त्वरुचि एवं आत्मपरिणाम उत्पन्न होता है, उसे उपशम सम्यकत्व कहते हैं। इस की उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त है एवं इसके द्वारा अर्धपुद्गल परावर्तन काल में ही अवश्य मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। उपशम सम्यकत्व एक भव में उत्कृष्ट दो वार प्राप्त हो सकता है। एवं मोक्ष जाने तक अधिक से अधिक पांच वार उत्पन्न हो सकता है।

प्रश्न 79–क्षायिक सम्यकत्वी जीव कभी मिथ्यात्व में जा सकता है, या नहीं ?

उत्तर—क्षायिक सम्यकत्व वाला जीव कभी भी मिथ्यात्व में नहीं जा सकता। कारण कि उस की मिथ्यात्व मोहनीय की तीनों प्रकृतियाँ क्षय हो चुकी हैं। उनका क्षय हो जाने के पश्चात् उस कर्म का (प्रकृति का) प्रादुर्भाव कदापि नहीं हो सकता। जैसे बीज जल जाने पर अंकुरोत्पत्ति नहीं होती। क्षायिक सम्यकत्व की स्थिति अनंत काल है। क्योंकि वह मोक्ष में भी विद्यमान रहता है।

प्रश्न 80–क्या, उपशम सम्यकत्व वाला जीव मिथ्यात्व में जा सकता है ?

उत्तर—उपशम सम्यकत्व की उत्कृष्ट स्थिति अंतर्मुहूर्त है। उपशम सम्यकत्व के अंतर्मुहूर्त पश्चात् यदि जीव सत्ता में रही हुई प्रकृतियों को (सातों प्रकृतियां) विशुद्ध परिणामों द्वारा क्षय कर डाले तो क्षायिक सम्यकत्वी होने से मिथ्यात्व में नहीं जा सकता। यदि उपशम सम्यकत्व काल के पश्चात् मिथ्यात्व मोहनीय का

उदय हो तो जीव अवश्य ही पुनः मिथ्यात्व में जाता है। यदि सम्यकत्वमोहनीय का उदय हो तो क्षयउपशम की प्राप्ति करता है।

प्रश्न 81—उपशम[1] सम्यकत्वी जीव उपशम श्रेणि को ग्रहण करता है, तो क्या वह उपशम श्रेणि द्वारा मोक्ष प्राप्ति कर सकता है?

उत्तर—उपशम श्रेणि वाला जीव उपशम श्रेणि द्वारा मोक्ष प्राप्ति नहीं कर सकता। कारण कि या तो वह ग्यारहवें गुणस्थान तक पहुंचते पहुंचते मृत्यु प्राप्त करता है। या ग्यारहवें गुणस्थान में भी मृत्यु पा सकता है, अथवा ग्यारहवें गुणस्थान (उपशान्तमोह) से नीचे अवश्य ही गिर जाता है, और यदि गिरता गिरता योग्य भूमिका पर संभल जाये, और पुनः उपशम श्रेणि ग्रहण करता हुआ उपशान्त मोह ग्यारहवें गुणस्थान में पहुंच जाये तो भी या मृत्यु प्राप्त करेगा, या अवश्य ही पुनः नीचे गिरेगा, यहां तक कि प्रथम गुणस्थान में भी आ सकता है, और यदि एक वार उपशान्त गुणस्थान से गिरने पर योग्य भूमिका पर संभल कर क्षपक श्रेणि का आश्रय ग्रहण करे, तो दसवें गुणस्थान से सीधा ही (क्षीण मोह) बारहवें गुणस्थान में पहुंच कर केवल ज्ञानादि प्राप्त कर सकता है। एवं उसी भव में मोक्ष प्राप्ति हो सकती है। किन्तु जो जीव दो बार उपशम श्रेणि ग्रहण करता है। वह उसी भव में क्षपक श्रेणि एवं मोक्ष प्राप्ति नहीं कर सकता।

(कर्मग्रन्थ २ तथा विशेषावश्यकभाषय, गा-१२८४)

प्रश्न 82—क्षयोपशम सम्यकत्व की जघन्योत्कृष्ट स्थिति कितनी हैं, तथा वह आत्मा कभी मिथ्यात्व में जाता है या नहीं?

उत्तर—क्षयोपशम की जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की है: एवं उत्कृष्ट स्थिति साधिक छ्यासठ (६६) सागरोपम है। अनन्तानुबंधी कषाय तथा उदय प्राप्तमिथ्यात्व को क्षयकर के अनुदय प्राप्त

1. उपशम सम्यकत्व की जघन्य स्थिति एक समय है।

मिथ्यात्व का उपशम करते हुए, या उसे सम्यकत्व रूप मे परिणत करते हुए, तथा सम्यकत्व मोहनीय को वेदते हुए, जीव के परिणाम विशेष को क्षयोपशम सम्यकत्व कहते हैं। इस की पुनः प्राप्ति का अंतर पड़े तो जघन्य से अंतर्मुहूर्त का तथा उत्कृष्ट देशोन अर्धपुद्गलपरावर्तन काल का पड़ सकता है। यह सम्यकत्व एक भव में जघन्य एक वार एवं उत्कृष्ट कई हज़ार वार प्राप्त हो सकता है। यह सम्यकत्व अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल में मोक्ष जाने वालों को जघन्य दो वार एवं उत्कृष्ट असंख्यात वार प्राप्त हो सकता है। क्षयोपशम सम्यकत्वी जीव यदि क्षपक श्रेणि का आश्रय (मिथ्यात्व का क्षय कर के) धारण करे तो मिथ्यात्व में नहीं जा सकता। यदि अंतमुहूर्त्त पश्चात् मिथ्यात्व का उदय हो जाये तो, अवश्य मिथ्यात्व में चला जाता है। क्षयोपशम सम्यकत्व में जीव की दृष्टि आत्मानुरूप वनती है। वीतराग कथित तत्वों पर श्रद्धा भी रखता है। परन्तु साथ में कुछ मोह का अंश भी रहता है। जैसे गच्छ मोह, वेष मोह, साधनादि का मोह होने से कभी कभी संशय शील भी हो उठता है। तथा कषाय भाव में उतर पड़ता है। इतना होने पर भी वह आत्मा अधिक से अधिक संसार परिभ्रमण करे तो भी अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल में अवश्य मोक्ष प्राप्त करता है।

(प्रवचन सारोद्धार द्वार १४९ गाथा ९४३ से ९४५ तथा कर्मग्रंथ प्रथम गा-१५)

प्रश्न 83–क्षायिक, उपशम तथा क्षयोपशम–इन तीनों सम्यकत्वों में से. इस काल में कौन से सम्यकत्व की प्राप्ति हो सकती है?

उत्तर—इस पांचवें आरे के जन्मे हुए मनुष्य को क्षायिक सम्यकत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। उपशम तथा क्षयोपशम में से किसी एक सम्यकत्व की प्राप्ति हो सकती है।

प्रश्न 84–क्या पांचवें आरे में केवल ज्ञान तथा मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है?

उत्तर—चौथे आरे में जन्मे हुए मनुष्य को पांचवें आरे में केवल ज्ञान तथा मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। जैसे—गौतम स्वामी जी, सुधर्मा स्वामी जी एवं जम्बूस्वामी जी पांचवें आरे में मोक्ष गये हैं। पांचवें आरे में जन्म ग्रहण करने वाला व्यक्ति केवल ज्ञान तथा मोक्ष, प्राप्त नहीं कर सकता।
(भगवतीशतक ७ उद्देशा ६ दुषमदुषमांधिकार,गाथा २८७-२८८)

प्रश्न 85–सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के बाह्य निमित्त क्या क्या है ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के बाह्यनिमित्त असंख्यात हो सकते हैं। जैन दर्शन किसी एक ही निमित्त का कदाग्रह नहीं करता। किन्तु व्यवहार से जिनागम तथा जिन प्रतिमा, सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के मुख्य निमित्त कहे जा सकते हैं।

प्रश्न 86–निश्चयनय से सम्यकत्व की प्राप्ति का क्या निमित्त कारण है ?

उत्तर—दर्शन मोहनीय की तीनों प्रकृतियों का तथा चारित्र मोहनीय की अनंतानुबंधी की चार प्रकृत्तियों का क्षय या उपशम हो जाना समकित प्राप्ति का निश्चय निमित्त है। इन सातों प्रकृतियों का क्षय या उपशम करने वाला ही सम्यग्दृष्टि होता है।

प्रश्न 87–अनादि मिथ्यात्वी जीव को सम्यकत्व की प्राप्ति कब होती है ?

उत्तर—आयुष्य कर्म के विना शेष सातों कर्मों की स्थिति जव घटते घटते एक कोटाकोटी सागरोपम में भी पल्योपम का असंख्यातवां भाग न्यून रह जाय, उस समय जीव यथाप्रवृत्तिकरण को प्राप्त होता है। इसे ग्रन्थि देश भी कहते हैं। यहां पहुंचने पर यदि जीव कर्मो की स्थिति को कुछ और कम करता है तो जीव अपूर्वकरण की प्राप्ति करता है। अपूर्वकरण प्राप्त होने पर ग्रंथि भेद (रागद्वेष की तीव्र परिणति का उपशम) होना प्रारम्भ

हो जाता है। उस के पश्चात् अनिवृत्ति करण नामक परिणाम उत्पन्न होता है। तत्पश्चात् अंतरकरण परिणाम आते ही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाती है।

(विशेषावश्यक भाष्य-गाथा १२०२-१२१८)

प्रश्न 88–अपूर्वकरण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस परिणाम द्वारा रागद्वेष की तीव्र गांठ (ग्रंथि) का भेदन होता है, उसे अपूर्वकरण कहते हैं। अपूर्व का अर्थ है—जो कभी पहले प्राप्त नहीं हुआ, करण अर्थात् परिणाम। जो परिणाम कभी भूत काल में उत्पन्न नहीं हुआ, उसे अपूर्वकरण कहा है। अपूर्वकरण को मुद्गर भी कहा है; क्योंकि जैसे भारी मुद्गर की चोट से किसी वस्तु का भेदन हो जाता है; वैसे ही इस परिणाम द्वारा अनादि काल की तीव्र राग द्वेष की परिणति मंद पड़ जाती है।

प्रश्न 89–ग्रंथि देश में आने से जीव को क्या लाभ होता है ?

उत्तर—ग्रंथि देश में आने से ही जीव को नमस्कार मन्त्र आदि सूत्रों की प्राप्ति हो सकती है। जो जीव ग्रंथि देश में (यथाप्रवृत्तिकरण में) नहीं आया, उसे नमस्कार मन्त्रादि सूत्रों की प्राप्ति भी नहीं हो सकती।

प्रश्न 90–आठों कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति कितनी कितनी है ?

उत्तर—मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति ७० कोटा कोटी सागरोपम की है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय तथा अन्तराय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति ३० कोटा कोटी सागरोपम है। नाम कर्म तथा गोत्र कर्म की उत्कृष्ट स्थिति २० कोटा कोटी सागरोपम है, तथा आयुष्य कर्म की उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागरोपम की है।

(नवतत्त्व प्रकरण गाथा ४०-४१)

प्रश्न 91–आयुष्य कर्म का बंध जीवन में कितनी बार, एवं कब होता है ?

उत्तर—आयुष्य कर्म का बंध जीवन में केवल एक बार ही होता है। और प्रायः करके समस्त आयुष्य के तीसरे भाग में होता है, यदि उस समय भी (पुनर्जन्म का) आयुष्य बंध न हो, तो शेष आयुष्य के तीसरे भाग में हो सकता है। यदि उस समय भी आयुष्य-बंध न हुआ हो तो, आयुष्य के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त्त में अवश्यमेव ही; पर भव का आयुष्य बंध होता है। छमस्थ जीव पर भव के आयुष्यबंध के विना वर्तमान शरीर का त्याग नहीं कर सकता।

प्रश्न 92–तीर्थंकर भगवान् के अष्टप्रातिहार्य कौन कौन से हैं ?

उत्तर—अशोक वृक्षः सुर पुष्पवृष्टिः, दिव्य ध्वनिश्चामर मासनंच।
भामण्डलं दुंदभिरात पत्रं, सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणाम् ॥

अर्थात्—अशोकवृक्ष[1], सुरपुष्पवृष्टि[2], दिव्यध्वनि[3], चामर[4], सिंहासन[5], भामण्डल[6], देवदुन्दभि[7], छत्र[8] ये ८ प्रातिहार्य हैं।

अशोक वृक्ष—जहां पर तीर्थंकर विराजमान होते हैं वहां उनके मस्तक के पीछे, उनके शरीर से बारह गुणा ऊंचा अशोक वृक्ष होता है।

सुरपुष्पवृष्टि—तीर्थंकर प्रभु के समवसरण में देवता पुष्पों की वृष्टि करते हैं।

दिव्यध्वनि—तीर्थंकर प्रभु की देशना (वाणी) में देवता विशेष प्रकार की ध्वनि भरते हैं।

चामर—देवता लोग तीर्थंकर प्रभु के दोनों ओर चामर ढुलाते हैं।

सिंहासन—तीर्थंकर के समवसण में तीन गढ़ होते हैं। ऊपर के तीसरे गढ़ पर प्रभु का सिंहासन होता है।

भामण्डल—तीर्थंकर प्रभु के मस्तक के पीछे, सूर्य से बारहगुणा तेजःपुंज होता है।

देवदुंदभि—देवता लोग दुंदभि (वाजा) वजाकर दूसरे देवताओं को समवसरण में चलने का सन्देश देते हैं।

छत्र—तीर्थंकर प्रभु के मस्तक के ऊपर तीन छत्र होते हैं।

(समवायांग सूत्र ३४ वां, सम्वेगधसत्तरी-हरिभद्रकृत)

प्रश्न 93–तीर्थंकर में तथा सामान्य केवली में क्या अन्तर है ?

उत्तर—तीर्थंकर बनने वाली आत्मा, तीर्थंकर बनने से पूर्व तीसरे भव में तीर्थंकर नाम कर्म का बंध करती है। तीर्थंकर देव दीक्षा से पूर्व वर्षीय दान देते हैं। तीर्थंकर देव का जन्म होते ही सौधर्म इन्द्र स्वयं तीर्थंकर के पास जाकर नमस्कार करते हैं, तथा तीर्थंकर प्रभु को सुमेरू पर्वत पर ले जाकर उनका जन्माभिषेक करते हैं। तीर्थंकर देव जन्मावस्था से ही अवधि ज्ञानी, तथा दीक्षा धारण करते ही मनःपर्यव ज्ञान की प्राप्ति करते हैं। छद्मस्थावस्था में पूर्ण रूप से मौन रहकर आत्मसाधना करते हैं, तथा मरणांतक कष्ट भी समभाव पूर्वक सहन करते हैं। तीर्थंकरों के जन्मावस्था से ही चार अतिशय होते हैं। केवल ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् वे देवताओं द्वारा रचित अष्टप्रतिहार्य युक्त समवसरण में विराजमान होकर धर्मोपदेश देते हैं। तीर्थंकर देव ३४ अतिशयों तथा वाणी के ३५ गुणों से युक्त होते हैं। उनके समवसरण (उपदेश सभा) में कम से कम १ करोड़ देवता विद्यमान रहते हैं। तीर्थंकर देव चतुर्विध संघ की स्थापना करते हैं। इत्यादि गुण सामान्य केवलियों में उपलब्ध नहीं होते, किन्तु रत्नत्रयि (दर्शन, ज्ञान, चारित्र) की अपेक्षा से तीर्थंकर तथा सामान्य केवलियों में किंचित् मात्र भी अंतर नहीं है।

प्रश्न 94–नमस्कार मन्त्र के प्रथम पद में किस २ को नमस्कार किया गया है ?

उत्तर—इस संसार में जिस किसी भी व्यक्ति ने चार घाती कर्मों का नाश करके केवल ज्ञान (ब्रह्मज्ञान) की प्राप्ति की है, उन सभी आत्माओं को अभेद[1] रूप से नमस्कारमन्त्र के प्रथम पद में

1. यदि किसी को ऐसी शंका हो कि नमस्कार मन्त्र के प्रथम पद में तो तीर्थंकर भगवान् को ही नमस्कार होता है, अन्य व्यक्ति को नहीं होता तो यह बात सर्वथा निराधार है। क्योंकि यदि प्रथम पद में तीर्थंकर की

(शेष पृष्ठ ३२ पर)

नमस्कार आ जाता है। तीर्थंकर देव को भी इसी के अंतर्गत ही नमस्कार आ जाता है।

प्रश्न 95–क्या इस काल में भी किसी क्षेत्र में तीर्थंकरों की विद्यमानता है ?

उत्तर—जहां पर हम रहते हैं उसे जम्बूद्वीप का भरत क्षेत्र कहते हैं। इस भरत क्षेत्र में इस समय (वर्तमान काल में) कोई भी तीर्थंकर या सामान्य केवली की विद्यमानता नहीं है। परन्तु ढाई द्वीप

(पृष्ठ ३१ का शेष)

ही नमस्कार करने का प्रयोजन होता, तो 'नमो तित्थयराणं' कहा जाता, किन्तु ऐसा न कहकर 'नमो अरिहंताणं' ही कहा गया है, यदि प्रथम पद में तीर्थंकर को ही नमस्कार माना जाय तो, सामान्य केवलियों को किस पद में नमस्कार आयेगा ? यदि कहोगे कि उन्हें सिद्धों में नमस्कार होगा तो वह भी युक्ति-संगत नहीं है क्योंकि इस पद में अष्टकर्म रहित को ही नमस्कार किया गया है। यदि कहोगे कि पंचपरमेष्ठि के अन्तिम तीन पदों में उन्हें नमस्कार होगा—तो वह भी युक्तियुक्त नहीं है, क्योंकि पंच परमेष्ठी के प्रथम दो पद परमात्म-पद हैं, तथा अन्तिम तीन पद छद्मस्थ साधु के हैं, अतः नमस्कार मन्त्र के प्रथम पद में, चार घाती कर्मों का नाश करने वालों को अभेद रूप से नमस्कार आ जाता है।

यदि कहा जाए कि तीर्थंकरों को लोक-उपकारी होने के कारण सिद्धों से पहले नमस्कार किया गया है तथा केवली वैसा लोक उपकार नहीं कर सकते अतः उन्हें तीर्थंकरों की कोटि में कैसे रखा जा सकता है ? इसके अतिरिक्त सिद्ध भगवान् केवली भगवान् से अधिक उच्च पद पर स्थित हैं अतः सामान्य केवली को सिद्धों से पहले प्रथम पद में नमस्कार करना क्या उचित है ?

तो इस प्रश्न का समाधान यह है कि प्रायः सामान्य केवली भी प्रसंग आने पर उपदेशादि के द्वारा लोकोपकार करते हैं अतः उन्हें भी तीर्थंकरों की कोटि में रखना तथा सिद्धों से पहले नमस्कार करना उचित ही है।

(जम्बू द्वीप, धातकीखण्ड तथा अर्धपुष्करवर द्वीप) में ही पांच महाविदेह क्षेत्र भी हैं। उन क्षेत्रों में वर्तमानकाल में भी २० विहरमान तीर्थंकर भगवान विद्यमान हैं। तथा दो क्रोड़ सामान्य केवलियों की विद्यमानता है।

प्रश्न 96–मध्यलोक में कुल कितने द्वीप तथा समुद्र हैं ?

उत्तर–मध्य लोक में असंख्यात द्वीप तथा असंख्यात समुद्र हैं।
(ठाणांगसूत्र-१-गा. ५२)

प्रश्न 97–अढ़ाई द्वीप कौन कौन से हैं, तथा उनकी लम्बाई चौड़ाई कितनी है ?

उत्तर—तिर्यक् लोक के मध्य में एक लाख योजन लम्बाई तथा एक लाख योजन चौड़ाई वाला गोलाकार जम्बूद्वीप है। उसके बाद दो लाख योजन चौड़ाई वाला लवण समुद्र हैं, उसके बाद चार लाख योजन चौड़ाई वाला धातकी खण्ड द्वीप है, उसके बाद आठ लाख योजन की चौड़ाई वाला कालोदधि समुद्र है. उस के बाद सोलह लाख योजन की चौड़ाई वाला पुष्करवर द्वीप है। उस पुष्कर द्वीप के बिल्कुल मध्य में मानुषोत्तर' नामक एक पर्वत है, जिसके कारण पुष्करवर द्वीप दो भागों में विभाजित हो गया है। इसके आधे भाग में मनुष्यों की बस्ती है, तथा आधे भाग में मनुष्यों का सर्वथा वास नहीं है। वहां पर पशु पक्षी ही निवास करते हैं। इस प्रकार अढ़ाई द्वीप का माप ४५ लाख योजन (मेरू की दोनों ओर साढ़े २२ लाख + साढ़े २२ लाख योजन) है।

प्रश्न 89–क्या अढ़ाई द्वीप के बाहर मनुष्य जा सकता है या नहीं ?

उत्तर—अढ़ाई द्वीप के बाहर सामान्य व्यक्ति नहीं जा सकता, किंतु कोई विद्याधर गृहस्थ, विद्याधर (लब्धिधर) मुनि जा सकता है। आठवें नन्दीश्वर द्वीप में शाश्वत ५२ जिनालय (जिन मन्दिर) हैं,

१. यह मानुषोत्तर पर्वत बैठे हुए सिंह की आकृति वाला है।

सम्यग्दृष्टि विद्याधर, लब्धिवान् मुनि तथा विशेषरूप से देवता वहां दर्शनार्थ जाते हैं। सुमेरूपर्वतपर तीर्थंकर देव का जन्माभिषेक करने के पश्चात् इन्द्रादि देवता सामूहिक रूप से नन्दीश्वर द्वीप में जाकर अट्ठाई महोत्सव मनाते हैं। मानव अढ़ाई द्वीप के बाहर जा तो सकता है लेकिन वहां जन्म या मरण प्राप्त नहीं कर सकता।

(त्रिषष्ठि शलाकापुरुष चरित्र)

प्रश्न 99–विहरमान भगवान् कहां कहां पर विद्यमान हैं, तथा उनके क्या नाम हैं ?

उत्तर– इसी जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में चार विहरमान विद्यमान हैं। धातकी खण्ड द्वीप के महाविदेह क्षेत्र में आठ विहरमान विद्यमान हैं। अर्धपुष्करवर द्वीप में भी आठ विहरमान विद्यमान हैं। इस प्रकार इस वर्तमान काल में भी २० विहरमान विद्यमान हैं। इन विहरमानों के नाम निम्न प्रकार से हैं :

(१) सीमंधर स्वामी जी, (२) युगमंधर स्वामी जी, (३) वाहुस्वामी जी, (४) सुवाहु स्वामी जी, (५) सुजात स्वामी जी, (६) स्वयं प्रभ स्वामी जी, (७) ऋषभानन स्वामी जी, (८) अनंतवीर्यस्वामी जी, (९) सुरप्रभ स्वामी जी, (१०) विशालप्रभ स्वामी जी, (११) वज्रधर स्वामी जी, (१२) चन्द्रानन स्वामी जा, (१३) चन्द्रवाहु स्वामी जी, (१४) भुजंग स्वामी जी, (१५) ईश्वर स्वामी जी, (१६) नेमीश्वर स्वामी जी, (१७) वीरसैन स्वामी जी, (१८) महाभद्र स्वामी जी, (१९) देवयश स्वामी जी, (२०) अजितवीर्य स्वामी जी।

प्रश्न 100–विहरमान भगवान् कभी परस्पर मिलते हैं, या नहीं ?

उत्तर—यह अनादि नियम हैं—कि कभी भी विहरमानों (तीर्थंकरों) का परस्पर मिलन (सम्पर्क) नहीं होता। इस जम्बू द्वीप में विचरने वाले चार विहरमानों का परस्पर अंतर भी लाखों कोस का है, तथा अन्य द्वीपों में विद्यमान तीर्थंकरों का अंतर इस से भी अधिक है। अतः विहरमानों का एकत्र होना, या परस्पर मिलना सर्वथा असंभव ही है।

प्रश्न 101—विहरमान भगवन्तों की आयु कितनी है, इनका जन्म दीक्षा तथा केवल ज्ञान कब हुआ, तथा इनका निर्वाण कब होगा ?

प्रश्नोत्तर 101—बीस विहरमानों का जन्म सत्तरहवें तीर्थंकर श्री कुन्थुनाथ जी एवं अठ्ठारहवें अरनाथ जी के अन्तरकाल में हुआ। तथा बीसवें मुनि सुव्रत स्वामी जी तथा इक्कीसवें नमिनाथ जी के अन्तरकाल में दीक्षा तथा केवल ज्ञान हुआ था।

एक विजय में समकाल में एक ही तीर्थंकर हो सकता है, अतः अढ़ाई द्वीप में उत्कृष्टतः १७० तीर्थंकर समकाल में हो सकते हैं, अधिक नहीं। अढ़ाई द्वीप में समकाल में जघन्यतः वीस तीर्थंकर अवश्य होते हैं।

प्रश्न 103—अढ़ाई दीप में १७० विजय किस प्रकार से हैं ?

उत्तर—प्रथम जम्बू द्वीप के महाविदेह क्षेत्र में बत्तीस विजय हैं। जम्बू-द्वीप के दक्षिण में भरत क्षेत्र भी एक विजय है तथा जम्बू द्वीप के उत्तर में ऐरावत क्षेत्र भी एक विजय है। अर्थात्-जम्बू द्वीप में चौंतीस विजय हैं। इसी प्रकार धातकी खण्ड में भी पूर्व पश्चिम में बत्तीस २ विजय हैं, एवं दो भरत क्षेत्र तथा दो ही

१. अंतरकाल का अर्थ—एक तीर्थंकर के निर्वाण के पश्चात्, अगले तीर्थंकर के तीर्थ स्थापन तक, बीच का समय, उसे अंतरकाल (आंतरा) कहते हैं।

ऐरावत क्षेत्र हैं, अर्थात्-धातकी खण्ड में ६८ विजय हैं। इसी प्रकार अर्धपुष्करवर द्वीप में भी ६८ विजय हैं। इस प्रकार अढ़ाई द्वीप के (३४+६८+६८=१७०) कुल एक सौ सत्तर विजय हैं। ये सभी क्षेत्र कर्म भूमि हैं।

प्रश्न 104–अढ़ाई द्वीप में १७० विजयों के अतिरिक्त क्या और भी मनुष्य क्षेत्र हैं?

उत्तर—अढ़ाई द्वीप में कुछ ऐसे भी मनुष्य क्षेत्र हैं, जहाँ पर [1]असि-[2]मसि-[3]कृषि का व्यवहार नहीं है। वहां पर कल्पवृक्ष ही उन लोगों की सभी आवश्यकताएं पूर्ण करते हैं। उन क्षेत्रों को जैन परिभाषा में अकर्म भूमि कहा गया है तथा वहाँ पर वसने वाले मनुष्यों को युगलिक कहा गया है। इन अकर्म भूमियों की संख्या ३० है। जिनमें से ६ क्षेत्र जम्बूद्वीप में हैं, १२ क्षेत्र धातकी खण्ड द्वीप में हैं। तथा वारहक्षेत्र अर्धपुष्करवरद्वीप में हैं। इनके अतिरिक्त लवण समुन्द्र में स्थित ५६ अन्तरद्वीपों में भी इन अकर्म भूमियों के ही सदृश वातावरण है। उपर्युक्त (३०+५६=८६) क्षेत्रों में व्यापार, कारीगरी, कला, खेती वाड़ी, शस्त्रादि निर्माण तथा लेखन आदि कोई भी कर्म नहीं होता, मात्र कल्प वृक्षों द्वारा ही मनुष्यों का निर्वाह होता है। (ठाणांग सूत्र ३ उद्दे१-सूत्र १३०)

प्रश्न 105–तीस प्रकार की अकर्म भूमिओं के नाम क्या २ हैं। तथा उन क्षेत्रों के मनुष्यों का स्वरूप क्या है?

उत्तर—अढ़ाई द्वीप में पांच देवकुरू, पांच उत्तरकुरू, पांच हरिवर्ष, पांच रम्यक्‌वर्ष, पांच हेमवन्त तथा पांच हैरण्यवन्त—ये ३० अकर्म-भूमियां हैं। देवकुरू तथा उत्तरकुरू के युगलियों की आयुष्य तीन पल्योपम है एवं अवगाहणा तीन कोस है। हरिवर्ष तथा रम्यक्‌वर्ष के युगलियों की आयुष्य दो पलयोपम एवं अवगाहणा

१. असि कर्म—शस्त्रआदि बनाने का तरीका।

२. मसि कर्म—लेखनादि क्रिया का तरीका।

३. कृषि—खेती आदि करने का तरीका।

दो कोस हैं, हेमवन्त तथा हैरण्यवन्त के युगलियों की आयुष्य एक पलयोपम एवं अवगाहणा एक कोश होती है। इन युगलिक क्षेत्रों में चर्तुविध संघ (साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका रूप) नहीं होता और न ही कोई धर्म सम्प्रदाय या क्रिया कांडादि होता है। यह युगलिक मनुष्य भद्र परिणामी, अल्पकषायी, अल्प आरम्भी एवं संतोषी होने के कारण मरकर अवश्यमेव स्वर्ग में ही जाते हैं, अन्यगति में नहीं जाते।

(जीवाभिगमसूत्र प्रति ३ सूत्रे १०७, पन्नवणा प्रथम पद सूत्र ३७)
(ठाणांग १ सूत्र ५२)

प्रश्न 106–तीर्थंकर भगवान् की देशना से कोई जीव व्रत धारण करता ही है या देशना कभी निरर्थक भी जाती है?

उत्तर–तीर्थंकर भगवान की देशना कभी खाली नहीं जाती। ऐसा सामान्य नियम है। किन्तु भगवान् महावीर प्रभु की प्रथम देशना से किसी भी जीव ने, जप, तप, व्रत, संयम और दीक्षा नहीं ली, अतः आचार्यों ने इसे (अभावितपर्षदा रूप) अच्छेरा (आश्चर्य) माना है।

प्रश्न 107–मन:पर्यव ज्ञान का अधिकारी कौन हो सकता है, तथा मन:पर्यव ज्ञानी किस वस्तु को कहां तक देख सकता है?

उत्तर—मन:पर्यव ज्ञान का अधिकारी त्यागी, महाव्रतधारी मुनि (साधु) ही हो सकता है, गृहस्थ नहीं। मन:पर्यव ज्ञानी का विषय मन के भावों को जानना है। अढ़ाई द्वीप में जितने भी संज्ञीपंचेन्द्रिय प्राणी हैं, उन सब के मनोगत भावों को मन:पर्यव ज्ञानी जान सकता है। (ठाणांग २ उद्देशा १ सूत्र ८१)

प्रश्न 108–मन:पर्यव ज्ञानी छद्मस्थ होते हुए भी मन के परिणामों (भावों) को कैसे जानता है?

उत्तर–मन:पर्यव ज्ञानी मनोद्रव्य (द्रव्यमन) की आकृतियों को देखकर अपने ज्ञान बल से अनुमान करता है कि 'ऐसी आकृति से ऐसा भाव होना चाहिए' वह मनोगत द्रव्य अनुमान के आधार

ही जानता है, प्रत्यक्ष नहीं क्योंकि प्रत्यक्ष परिणाम मात्र केवलि-गम्य हैं।

प्रश्न 109–अवधि ज्ञान का अधिकारी कौन २ हो सकता है?

उत्तर—चारों गतियों के जीव अवधि-ज्ञान के अधिकारी हो सकते हैं। अर्थात्-देवता तथा नारकियों को जन्म से ही अवधिज्ञान होता है, जबकि मनुष्यों तथा तिर्यञ्चों को तप जप आदि साधना अथवा भावोल्लास बढ़ने से अवधिज्ञान हो सकता है।

प्रश्न 110–गृहस्थ को कितने ज्ञान हो सकते हैं?

उत्तर—गृहस्थ को चार ज्ञान हो सकते हैं; मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, तथा केवलज्ञान।

प्रश्न 111–गृहस्थ मर कर अधिक से अधिक कौन से स्वर्ग में पैदा हो सकता है?

उत्तर—यदि गृहस्थ, श्रावक धर्म का पूर्ण आराधक हो तो वह मरकर बारहवें (अच्युत) देवलोक तक जा सकता है। वह इस से ऊपर के देव लोक में उत्पन्न नहीं हो सकता।

प्रश्न 112–अभव्य जीव मर कर कौन से देव लोक तक उत्पन्न हो सकता है?

उत्तर—ऐसा अभव्य जीव कि जो व्यवहार से त्यागी संयमी मुनि है, मरकर नवग्रैवेयक विमान तक उत्पन्न हो सकता है। किन्तु वह अनुत्तर विमान में कदापि नहीं जा सकता।

(पन्नवणा पद १४ सूत्र १८८, पद २३ सूत्र १९३ टीका)

प्रश्न 113–अनुत्तर विमान में कौन जा सकता है?

उत्तर—जो भव्य मुनि उत्कृष्ट त्यागी संयमी हो तथा श्रेणि[1] पर

---

१. श्रेणियां २ हैं:—उपशम श्रेणि तथा क्षपक श्रेणि। यह श्रेणियां एक विशेष अध्यात्मिक स्थिति है। इनका प्रारम्भ ८वें गुणस्थान से होता है। इन श्रेणियों पर आरूढ़ व्यक्ति के भाव अति शुद्ध होते हैं, फलतः, इस स्थिति में मृत्यु प्राप्त करने वाला व्यक्ति मात्र अनुत्तर स्वर्गभूमि में जाता है। वर्तमान काल में दोनों श्रेणियों का विच्छेद हो चुका है।

आरूढ़ हो वह अनुत्तर विमान में जा सकता है।

प्रश्न 114–तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय (पशु पक्षी) कौन से स्वर्ग तक जा सकता है ?

उत्तर–ऐसा सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय[1] जो आर्त्त रौद्र ध्यान का त्याग करने वाला हो मरकर आठवें सहस्त्रार देवलोक तक जा सकता है।

प्रश्न 115–जीव किस किस गति में से आकर तीर्थंकर बन सकता है ?

उत्तर—वैमानिक देव, भवनपति देव, तथा प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय नरक का जीव च्युत होकर इस पृथ्वी पर तीर्थंकर के रूप में जन्म ले सकता है। तिर्यञ्च गति में से च्युत होकर जीव तीर्थंकर नहीं वन सकता ?

प्रश्न 116–किस किस नरक से च्युत होकर जीव कौन कौन सी पदवी प्राप्त कर सकता है ?

उत्तर—प्रथम नरक से च्युत होकर जीव चक्रवर्तित्व प्राप्त कर सकता है, दूसरी नरक से च्युत होकर वासुदेवत्व, तीसरी नरक में से आकर तीर्थंकरत्व, चौथी नरक में से आकर केवल ज्ञान, पांचवीं नरक से च्युत होकर सर्वविरति (दीक्षा), छठी नरक में से आकर देश विरति (श्रावकत्व) तथा सातवीं नरक से आकर जीव सम्यकत्व प्राप्त कर सकता है। सातवीं नरक से च्युत होकर जीव तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय ही वनता है। मनुष्य नहीं वन सकता।

प्रश्न 117–शुद्धि पूर्वक एक सामायिक करने से देवगति का कितना आयुष्य प्राप्त होता है ?

उत्तर—एक शुद्ध सामायिक करने से जीव को ९२,५९,२५,९२५-३/८ पल्योपम[2] वर्ष देवगति का आयुष्य प्राप्त होता है।

प्रश्न 118–सामायिक के दो भेद कौन कौन से हैं ?

---

१. चंडकौशिक सर्प मर कर आठवें सहस्त्रार देव लोक में गया है।

२. वानवें क्रोड़ उन्सट्ठ लाख पच्चीस हजार नवसौ पच्चीस पल्योपम तीन पल्योपम का आठवां भाग।

उत्तर—सामायिक का प्रथम भेद है 'जावज्जीवं' अर्थात्–समस्त आयुष्य की सामायिक। यह सर्वविरति साधु की सामायिक है। सामायिक का दूसरा भेद है– जावनियमं'। अर्थात् दो घड़ी की सामायिक। यह गृहस्थ श्रावक की सामायिक है।

प्रश्न 119–सामायिक का वास्तविक अर्थ क्या है ?

उत्तर—सामायिक शब्द का सधिविच्छेद करने से मूलतः दो शब्द प्राप्त होते हैं सम तथा आय, सम का अर्थ हैं–'समता' (शमभाव)। अर्थात् कषाय का उपशम, आय का अर्थ 'लाभ'। निष्कर्ष यही है कि जिस क्रिया में शमभाव (समता) का लाभ हो उस क्रिया को सामायिक कहते हैं।

प्रश्न 120–सर्व विरति चारित्र कितने प्रकार का है ? विस्तार से समझायें ?

उत्तर—सर्व विरति चारित्र के पांच भेद हैं—

(१) सामायिकचारित्र—साधु की छोटी दीक्षा को सामायिक चरित्र कहते हैं।

(२) छेदोपस्थापनीयचारित्र—छोटी दीक्षा के वाद होने वाली वड़ी दीक्षा को तथा मूलव्रत खण्डित हो जाने पर जो पुनः दीक्षा होती है, उसे छेदोपस्थापनीय चारित्र कहते हैं।

(३) परिहारविशुद्धिचारित्र—नव (९) साधु मिलकर गच्छ से वाहर रहकर अट्ठारह माह तक तप साधना करते हैं। इसी साधना का नाम परिहार विशुद्धि चारित्र है। जघन्यतः एकान्तरे इसकी विधि इस प्रकार है।

उपवास करने तथा पारणा में ठाम चौविहार करना। सर्व प्रथम चार मुनि मिलकर छः माह तक उपयुक्त तपस्या करते हैं, अन्य चार मुनि उनकी सेवा करते हैं तथा एक मुनि वाचनाचार्य वनता है। पश्चात् सेवा करने वाले मुनि ६ मास तप करते हैं, और अन्य चारों मुनि उनकी सेवा करते हैं, तथा वाचनाचार्य वही रहता है।

तदनंतर वाचनाचार्य बनने वाला मुनि तपस्या करता है तथा अन्य आठों मुनि उसकी सेवा करते हैं। इस प्रकार १८ महीनों में यह क्रिया सम्पूर्ण होती है। इस अवधि में ये ९ साधु आँख में तिनका पड़ जाने पर निकालते या निकलवाते नहीं हैं।

(४) सूक्ष्म संपराय चारित्र[1] जब मोहनीय कर्म की २७ प्रकृतियों का क्षय अथवा उपशम हो जाता है तथा मात्र संज्वलन सूक्ष्म लोभ का उदय होता है उस स्थिति को सूक्ष्म संपराय चारित्र कहते हैं, यह दसवें गुणस्थान का विषय है।

(५) यथाख्यात चारित्र दो प्रकार का है। छद्मस्थ यथाख्यात तथा वीतराग यथा ख्यात। छद्मस्थ यथा ख्यात चारित्र में मोहनीयकर्म की प्रकृतियों का उपशम होता है। यह चारित्र ग्यारहवें गुणस्थान (उपशान्त मोह) का विषय है। वीतराग यथाख्यात चारित्र में मोहनीय कर्म की समस्त प्रकृतियों का क्षय होता है। यह चारित्र बारहवें गुणस्थान का विषय है। इसके पश्चात् तत्क्षण केवल ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। अंतिम तीनों चारित्र वज्रऋषभ नाराच संघयन वाले व्यक्ति को ही प्राप्त होते हैं।

(ठाणांग ५ उद्देशा २ सूत्र ४२८, अनुयोगद्वार सूत्र १४४ पृष्ट २२०)

प्रश्न 121–पल्योपम किसे कहते हैं?

पल्योपम की विशालता निम्नोक्त उपमा से बताई जाती है:

उत्तर—यदि एक योजन लम्बा, एक योजन चौड़ा तथा एक योजन गहरा खड्डा बनाया जाए। उसमें देवकुरु, उत्तरकुरु के युगलिकों के सिर के सात दिनों के बालों को, प्रत्येक बाल के असंख्य खण्ड करके, ठसाठस भरा जाये। वह खड्डा इतना ठोस भरा गया हो कि चक्रवर्ती की समस्त सेना उसके ऊपर से चल कर निकल जाये, किन्तु वह खड्डा रंचमात्र भी दबे नहीं। उस खड्डे में से एक एक बाल खण्ड को सौ सौ वर्ष के पश्चात् निकाला जाये।

1. इस चारित्र को गणधरादि के समक्ष ग्रहण किया जाता है। प्रथम संहनन वाला साधु ही इस चारित्र का अधिकारी हो सकता है।

ऐसा करते २ उस खड्डे को खाली होने में जितना समय लगे, उसे एक सूक्ष्म अद्धा पल्योपम कहते हैं। गणित तथा व्यवहार में इसी पल्योपम का उपयोग होता है। पल्योपम के शस्त्रोक्त छः भेदों में से यह चौथे प्रकार का पल्योपम है।

(अनुयोगद्वार सूत्र १३८ से १४०/पृष्ठ १७९ आगमोदय समिति)

प्रश्न 122—साधारण वनस्पतिकाय का जीव स्वकाय में उत्कृष्टतः कितने समय तक जन्म मरण कर सकता है?

उत्तर—साधारण वनस्पति काय स्वकाय (स्वजाति) में अनंतकाल-चक्र[1] पर्यन्त जन्म मरण कर सकता है।

(जीव विचार प्रकरण गाथा ४०)

प्रश्न 123—प्रत्येक वनस्पति स्वकाय में उत्कृष्टतः कितने समय तक जन्म मरण करता है?

उत्तर—प्रत्येक वनस्पति स्वकाय में असंख्यात काल चक्र पर्यन्त जन्म मरण कर सकता है। (जीव विचार प्रकरण गाथा ४०)

प्रश्न 124—विक्लेन्द्रिय[2] जीव स्वकाय में उत्कृष्टतः कितने समय तक जन्म मरण करता है?

उत्तर—विकलेन्द्रिय जीव स्वकाय में संख्यात वर्षों तक जन्म मरण कर सकता है। (जीव विचार प्रकरण गाथा ४१)

प्रश्न 125—मनुष्य तथा तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय स्वकाय में उत्कृष्टतः कितने समय तक जन्म मरण कर सकता है?

उत्तर—मनुष्य तथा तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय स्वकाय (स्वजाति) में लगातार अधिक से अधिक सात या आठ भव ही कर सकता है। आठवें भव में वह प्राणी युगलिक मनुष्य या युगलिक तिर्यञ्च के रूप में ही उत्पन्न हो सकता है। इन आठों भवों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम और सात करोड़ पूर्व की हो सकती है।

(जीव विचार प्रकरण गाथा ४१)

---

1. बीस कोटा कोटी सागरोपम का एक कालचक्र होता है
2. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय जीवों को विकलेन्द्रिय कहते हैं।

प्रश्न 126–देवता तथा नारकी स्वकाय में कितने समय तक जन्म मरण कर सकते हैं ?

उत्तर—देवता तथा नारकी का स्वकाय में दूसरा जन्म हो ही नहीं सकता अर्थात् देवता मर कर देवता नहीं बन सकता, और नारकी मर कर नारकी नहीं वन सकता।

(जीव विचार प्रकरण गाथा ४१)

प्रश्न 127–कल्पोपपन्न देव लोक कितने हैं, तथा उनके क्या २ नाम हैं ?

उत्तर—कल्पोपपन्न देव लोक १२ हैं। [1]सौधर्म, [2]ईशान, [3]सनत्कुमार, [4]माहेन्द्र, [5]ब्रह्म, [6]लान्तक, [7]महाशुक्र, [8]सहस्त्रार, [9]आनत, [10]प्राणत, [11]आरण तथा [12]अच्युत। (ठाणांग १०/उ ३, सूत्र ७६९)

प्रश्न 128–देवलोक में, क्या देवियां भी हैं ?

उत्तर—दूसरे ईशान देवलोक तक ही देवियों की उत्पत्ति होती है। इस से ऊपर स्थित देवलोकों में देवियां उत्पन्न नहीं होतीं।

(उवाई सूत्र ३८)

प्रश्न 129–जीवों के चौबीस दण्डक (विभाग) कौन २ से हैं ?

उत्तर—सात नरकों का १ दण्डक, दस भवनपति देवताओं के १० दण्डक व्यन्तर तथा वाणव्यन्तर देवों का १ दण्डक, ज्योतिष देवों का १ दण्डक, पंचेन्द्रिय मनुष्यों का १ दण्डक, तिर्यञ्च पंचेन्द्रियों का १ दण्डक, दो इन्द्रिय वाले जीवों का १ दण्डक, तीन इन्द्रिय वाले जीवों का १ दण्डक, चार इन्द्रिय वाले जीवों का १ दण्डक, पांच स्थावरों (पृथ्वीकाय-अप्काय-तेउकाय-वाउकाय-वनस्पतिकाय) के पांच दण्डक तथा वैमानिक देवताओं का १ दण्डक—यह कुल चौबीस दण्डक हैं। (दण्डक प्रकरण, गाथा २)

प्रश्न 130–शरीर कितने प्रकार के हैं ?

उत्तर—शरीर पांच प्रकार के हैं :—तेजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक शरीर, वैक्रिय शरीर तथा आहारक शरीर।

प्रश्न 131–मनुष्य कितने शरीर प्राप्त कर सकता है ?

उत्तर—प्रत्येक मनुष्य के स्वभाव से ही तीन शरीर (तेजस, कार्मण, औदारिक) तो होते ही हैं। मनुष्य वैक्रिय शरीर तथा आहारक शरीर भी साधना (तप, ज्ञानध्यानादि) के द्वारा प्राप्त कर सकता है अर्थात् पांचों शरीर ही प्राप्त कर सकता है। किन्तु मानव वैक्रिय तथा आहारक शरीर का प्रयोग क्रमशः कर सकता है, युगपत् (समकाल में) नहीं।

प्रश्न 132–तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के कितने शरीर हो सकते हैं ?

उत्तर—तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के तीन शरीर (तेजस, कार्मण, औदारिक) जन्म से ही होते हैं। किसी २ तिर्यञ्च को भावोल्लास वढ़ने से वैक्रिय शरीर की प्राप्ति भी हो सकती हैं।

प्रश्न 133–विक्लेन्द्रिय जीवों के तथा पाँचों स्थावरों के कितने शरीर हो सकते हैं ?

उत्तर—विकलेन्द्रिय जीवों तथा पृथ्वी, अप्, तेउ, वनस्पति, इन चार स्थावरों के भी तीन ही शरीर होते हैं। किन्तु वायुकाय का वैक्रिय शरीर भी हो सकता है अर्थात् वायुकाय के चार शरीर भी हो सकते हैं।

प्रश्न 134–देवता तथा नारकी के कितने शरीर हो सकते हैं ?

उत्तर—देवता तथा नारकी के तीन (तेजस, कार्मण, वैक्रिय) शरीर ही जन्म से होते हैं। वह अन्य शरीर प्राप्त नहीं कर सकते।

प्रश्न 135–देवता उत्तर वैक्रिय शरीर कितना वड़ा वना सकता है, तथा उसकी स्थिति कितनी है ?

उत्तर—देवता चार अंगुल न्यून, एक लाख योजन ऊंचा उत्तर वैक्रिय शरीर वना सकता है। और उसकी स्थिति काल पन्द्रह दिन है।

(दण्डक प्रकरण गाथा ९)

प्रश्न 136–मनुष्य उत्तर वैक्रिय शरीर कितना वड़ा वना सकता है, तथा उसका स्थिति काल कितना है ?

उत्तर—मनुष्य उत्तर वैक्रिय शरीर एक लाख योजन ऊंचा बना सकता है तथा इसका स्थिति काल चार मुहूर्त्त है।

(दण्डक प्रकरण गाथा ९)

प्रश्न 137–तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय कितना बड़ा उत्तार वैक्रिय शरीर बना सकता है, तथा इसका स्थिति काल कितना है ?

उत्तर—तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय नवसौ (९००) योजन ऊंचा उत्तर वैक्रिय शरीर बना सकता है। इसका स्थिति काल चार मुहूर्त है।

(दण्डक प्रकरण गाथा ९)

प्रश्न 138–नारकी कितना बड़ा उत्तार वैक्रिय शरीर बना सकता है, तथा उसका स्थिति काल कितना है ?

उत्तर—नारकी अपने स्वाभाविक शरीर से दुगुना उत्तर वैक्रिय शरीर बना सकता है। इसका स्थिति काल अन्तर्मुहूर्त्त है।

(दण्डक प्रकरण गाथा ९)

प्रश्न 139–देवताओं के शरीर में क्या हड्डी, खून, मांसादि होता है ?

उत्तर—देवताओं के शरीर में हड्डी, खून, मांस, वीर्य आदि कोई भी गन्दा पदार्थ नहीं होता। उनका शरीर स्फटिक की भांति निर्मल व तेजस्वी होता है। मृत्यु के पश्चात् देवता का शरीर कपूर की तरह उड़ जाता है। देवताओं की जो वज्रऋषभ नाराच संघयन शास्त्रों में कही गई है, वह हड्डियों की अपेक्षा से नहीं बल्कि बल की अपेक्षा से कही गई है।

प्रश्न 140–ज्योतिष[1] देवों की उत्कृष्ट व जघन्यायुष्य कितनी है ?

---

1. ज्योतिष देवताओं में, चन्द्र तथा सूर्य ये दो इन्द्र हैं। चन्द्र की उत्कृष्ट आयुष्य एक पल्योपम तथा एक लाख वर्ष है, तथा सूर्य की उत्कृष्ट आयुष्य, एक पल्योपम तथा एक हजार वर्ष है। तारों की उत्कृष्ट आयुष्य पल्योपम का चौथा भाग तथा जघन्यायुष्य पल्योपम का आठवां भाग है।

(जीव विचार प्रकरण-गाथा ३६-३७-३८)

उत्तर—ज्योतिष देवों की उत्कृष्ट आयु एक पल्योपम और एक लाख वर्ष है तथा जघन्यायुष्य पल्योपम का आठवां भाग होती है।

(दण्डक प्रकरण गाथा २८, पृष्ठ ७४)

प्रश्न 141—भवनपति तथा व्यंतर देवों की उत्कृष्ट व जघन्यायुष्य कितनी हो सकती है?

उत्तर—भवनपति देवों की उत्कृष्टायुष्य साधिक[1] एक सागरोपम तथा जघन्यायुष्य दस हज़ार वर्ष है। व्यन्तर देवों की उत्कृष्टायुष्य एक पल्योपम है तथा जघन्यायुष्य दस हज़ार वर्ष है।

प्रश्न 142—भरत क्षेत्र का मनुष्य जीवित अवस्था में महाविदेह क्षेत्र में जा सकता है या नहीं?

उत्तर—भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड[2] का सामान्य मनुष्य अपने सामर्थ्य से महाविदेह क्षेत्र में नहीं जा सकता, कारण कि मार्ग में सर्व प्रथम पच्चीस योजन ऊंचा वैताढ्य पर्वत आता है। उस के वाद हिमवंत, महाहिमवन्त तथा निषध पर्वत जो कि क्रमशः सौ योजन, दो सौ योजन तथा चार सौ योजन ऊंचाई वाले हैं। इन्हें कोई भी सामान्य व्यक्ति पार नहीं कर सकता। यदि देवता की सहायता प्राप्त हो, तो भरत क्षेत्र का मानव महा विदेह में जा सकता है। जैसे-यक्षा साध्वी देवी की सहायता से महाविदेह में गई थी अथवा कोई लब्धिधारी मुनि या विद्याधर अपनी विद्या आदि के द्वारा महाविदेह क्षेत्र में जा सकते हैं।

प्रश्न 143—भरत क्षेत्र का मनुष्य मर कर सीधा महाविदेह क्षेत्र में पैदा हो सकता है या नहीं?

उत्तर—भरत क्षेत्र का भद्रपरिणामी मनुष्य मर कर महाविदेह क्षेत्र में पैदा हो सकता है।

प्रश्न 144—इस समय महाविदेह क्षेत्रों में केवल ज्ञानी भगवन्तों की तथा साधुओं की कितनी संख्या है?

---

1. साधिक का अर्थ, कुछ अधिक।
2. जहां हम रहते हैं, इसे ही आर्यखण्ड कहते हैं।

उत्तर—इस समय अढ़ाई द्वीप में (महाविदेह क्षेत्रों में) दो करोड़[1] केवल ज्ञानी तथा बीस अरब मुनियों की संख्या है।

प्रश्न 145–भरत क्षेत्र की मर्यादाबांधने वाले पर्वत का क्या नाम है, यह कितना ऊंचा है तथा किस वर्ण का है ?

उत्तर—इस पर्वत का नाम हेमवन्त पर्वत है। इसकी ऊंचाई एक सौ योजन[2] हैं। इसका वर्ण सुवर्ण सदृश है।

प्रश्न 146–धर्म का मुख्य लक्षण क्या है ?

उत्तर—दशवैकालिक सूत्र के प्रथम अध्ययन की प्रथम गाथा में बताया है कि धर्म का लक्षण, अहिंसा, संयम, और तप है। यथा

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।
देवावि तं नमंसंति जस्स धम्मे सयामणो ॥

अर्थात् धर्म उत्कृष्ट मंगल है तथा अहिंसा, संयम एवं तप रूप है। जिस व्यक्ति के मन में सदा ऐसा धर्म रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं। (दशवैकालिक अ १, गाथा १)

प्रश्न 147–क्या अब्रह्मचर्य (मैथुन) सेवन से हिंसा होती है ?

उत्तर– मैथुन सेवन से भयंकर हिंसा होती है। एक बार मैथुन सेवन करने से नव लाख (९०००००) असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों (मनुष्यों की) हिंसा होती है। (संबोध प्रकरण, हरिभद्र सूरि)

प्रश्न 148–क्या चारित्र के बिना मुक्ति हो सकती है ? यदि नहीं तो भरत चक्रवर्ती तथा मरुदेवी ने चारित्र ग्रहण के अभाव में कैसे मोक्ष प्राप्त किया ?

उत्तर—चारित्र के दो भेद हैं—द्रव्य तथा भाव। साधु वेष स्वीकार

1. यह संख्या केवल बीस विजयों (क्षेत्रों) की है। जब कि महाविदेह में कुल १६० विजय (क्षेत्र) हैं।
2. शाश्वत पदार्थों का योजन, प्रमाण अंगुल से गिना गया है। यह पर्वत शाश्वत है। इसलिए एक योजन चार हज़ार मील (दो हज़ार कोश) का समझना चाहिए।

करना तथा साधु धर्म का बाह्य क्रिया कांड करना, यह द्रव्य चारित्र कहलाता है। मन को वश में रखना तथा परिणामों की विशुद्धि-भाव चारित्र है। भरत तथा मरुदेवी ने भाव चारित्र द्वारा मोक्ष प्राप्त किया था।

प्रश्न 149–तप कितने प्रकार का है, तथा निश्चय तप किसे कहते हैं?

उत्तर—तप के बारह भेद हैं, छः बाह्य तथा छः अभ्यन्तर।

बाह्यतप—अनशन, अनोदरी, वृत्तिसंक्षेप, रसपरित्याग, कायक्लेश तथा संलीनता।

अभ्यन्तर तप—प्रायश्चित, विनय, वैयावच्च, स्वाध्याय, ध्यान तथा व्युत्सर्ग। इच्छाओं के निरोध को निश्चय तप कहते हैं।

जैसे—इच्छा निरोधस्तपः। (नवतत्व प्रकरण, गाथा ३४-३५)

प्रश्न 150–क्या समता भाव रखने से धर्म होता है?

उत्तर—शुद्ध धर्म तो समभाव को ही कहते हैं अर्थात अनुकूल, प्रतिकूल वातावरण में, वन्दक और निंदक में, मान-अपमान में, भूख-प्यास में, रुग्णावस्था तथा निरोगता में, सम्भाव रखना, मन को क्रोध के अधीन न होने देना, वस्तु स्थिति का विचार करते हुए कर्म को भोगना, यह उच्च कोटि की साधना तथा धर्म है।

प्रश्न 151–सुखी होने का सहज उपाय क्या है?

उत्तर—संसार के सभी पदार्थों पर से मोह (ममत्व) हटा लेना, यह सुख प्राप्ति का सहज उपाय है।

प्रश्न 152–सूक्ष्म निगोद के जीव अधिक हैं, या सिद्धात्माएं अधिक हैं?

उत्तर—सिद्धात्माओं की अपेक्षा सूक्ष्म निगोद अनंतानंत गुण अधिक है। (नवतत्त्व प्रकरण गाथा ४९)

प्रश्न 153–एक समय में उत्कृष्ट व जघन्य कितने जीव मोक्ष जा सकते हैं?

उत्तर—एक समय में उत्कृष्ट एक सौ आठ (१०८) तथा जघन्य एक जीव मोक्ष जा सकता है। (नवतत्त्व प्रकरण गाथा ४७)

प्रश्न 154–मोक्ष जाने में जीवों का उत्कृष्ट व जघन्य कितने समय का अंतर पड़ सकता है?

उत्तर—जीवों के मोक्ष जाने में उत्कृष्ट अन्तर छः मास का पड़ सकता है। अर्थात् छः मास बाद कोई न कोई जीव अवश्य मोक्ष में जाता है। जघन्य अन्तर एक समय का पड़ सकता है।

(नवतत्त्व गाथा ४७, पृष्ठ १४६)

प्रश्न 155–मोक्ष प्राप्ति के उत्तम निमित्त क्या क्या हैं?

उत्तर—मनुष्य गति,पंचेन्द्रिय जाति, भव्यत्व, वज्रऋषभ नाराच संघयन कर्म भूमि, क्षायिक सम्यकत्व, आर्य देश तथा यथाख्यात चारित्र यह सभी मोक्ष के उत्तम निमित्त हैं।

(नवतत्त्व प्रकरण, गाथा ४५-४६)

प्रश्न 156–एक हजार योजन लम्बाई वाले जलचर किस समुद्र में हैं?

उत्तर—असंख्यात द्वीपों एवं असंख्यात समुद्रों के अन्त में स्थित मर्त्यलोक का अन्तिम समुद्र स्वयंभूरमण है। उस समुद्र में एक एक हज़ार योजन वाले मत्स्य हैं।

प्रश्न 157–देवताओं में सब से अधिक सुखी देव कौन से हैं, तथा उनकी आयुष्य कितनी है?

उत्तर—सभी देवताओं में सर्वार्थ सिद्धि विमान के देवता अधिक सुखी हैं। उनकी आयुष्य तेतीस (३३) सागरोपम की है तथा वह देव निश्चय ही एक भवावतारी हैं। अर्थात् वे एक भव लेकर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

प्रश्न 158–देवता आहार कब और कैसे करते हैं?

उत्तर—देवता कवलाहार (मुंह द्वारा) नहीं करते। जिस देवता की जितने जितने सागरोपम की आयुष्य होती है, उसे उतने ही पक्ष

के वाद आहार की इच्छा होती है। तथा संकल्प मात्र से ही वैक्रिय पुद्गल उनके शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं।

प्रश्न 159–'देवगति प्राप्त हो'–क्या ऐसी इच्छा करनी चाहिए ?

उत्तर—देवगति की इच्छा करना–अज्ञान दशा का सूचक है। कारण कि यह जीवात्मा अनंतीवार देवगति में पैदा हो चुका है। इसे कोई लाभ प्राप्त नहीं हुआ। अर्थात् किंचित् भी आत्महित नहीं हुआ।

प्रश्न 160–प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव ने तथा चरम तीर्थंकर महावीर ने पांच महाव्रतों की प्ररूपणा की जबकि वाईस तीर्थंकरों ने चार महाव्रतों की प्ररूपणा की। इसका क्या कारण है ?

उत्तर—प्रथम तीर्थंकर के साधु हृदय के सरल तथा वुद्धि के जड़ थे, इस कारण व्रह्मचर्य व्रत को अलग प्ररूपित किया गया। चरम तीर्थंकर (महावीर) के साधु हृदय के वक्र तथा वुद्धि के जड़ होने के कारण उनके लिए भी व्रह्मचर्य व्रत अलग कहा गया है। मध्य के वाईस तीर्थंकरों के साधु हृदय के सरल तथा प्रज्ञ वुद्धि वाले होने से उनके लिए चार महाव्रत कहे गए अर्थात् वह प्रज्ञ साधु अपरिग्रह व्रत में ही स्त्रीत्याग समझ कर व्रह्मचर्य का पालन करते थे।

प्रश्न 161–कौन सा जीव भरत क्षेत्र में भविष्य में प्रथम तीर्थंकर वनेगा तथा वह कव पैदा होगा ?

उत्तर—आज से लगभग ८१५०० वर्ष पश्चात् प्रथम तीर्थंकर उत्पन्न होगा। उनका नाम पद्मनाभ स्वामी होगा। यह श्रेणिक राजा का जीव होगा।

प्रश्न 162–श्रेणिक राजा का जीव इस समय किस गति में है ?

उत्तर—श्रेणिक का जीव इस समय प्रथम (रत्नप्रभा नामक) नरक में है। किन्तु यह जीव क्षायिक सम्यक्त्वी है। श्रेणिक के भव में इस ने गर्भवती हिरणी का वध किया था, तथा अपने बल का अभिमान किया था कि "मैं कितना बलवान हूं कि एक ही बाण से दो प्राणियों को मार दिया है।" ऐसा बल मद करने से श्रेणिक ने नरक गति का निकाचित बंध किया था किन्तु उन्होंने [महावीर प्रभु के सम्पर्क में आने पर, प्रभु के प्रति श्रद्धा करने से तीर्थंकर गोत्र का निकाचित बंध किया तथा क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया था।

प्रश्न 163–अनादि मिथ्या दृष्टि जीव सम्यकत्व की प्राप्ति के पश्चात् जघन्य कितनें काल में मोक्ष जा सकता है ?

उत्तर—अनादि मिथ्या दृष्टि जीव सम्यग्दर्शन-प्राप्ति के पश्चात जघन्य से एक अन्तर्मुहूर्त में ही मोक्ष प्राप्त कर सकता है अर्थात् सम्यग्दर्शन के पश्चात् प्रत्येक गुणस्थान में पहुंच सकता है और मोक्ष प्राप्ति कर सकता है। सभी गुणस्थानों का समय जघन्यतः एक एक अन्तर्मुहूर्त होते हुए भी, वह आत्मा मात्र एक ही उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त में मोक्ष प्राप्ति करता है।

प्रश्न 164–शत्रुंजय पर्वत (तीर्थ) पर किस २ का मोक्ष हुआ है?

उत्तर—शत्रुंजय तीर्थ पर पुंडरीक स्वामी पांच कोटि मुनियों सहित, द्राविड़वारि खिल्लजी दस कोटि मुनियों सहित तथा पाण्डव वीस कोटि मुनियों सहित मोक्ष गये हैं। श्री रामचन्द्र जी तीन कोटि मुनियों सहित नमि विनमि दो कोटि मुनियों सहित तथा श्री सोमयशा जी १३ कोटि मुनियों सहित मोक्ष गये। श्री सागर जी एक कोटि मुनियों सहित मोक्ष गये। श्री शांव प्रद्युम्न जी साढ़े आठ कोटि मुनियों सहित मोक्ष गये। श्री नारद जी ९१ लाख मुनियों सहित मोक्ष गये। थावच्चा ऋषि जी एक कोटि मुनियों सहित मोक्ष गये। शुकपरिव्राजक एक हज़ार मुनियों सहित मोक्ष गये। श्री अचेल सूरि जी ५०० मुनियों सहित मोक्ष गये। इसके

अतिरिक्त भी अनेक मुनि यहां से मोक्ष गये हैं।

(ज्ञाता धर्म कथा सूत्र, अध्याय ५)

प्रश्न 165–संसार में कुल कितने सूर्य व चन्द्र हैं?

उत्तर—सम्पूर्ण तिर्यक लोक में असंख्यात सूर्य तथा असंख्यात चन्द्र हैं। किन्तु मनुष्य क्षेत्र (अढ़ाई द्वीप) में कुल एक सौ बत्तीस सूर्य एवं एक सौ बत्तीस चन्द्र हैं। इसका विवरण इस प्रकार से है :

जम्बू द्वीप में—२ सूर्य २ चन्द्र हैं।

लवण समुद्र में—४ सूर्य ४ चन्द्र[1] हैं।

धात की खण्ड में—१२ सूर्य १२ चन्द्र हैं।

कालोदधि समुद्र में—४२ सूर्य ४२ चन्द्र हैं।

अर्ध पुष्कर वर द्वीप में—७२ सूर्य ७२ चन्द्र हैं।

(ठाणांग सूत्र ५ उद्देश्य १ सूत्र ४०१)

(जीवाभिगम प्रतिपत्ति ३ सूत्र १२२)

प्रश्न 166–क्या आत्मा के सभी आत्म प्रदेश कर्म वर्गणाओं से लिप्त हैं?

उत्तर—आत्मा के असंख्य प्रदेश हैं किन्तु मध्य के आठ रुचक प्रदेश कर्मों से सर्वथा अलिप्त हैं। शेष सभी असंख्य प्रदेश कर्म वर्गणाओं से लिप्त हैं।

प्रश्न 167–जैन दर्शन स्याद्वाद को मानता है। यह स्याद्वाद क्या वस्तु है?

उत्तर—हर एक वस्तु को अनेक दृष्टियों से देखना ही स्याद्वाद है। उदाहरणार्थ - एक व्यक्ति अपनी सन्तान की अपेक्षा से पिता है किन्तु अपने पिता की अपेक्षा से पुत्र है। अपने श्वसुर की अपेक्षा से जमाई है, अपने मामा की अपेक्षा से भानजा है, अपनी पत्नी की अपेक्षा से पति है, एवं अपनी बहिन की अपेक्षा से भाई भी है। एक ही व्यक्ति होते हुए भी वह अपेक्षावाद से अलग २ तरह

१. एक चन्द्र का परिवार २८ नक्षत्र, ८८ ग्रह, और ६६९७५ कोड़ा कोड़ी तारे हैं।

से पुकारा जाता है। इसी कारण यह स्याद्वाद सत्यवाद है। यह संशयवाद कदापि नहीं है।

प्रश्न 168–कषाय का क्या अर्थ है ?

उत्तर—कष+आय=कषाय। कष का अर्थ - संसार अर्थात् परिभ्रमण है। आय अर्थात् लाभ। जिस से संसार परिभ्रमण का, जन्म मरण का, चारों गतियों में भटकने का लाभ हो वह कषाय है। क्रोध-मान-माया-लोभ ही वास्तव में संसार है। इसी कारण क्रोध, मान, माया, लोभ को ही कषाय कहा है।

प्रश्न 169–संसार में सुख है, या दुःख ?

उत्तर—यह संसार अनंत दुःखमय है। इसमें सुख का लेश मात्र भी नहीं है। अज्ञानी जीवों को भले ही यह संसार सुखमय प्रतीत होता हो, किन्तु अनंतज्ञानी तीर्थंकर पुरुषों ने इस संसार को अनंत दुःखमय देखा है और ऐसा ही प्ररूपण किया है।

प्रश्न 170–जीवन को ऊंचा उठाने के लिए क्या करना चाहिए ?

उत्तर—जीवन को ऊंचा उठाने के लिए तीन बातों को धारण करना चाहिये। अहिंसावाद, अनेकान्तवाद, अपरिग्रहवाद।

१-अहिंसावाद को ग्रहण करने से वैर, विरोध, वैमनस्य मिट जाता है। सर्व जीवों के प्रति प्रेम का व्यवहार जाग्रत होता है। किसी को भी कष्ट पहुंचाने की भावना नहीं होती। समस्त जीवों के प्रति मैत्री भाव जाग्रत होता है। समस्त विश्व कुटुम्ब सदृश बन जाता है। परिणाम स्वरूप जीवन में अनुपम आनन्द की अनुभूति होने लगती है।

२-अनेकान्तवाद को अपनाने से समन्वय दृष्टि आती है। दूसरों की मान्यताओं पर द्वेष बुद्धि नष्ट होकर सहिष्णुता तथा समभाव बना रहता है। अन्य धर्मावलम्बियों के साथ विरोध, वितंडावाद, आक्षेप वृत्ति समाप्त होकर जीवन में विकास का मार्ग प्राप्त होता है।

३-अपरिग्रहवाद से मानव का जीवन तृष्णा रूप अग्नि में जलने

बच जाता है। संतोष वृत्ति बनी रहती है। दूसरों के साथ, अन्याय, अनीति, कपट, कटु व्यवहार की वृत्ति शान्त हो जाती है। अपने से अधिक सुखी, धनवानों को देख कर भी ईर्ष्या भावना नहीं होती। परिणाम स्वरूप जीवन सादा एवं सुखी बनता है तथा मानसिक शान्ति की प्राप्ति होती है।

प्रश्न 171—साधु जीवन में सुख है या दुःख ?

उत्तर—जो साधु संयम में अनुरक्त है, वासना रहित है, निरन्तर आत्मार्थ में लगा रहता है, संसारिक सुखों की मन से भी इच्छा नहीं करता, उस महामुनि को एक वर्ष की दीक्षा पर्याय में अनुत्तर विमान के देवताओं से भी अधिक सुखी कहा गया है।

प्रश्न 172—आत्मा नित्य है या अनित्य ?

उत्तर—यहां पर स्याद्वाद दृष्टि को लक्ष्य में रख कर गहराई से विचार करने पर यह कहा जा सकता है कि मूल द्रव्य की दृष्टि से आत्मा नित्य है। शाश्वत है, अजरामर है। किन्तु पर्याय की अपेक्षा से अनित्य भी कहा जा सकता है, कारण कि संसारी आत्मा की अनंतानंत पर्याय होती रहती है। यह नियम सभी जड़ पदार्थों पर भी घटित होता है।

प्रश्न 173—आत्मा भारी कब होता है ?

उत्तर—जब आत्मा मन वचन काया के योगों से मिथ्यात्वादि अठारह पाप स्थानों का सेवन करता है तो वह कर्मों से अत्यन्त भारी हो जाता है।

प्रश्न 174—क्या मुक्तात्मा जन्म लेती है ?

उत्तर—नहीं ! मुक्तात्मा कभी जन्म नहीं ले सकती। उसके जन्म लेने का कारण समाप्त हो चुका है। जन्म का मुख्य कारण राग द्वेष है। राग द्वेष से पुनर्जन्म के आयुष्य का बंध होता है। बिना कारण के कार्य नहीं होता। यह अटल नियम है।

प्रश्न 175—अन्य मतावलंबी ईश्वर को जन्म लेने वाला क्यों मानते हैं ?

उत्तर--ईश्वर के वास्तविक स्वरूप की जानकारी न होने से वह लोग ऐसा मानते हैं। यदि ईश्वर जन्म लेगा तो मरेगा भी। कारण कि जन्म के साथ मरण नियत है। तो फिर संसारी प्राणी तथा ईश्वर में क्या अंतर रहा ? जन्म मरण को ही ज्ञानी पुरुषों ने अनंत दुःख कहा है।

प्रश्न 176–संसार में कुल कितने द्रव्य हैं ?

उत्तर– ससार में कुल छः द्रव्य हो हैं :

१-धर्मास्तिकाय २-अधर्मास्तिकाय ३-आकाशास्तिकाय
४-जीवास्तिकाय ५-पुद्गलास्तिकाय ६-काल।

प्रश्न 177–छः द्रव्यों के क्या २ लक्षण हैं ?

उत्तर—१. धर्मास्तिकाय—यह एक अखंड सर्वलोक व्यापी, अरूपी तथा नित्य द्रव्य है, तथा सभी पदार्थों को गति करने में सहायक है।

२. अधर्मास्तिकाय—यह एक अखंड सर्वलोक व्यापी, नित्य तथा अरूपी द्रव्य है, तथा सभी पदार्थों को स्थिर रखने में सहायक है।

३. आकाशास्तिकाय—यह एक अखंड अरूपी, लोकालोक व्यापी, तथा नित्य द्रव्य है। यह सभी द्रव्यों का आश्रय भूत है।

४. जीवास्तिकाय—जीव द्रव्य अनंत है, सर्व लोक व्यापी है, नित्य है, चैतन्य स्वरूप है, दर्शन, ज्ञान रूप स्वभाविक गुण से युक्त है, अरूपी है तथा कर्त्ता है और भोक्ता भी हैं।

५. पुद्गलास्तिकाय—यह अनंत पुद्गल द्रव्य रूप हैं, सर्वलोक व्यापी है, नित्य है, रूप, रस, गंध, स्पर्श, स्वभावी है।

६. काल द्रव्य—यह वर्तना लक्षण वाला है, अनादि अनंत है, एक द्रव्य रूप है, अप्रदेशी है तथा मनुष्य क्षेत्र में वर्तता है। मनुष्य क्षेत्र से वाहर[1] काल द्रव्य नहीं है। (ठाणांग ५ उ. ३ सूत्र ४४१)
(उत्तराध्ययन सूत्र, अ. २८, गाथा ७-१२)

१. मनुष्य क्षेत्र से वाहर रात दिन की व्यवस्था नहीं है। इसी कारण वहां पर काल द्रव्य का अभाव माना गया है।

प्रश्न 178–महावीर भगवान् ने दीक्षा लेते समय किसे नमस्कार किया था ?

उत्तर—तीर्थंकरों का यह अनादि नियम है कि वह दीक्षा लेते समय किसी को गुरु धारण नहीं करते। वह 'नमोसिद्धाणं' कह कर मात्र सिद्ध भगवान को ही नमस्कार करते हैं।

प्रश्न 179–भगवान् महावीर को किस स्थान पर केवल ज्ञान हुआ तथा वे कितने समय तक छद्मस्थ रहे ?

उत्तर—महावीर को ऋजुवालिका नदी के किनारे श्यामाक नामक किसान के खेत में वैसाख शुक्ला दशमी के दिन शाल वृक्ष के नीचे, दिन के चतुर्थ पहर में शुक्लध्यान के दूसरे भेद (एकत्व वितर्क निर्विचार) को ध्याते हुए उत्कटिका[1] आसन में बैठे हुए केवल ज्ञान हुआ था। महावीर प्रभु बारह वर्ष छः महीने पन्द्रह दिन तक छद्मस्थ रहे तथा तीस वर्ष तक केवलि-पर्याय में रहे।

(कल्पसूत्र)

प्रश्न 180–भगवान् महावीर के श्वसुर, स्त्री, पुत्री तथा जमाई का क्या नाम था ?

उत्तर—भगवान महावीर की स्त्री का नाम यशोधा, श्वसुर का नाम सामंत समरवीर, पुत्री का नाम प्रियदर्शना तथा जमाई का नाम जमालि[2] था।

प्रश्न 181–क्या भगवान् महावीर आहार के लिए पात्र (पात्रे) आदि रखते थे ?

उत्तर—भगवान पात्रे नहीं रखते थे, बल्कि अपने दोनों हाथ मिलाकर

१. गो दोह आसन—गाय दोहते समय जैसे बैठा जाता है, अर्थात् दोनों पैर के पंजों के भार।

२. जमालि, भगवान् महावीर का भानजा भी लगता था, किन्तु उस समय मामा की पुत्री को गम्य माना जाता था। इसी कारण से जमालि का विवाह प्रियदर्शना के साथ हुआ।

उसमें आहार ग्रहण करके वहीं पर (गृहस्थ के घर पर) ही खड़े २ आहार करते थे तथा उसी समय चउविहार पच्चक्खान कर लेते थे।

प्रश्न 182–सिद्ध भगवान् सर्वथा अष्ट कर्म रहित हैं तथा अरिहन्तों के ४ अघाती कर्म शेष हैं अतः सिद्ध भगवान अरिहंतों से श्रेष्ठ हैं। ऐसी स्थिति में नमस्कार महामंत्र में अरिहन्त को पहले नमस्कार क्यों किया गया है ?

उत्तर—यह ठीक है कि आत्म गुणों की अपेक्षा से अरिहन्तों से सिद्धों का स्थान ऊंचा है, किन्तु अरिहन्त केवल ज्ञान के पश्चात संसार के जीवों को धर्मोपदेश देते हैं, चतुर्विधसंघ की स्थापना करते हैं, निर्वाण अवस्था तक अपने ज्ञान की गंगा वहा कर लाखों-करोड़ों जीवों को मोक्ष मार्ग पर ले जाते हैं अतः इस संसार के परमोपकारी एवं निष्कारणबंधु हैं, तीनों लोकों में पूजनीय हैं इन्द्रदेव, चक्रवर्ती राजा आदि भी उन के चर्णों की रज को मस्तक पर लगाते हैं एवं वे निकट उपकारी भी हैं। इसी कारण से व्यवहार को मुख्य रखते हुए अरिहन्तों को प्रथमतः तथा सिद्धों को वाद में नमस्कार किया गया है। व्यवहार में भी 'गुरुर्ब्रह्मा गुर्रविष्णुः गुरुर्देवोमहेश्वरः' इस उक्ति के द्वारा मार्ग दर्शक का स्थान ऊंचा बताया गया है।

प्रश्न 183–मनुष्य लोक में कौन २ से देवता आ सकते हैं ?

उत्तर—व्यन्तर, वाणव्यन्तर, भवनपति, ज्योतिष तथा अच्युत विमान तक के देवता मनुष्य लोक में आ सकते हैं। नवग्रैवेयक तथा अनुत्तर वासी देव मनुष्य लोक में नहीं आ सकते।

प्रश्न 184–भगवान महावीर अपने शिष्य इन्द्रभूति (गौतम) को वार २ क्या उपदेश देते थे ?

उत्तर—भगवान महावीर इन्द्रभूति को वार २ 'समयंगोयम मा पमाय' यह उपदेश देते थे अर्थात् 'हे गौतम ! समय मात्र का भी प्रमाद न कर'।

प्रश्न 185–क्या गौतम स्वामी सचमुच प्रमादी थे कि जिस कारण से भगवान महावीर को उन्हें वारम्वार 'प्रमाद न करने का' उपदेश देना पड़ता था ?

उत्तर—गौतम स्वामी प्रमादी नहीं थे। वे निरन्तर आत्म जाग्रत रहते थे। लेकिन दूसरे मुनियों को भी प्रतिवोधित करने के लिए भगवान् उपर्युक्त उपदेश देते हों, ऐसा सम्भव है। भगवान् महावीर गौतम स्वामी को और भी उपदेश देते थे, जो कि निम्न प्रकार से हैं :

हे गौतम ! आर्य देश की प्राप्ति, उत्तम कुल, पूर्ण इन्द्रियां, धर्म श्रवण, श्रद्धा तथा चारित्र प्राप्ति यह सभी वस्तुएं उत्तरोत्तर वहुत दुर्लभ हैं। अतः क्षण मात्र भी प्रमाद न कर।

हे गौतम ! तेरे सिर के केशों का कालापन नष्ट होकर सफेदी आ रही है। तेरे दाँत उखड़ते जा रहे हैं। तेरे शरीर पर बुढ़ापा चला आ रहा है। तेरी आंखों का तथा कानों का वल घटता जा रहा है। अतः क्षणमात्र भी प्रमाद न कर।

हे गौतम ! तुमने कंचन कामिनी को छोड़ कर दीक्षा ली है अतः पुनः उसकी इच्छा मत करना। जीवन का भरोसा नहीं है। जैसे कमल पत्र पानी में उत्पन्न होने पर भी पानी से ऊपर रहता है, लिप्त नहीं होता, वैसे तुम भी संसार से निर्लेप रहो तथा क्षणमात्र भी प्रमाद मत करो।

हे गौतम ! अव किनारा निकट आ चुका है। किनारे को छोड़कर भवसागर से पार हो जाओ। किनारे पर मत बैठे रहो तथा स्नेह भाव का त्याग करो। (उत्तराध्ययन, अध्ययन ७)

प्रश्न 186–गौतम स्वामी गृहस्थ अवस्था में कौन थे ?

उत्तर—गौतम स्वामी गृहस्थ अवस्था में गौतम गोत्रीय, यज्ञादि क्रियाकांडी ब्राह्मण थे। इनका नाम इन्द्रभूति था, जिस समय भगवान को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ, उसके अगले ही दिन (वैसाख शुक्ला एकादशी को) गौतम भगवान् महावीर पर द्वेष करके उनसे वाद

विवाद करने के लिए समवसरण में गये थे। किन्तु भगवान ने आते ही गौतम को नाम लेकर बुलाया और उस के मन के संशय का निवारण कर दिया। उसी समय गौतम ने भगवान के पास दीक्षा स्वीकार की।

प्रश्न 187–तीर्थंकर देव के जन्माभिषेक के समय मेरु पर्वत पर कितने और कौन २ से इन्द्र आते हैं ?

उत्तर—तीर्थंकर के जन्माभिषेक के समय मेरु पर्वत पर चौंसठ इन्द्र आते हैं। जिनकी संख्या इस प्रकार है: कल्पोपपन्न बारह देव लोकों के १० इन्द्र, वाणव्यन्तर देवों के ३२ इन्द्र, भवनपति देवों के २० इन्द्र तथा सूर्य चन्द्र ये २ इन्द्र। इस प्रकार कुल चौंसठ ६४ इन्द्र हैं।

प्रश्न 188–मेरु पर्वत कितना ऊंचा है तथा वह किस स्थान पर स्थित है ?

उत्तर—मेरुपर्वत ज़म्बूद्वीप के मध्य में स्थित है। इसकी ऊंचाई एक लाख योजन है। यह पर्वत समस्त विश्व में सब से बड़ा पर्वत है। अढ़ाई द्वीप में अन्य चार सुमेरु पर्वत भी हैं। किन्तु वे ८५ हज़ार योजन ऊंचे हैं।

प्रश्न 189–भरत क्षेत्र में महावीर निर्वाण के पश्चात कितने वर्ष तक भव्यजीव मोक्ष में जाते रहे ?

उत्तर—महावीर निर्वाण के ६४ वर्ष बाद जम्बू स्वामी का मोक्ष हुआ। ये भरत क्षेत्र में अवसर्पिणी काल में अन्तिम मोक्षगामी जीव थे। तदनंतर मोक्ष मार्ग बन्द हो गया।

प्रश्न 190–मोक्ष प्राप्ति के लिये ज्ञान की आवश्यकता है या क्रिया की ?

उत्तर—मोक्ष प्राप्ति के लिए ज्ञान तथा क्रिया दोनों की आवश्यकता है। अकेला ज्ञान या अकेली क्रिया मोक्ष प्राप्ति का कारण नहीं है। ज्ञान को पंगु व्यक्ति की उपमा दी गई है तथा क्रिया को अन्धे

व्यक्ति की उपमा दी गई है। पंगु व्यक्ति यदि अंधे व्यक्ति के कन्धे पर बैठ जाये तो दोनों जंगल पार कर सकते हैं। जैसे अकेला पंगु या अकेला अंधा व्यक्ति जंगल को पार नहीं कर सकता, वैसे ही अकेले ज्ञान या क्रिया के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है - कहा भी है। "ज्ञानक्रियाभ्याम् मोक्षः" अर्थात् ज्ञान तथा क्रिया दोनों ही मोक्ष प्राप्ति के कारण हैं।

प्रश्न 191–अमृतक्रिया तथा विषक्रिया का क्या अर्थ है ?

उत्तर—जिस क्रिया को करते हुए कार्य-कारण भाव का ज्ञान विद्यमान रहता है, आत्म परिणाम, अशुभोपयोग में नहीं जाता तथा मन में संसारिक वासनाओं का अभाव हो जाता है। उस क्रिया को अमृत क्रिया कहते हैं तथा जिस क्रिया में कार्य-कारण भाव का विवेक नहीं होता, मन में विषयों-कषायों की इच्छाएं बनी रहती हैं। बाह्य क्रियाएं करते हुए भी अंतरंग में आर्त्त, ध्यान रौद्र ध्यान चलता रहता है तथा धर्म-क्रिया के फल स्वरूप साँसारिक भोग विलास की कामनाएं बनी रहती हैं, उसे विष किया कहते हैं।

प्रश्न 192–प्रथमतः ज्ञान आवश्यक है या क्रिया ?

उत्तर—प्रथम ज्ञान का होना आवश्यक है। जिस व्यक्ति को जीव, अजीव, आत्मा-परमात्मा, पुण्य-पाप की जानकारी नहीं है, वह व्यक्ति किस प्रकार धर्म साधना करेगा ? इसीलिए कहा भी है : 'पढमंनाणं तओ दया' अर्थात् प्रथमतः ज्ञान आवश्यक है, दया तथा क्रिया का पालन बाद में है।

(दशवैकालिक सूत्र अ-४, गाथा १०)

प्रश्न 193–क्या वर्तमान काल में बारह अंग सूत्र उपलब्ध हैं ?

उत्तर—भगवान् महावीर निर्वाण के १७० वर्ष तक द्वादशाँगी (बारह अंग) के ज्ञाता भद्रबाहु स्वामी विद्यमान थे। इन के काल धर्म के पश्चात् ४७ वर्ष तक कुछ न्यून दस पूर्व के ज्ञाता स्थूल भद्र मुनि विद्यमान थे तथा वीरनिर्वाण से ५८४ वर्ष तक साढ़े ९ पूर्व के ज्ञाता श्री वज्र स्वामी विद्यमान थे। तत्पश्चात् धीरे २ बारहवें

अंग (दृष्टिवाद) का विच्छेद हो गया। वर्तमान काल में केवल ग्यारह अंग ही उपलब्ध हैं।

प्रश्न 194–ग्यारह अंगों को पुस्तकारूढ़ करने का कार्य किस आचार्य ने और किस समय में किया था ?

उत्तर—भगवान् महावीर निर्वाण के ९८० वर्ष पश्चात् आचार्य देवर्द्धिगणि क्षमा श्रमण ने वल्लभी पुर नगर (गुजरात) में शासन देवता की सहायता से जैनागमों को ताड़ पत्रों पर लिपिवद्ध करवाया था। उस से पहले समस्त आगम ज्ञान आचार्य तथा साधु आदि मौखिक रूप से ही कण्ठस्थ रखते थे।

प्रश्न 195–क्या १४ पूर्वों का ज्ञान लिपिबद्ध नहीं किया जा सकता ?

उत्तर—१४ पूर्वों का ज्ञान लिपिवद्ध नहीं हो सकता। एक पूर्व को लिपिवद्ध करने के लिए एक हाथी प्रमाण स्याही प्रयुक्त होती है। कुल चौदह पूर्वों को लिपिवद्ध करने के लिए १६३८३ हाथी प्रमाण स्याही चाहिए। इतने साधन कौन जुटा सकता है ? अनादि नियम के अनुसार १४ पूर्व कभी भी लिपिवद्ध नहीं होते। मात्र ग्यारह अंगों को ही लिपिवद्ध किया जाता हैं।

प्रश्न 196–रात्रि भोजन करने में क्या हानि है ?

उत्तर–जैनाचार्यों ने रात्रि भोजन को नरकों का कारण माना है। इतना ही नहीं अपितु अन्य मतावलंवियों के धर्म ग्रंथों में भी रात्रि भोजन को अति पापमय तथा नरक का कारण कहा है। यथा :

मद्यमांसाशनं रात्रौ, भोजनं कन्द-भक्षणम्।
ये कुर्वन्तिवृथा तेषां, तीर्थ यात्रा जपस्तपः॥ (महाभारत)

अर्थात् जो व्यक्ति मद्य, मांस, रात्रि भोजन तथा कन्द मूल[1] का

1. भूमि के अन्दर अन्दर पैदा होने वाले पदार्थ—आलू, गाजर, मूली, शकरकंदी, शलगम, अदरक, अरवी, कचालू आदि सब 'कंदमूल' कहलाते हैं। जैन शास्त्रों के अनुसार कंदमूल के सूक्ष्मतम (शेष पृष्ठ ६२ पर)

भक्षण करता है उस व्यक्ति के तीर्थ-यात्रा, जप, तप आदि शुभ कर्म व्यर्थ हो जाते हैं। मार्कण्डेयपुराण में कहा है :

अस्तंगते दिवानाथे, आपो रुधिरमुच्यते।
अन्नंमांस समं प्रोक्तं मार्कण्डेय महर्षिणा ॥

भावार्थ—सूर्य अस्त होने के बाद पानी खून के समान तथा अन्न मांस के तुल्य हो जाता है। मार्कण्डेय महामुनि ऐसा कहते हैं। भारत ग्रंथ में कहा है :

चत्वारि नरक द्वारि, प्रथमं रात्रि भोजनम्।
परस्त्रीगमनं चैव, संधानानंतकायिके ॥

भावार्थ—नरक के चार द्वार (रास्ते) हैं। जिस में प्रथम रात्रि भोजन है। दूसरा परस्त्री गमन है। तीसरा गीले आचार का भक्षण (संधान) है। चौथा कन्दमूल भक्षण (अनंतकाय) है।

प्रश्न 197—रात्रि भोजन में प्रत्यक्षतः क्या २ हानियां हैं ?

उत्तर—जैसा प्रकाश सूर्य का है, वैसा प्रकाश रात्रि को बिजली आदि का नहीं हो सकता। अतः रात्रि को छोटे २ जीव नहीं दिखते तथा वे भोजन द्वारा पेट में चले जाते हैं। रात्रि को भोजन करते समय भोजन में यदि कीड़ी खाई जाय तो बुद्धि भ्रष्ट हो जाती

(पृष्ठ ६१ का शेष)

खण्ड से भी अनंत जीव हैं। अतः कंदमूल भक्षण महापाप तथा महाहिंसा है।

शिव पुराण में भी कहा है :

यस्मिन्गृहे सदा नित्यं, मूलकं पाच्यते जनैः।
श्मशानतुल्यं तद्वेश्म, पितृभिः परिवर्जितम् ॥
मूलकेन समं चान्नं यस्तु भुङ्क्ते नराधमः।
तस्य शुद्धिर्न विद्येत चांद्रायणशतैरपि ॥

अर्थात् जिस के घर में नित्य कंद मूल पकाया जाता है, उसका घर बिना प्रेत के श्मशान के तुल्य है। जो मनुष्य मूल के साथ भोजन करता है, उसका पाप एक सौ चन्द्रायणव्रत करने से भी दूर नहीं होता।

है। जूं खाई जाय तो जलोदर रोग हो जाता है। मक्खी खाई जाय तो वमन होता है। मकड़ी खाई जाय तो पागलपन हो जाता है। छिपकली अथवा उस के मुंह की राल भोजन में पड़ जाय तो कोढ़ रोग भी हो जाता है। और यदि सर्प की राल भोजन में पड़ जाये तो मृत्यु भी हो जाती है। रात्रि भोजन से (सर्पादि की राल पड़ जाने से) होने वाली मृत्यु की कई घटनाएं शास्त्रों में वर्णित हैं तथा आजकल सुनने में भी आती हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी रात्रि भोजन हानिकारक है। उसे जठराग्नि पूर्ण रूपेण पचा नहीं सकती इसलिए रात्रि भोजन सर्वथा त्याज्य ही है। यहां तक भी कहा है कि जो व्यक्ति रात्रि भोजन नहीं करता उसकी आधी आयुष्य तप में गिनी जाती है। यथा :

ये रात्रौ सर्वदाहारं, वर्जयन्ति सुमेधसः।
तेषां पक्षोपवासस्य, फलं मासेन जायते ॥

प्रश्न 198–मूर्ति की द्रव्य पूजा तथा मूर्ति योग गृहस्थ श्रावक के लिए कहां तक आवश्यक है ?

उत्तर—सभी गृहस्थ श्रावकों के लिए आत्मकल्याणार्थ, मूर्ति की द्रव्य पूजा व मूर्ति योग (वाह्य आलम्बन) आवश्यक है। किन्तु त्यागी मुनियों को योग की अप्रमत्त अवस्था में (अर्थात् सातवें गुण स्थान में) मूर्ति योग आवश्यक नहीं है। अप्रमत्त अवस्था का काल मात्र अंतर्मुहूर्त प्रमाण है।

प्रश्न 199–क्या देवलोक में भी जिन मन्दिर हैं ?

उत्तर—देवलोकों में अवश्य ही जिन मन्दिर हैं तथा वे लाखों की संख्या में हैं। ये निम्न प्रकार से ज्ञेय हैं :

प्रथम देवलोक में बत्तीस लाख, दूसरे देवलोक में अट्ठाईस लाख, तीसरे देवलोक में बारह लाख, चौथे देवलोक में आठ लाख, पांचवें देवलोक में चार लाख, छटे देवलोक में पच्चास हज़ार, सातवें देवलोक में चालीस हज़ार, आठवें देवलोक में छः हज़ार, नवमें तथा दसवें में केवल चार सौ, ग्यारहवें तथा बारहवें

तीन सौ, नवग्रेवैयक (ऊपर के नवविमान) में तीन सौ अठारह तथा पांच अनुत्तर विमानों में केवल पांच मन्दिर हैं।

प्रश्न 200—देवलोकों के मन्दिरों में कितनी २ प्रतिमाएं हैं, तथा इन मन्दिरों की ऊंचाई, लम्बाई एवं चौड़ाई कितनी है ?

उत्तर—देवलोक के प्रत्येक मन्दिर में १८० प्रतिमाएं हैं तथा इन मन्दिरों की ऊंचाई ५० योजन है, लम्बाई १०० योजन है, एवं चौड़ाई ७२ योजन है। यह जिन मन्दिर शाश्वत हैं। किसी व्यक्ति के द्वारा निर्मित नहीं हैं।

प्रश्न 201—क्या अष्टापद तीर्थ पर भी जिन मन्दिर हैं ? यदि हैं तो इन्हें किस ने वनवाया था ?

उत्तर—अष्टापद पर्वत पर वड़ा भारी सिंहनिषद्या नामक जिन मन्दिर है। जिस में चौबीस तीर्थंकरों की उनके शरीर प्रमाण वाली रत्नों की मूर्तियां हैं। वहां ऋषभ देव के ९९ पुत्रों की भी प्रतिमाएं हैं। इस मन्दिर का निर्माण ऋषभ देव के प्रथम पुत्र भरत चक्रवर्ती ने करवाया था। काल के प्रभाव से आजकल यह पर्वत तथा मन्दिर यद्यपि दृष्टिगोचर नहीं होते तथापि वे इसी भरतक्षेत्र में अवश्यमेव विद्यमान हैं। कोई लब्धि धारी मनुष्य या देवता ही वहां पहुंच सकता है। वहां सामान्य व्यक्ति की पहुंच नहीं है। अनुमानत: अष्टापद पर्वत हिमालय का ही कोई ऊंचा शिखर है अथवा तिब्बत में भी इसके विद्यमान होने के कुछ प्रमाण मिलते हैं।

प्रश्न 202—तीर्थंकर दीक्षा लेने से पूर्व कितना दान देते हैं ?

उत्तर—तीर्थंकर देव दीक्षा से एक वर्ष पूर्व दान देना प्रारम्भ करते हैं। वे प्रतिदिन सूर्योदय से लेकर मध्याह्न समय पर्यंत एक करोड़ आठ लाख (१०८०००००) सुवर्ण मोहरों का दान देते हैं। इस प्रकार वे एक वर्ष (३६० दिन) में कुल तीन सौ अठ्ठासी करोड़ अस्सी लाख (३८८८००००००) सुवर्ण मुद्राएं दान देते हैं। यह

धन तिर्यक्जृम्भक देव (व्यन्तर जाति के देव) ला ला कर भगवान् के कोष में भरते हैं।

प्रश्न 203–भगवान् महावीर के कितने नाम हैं ?

उत्तर—भगवान् महावीर के छः नाम हैं–वीर, महावीर, वर्द्धमान, देवार्य, ज्ञात नंदन तथा चरमतीर्थकृत्।

(अभिधान चिंतामणि कोष)

प्रश्न 204–प्रमाद के कितने भेद हैं ? विस्तार से समझाएं।

उत्तर—प्रमाद के पांच भेद हैं। मद, विषय, कषाय, विकथा तथा निद्रा। मद के आठ भेद हैं, विषय के पांच भेद हैं, कषाय के चार भेद हैं, विकथा के चार भेद हैं तथा निद्रा के पांच भेद हैं। इस प्रकार प्रमाद के कुल छब्बीस विभेद हैं।

प्रश्न 205–प्रमाद के भेदों को विस्तृत रूप से बताएँ ?

उत्तर—मद के आठ भेद— १-जातिमद, २-कुलमद, ३-विद्यामद, ४-तपोमद, ५-बलमद, ६-ऋद्धिमद, ७-लाभमद, ८-रूपमद।

विषय के पांच भेद हैं– १-श्रोत्र, २-चक्षुः, ३-रसना, ४-घ्राण, तथा ५-त्वक् (शरीर) इन पांच इन्द्रियों का क्रमशः शब्द रूप रस गंध तथा स्पर्श ये पांच विषय हैं।

कषाय चार हैं—१-क्रोध, २-मान, ३-माया तथा ४-लोभ।

विकथा चार हैं–१-राजकथा, २-देशकथा ३-स्त्रीकथा तथा ४-भक्तकथा (भोजन कथा)।

निद्रा के पांच भेद—१-निद्रा, २-निद्रानिद्रा, ३-प्रचला ४-प्रचला-प्रचला, ५-सत्यानिद्धि इस प्रकार प्रमाद के छब्बीस भेद हुए।

प्रश्न 206–पांच इन्द्रियों के विषयों में आसक्त रहने का परिणाम क्या है ?

उत्तर—पांचों इन्द्रियों के विषयों में आसक्त रहने का परिणाम अनंत-संसार-परिभ्रमण है। क्योंकि जब एक २ इन्द्रिय के विषय के

कारण जीव अत्यन्त वेदना तथा मरण प्राप्त करते हैं तो पांचों इन्द्रियों के विषयों का परिणाम तो अनंत जन्म मरण होगा ही।

प्रश्न 207–क्या कभी गर्भ का परिवर्तन भी हो सकता है?

उत्तर—गर्भ परिवर्तन मनुष्य के वश की बात नहीं है। यदि कोई देवता आदि चाहे तो गर्भ परिवर्तन कर सकता है। जैसे पूर्व जन्म में महावीर के जीव ने कुल का मद किया था। इस कारण से वे देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षी में पैदा हुए एवं तिरासी (८३) दिन तक वहीं रहे। तत्पश्चात सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से हरिणैगमेषी देवता ने गर्भ को देवानन्दा की कुक्षि से त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में रखा। यह अनादि नियम है कि तीर्थंकर देवों का जन्म सर्वदा जैन धर्मोपासक क्षत्रिय कुल में ही होता हैं. ब्राह्मण आदि कुल में नहीं होता। इसी कारण से सौधर्म इन्द्र ने गर्भ परिवर्तन करने की आज्ञा दी थी।

प्रश्न 208–क्या मनुष्य जन्म से अवधि ज्ञानी हो सकता है?

उत्तर—सामान्य नियमानुसार तीर्थंकर देव ही जन्म से अवधि ज्ञान के धारक होते हैं। किन्तु कभी २ बहुत काल के पश्चात् अन्य व्यक्ति भी जन्म से अवधि ज्ञानी हो सकता है। जैसे शान्ति नाथ (सोलहवें तीर्थंकर) का जीव पूर्व के आठवें भव में वज्रायुध नामक चक्रवर्ती थे जोकि अवधि ज्ञान सहित ही पैदा हुए थे।

(प्रज्ञापनासूत्र-पद ५ टीका)

प्रश्न 209–भरत क्षेत्र में वर्तमान काल में मनुष्य को पांच ज्ञानों में से कितने ज्ञान प्राप्त हो सकते हैं?

उत्तर—भरत क्षेत्र में वर्तमान काल में जीव को अधिक से अधिक तीन ज्ञान ही प्राप्त हो सकते हैं, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान तथा अवधि ज्ञान।

प्रश्न 210–भगवान् महावीर को कितने उपसर्ग हुए थे?

भगवान महावीर के जीवन के मुख्य उपसर्ग निम्नलिखित हैं:

उत्तर—१-ग्वाले का, २-शूलपाणि[1] यक्ष का, ३-चंडकौशिक सर्प का,

1. जिस समय भगवान् अस्थिग्राम में शूलपाणि यक्ष के मन्दिर में ध्यानस्थ थे, उस समय यह उपसर्ग हुआ था।

४-सुदंष्ट नाग कुमार देवता का, ५-अग्नि का ६-कटपूतना देवी का ७-संगम देवता का ८-अनार्य देशीय लोगों का ९-ग्वाले द्वारा कानों में कीले ठोकने का। भगवान् महावीर को इसके अतिरिक्त और भी अनेक उपसर्ग हुए हैं।

प्रश्न 211–भगवान् महावीर ने छद्मस्थावस्था [साधना काल] में कुल कितने दिन पारणा किया था ?

उत्तर—भगवान ने लगभग साढ़े वारह वर्ष के छद्मस्थ काल में कुल ३४९ दिन ही आहार किया था। इनका शेष काल तपस्या में ही व्यतीत हुआ।

प्रश्न 212–भगवान् महावीर की दूसरी देशना किस स्थान पर हुई थी, तथा उससे प्रभावित होकर कितने मनुष्यों ने दीक्षा स्वीकार की थी ?

उत्तर—भगवान् की दूसरी देशना (समवसरण) अपापा (पावापुरी) नगरी में हुई थी। इससे प्रभावित होकर इन्द्रभूति आदि ४४११ विद्वान ब्राह्मणों ने दीक्षा स्वीकार की थी। यह सभी वेदों के पारगामी प्रकांड विद्वान थे, किन्तु भगवान की अमृतवाणी सुन कर इनके सभी संशय दूर हो गये और वे महावीर के शिष्य वन गये।

प्रश्न 213–तीर्थंकर देव को जितना ज्ञान होता है, क्या वे समस्त ज्ञान जनहितार्थ प्रकाशित करते हैं ?

उत्तर—तीर्थंकर देव तथा सामान्य केवली भगवन्तों को अनंतानंत ज्ञान होता है किन्तु समस्त ज्ञान को वह प्रकाशित नहीं कर सकते। कारण कि आयुष्य तो सीमित ही है जवकि ज्ञान अनंतानंत है। इसी कारण से तीर्थंकर देव, अपने ज्ञान का अनंतवां भाग ही प्रकाशित कर पाते हैं। उस से भी संख्याते जीव बोध प्राप्त करते हैं। इसी कारण से उन्हें संसार के परमोपकारी कहा जाता है।

प्रश्न 214–भगवान् महावीर प्रभु के भक्त [अनुयायी] कितने थे ?

उत्तर—महावीर प्रभु के समकाल में श्रेणिक राजा, कौणिक राजा, चेटक राजा, चंडप्रद्योत राजा, प्रसन्नचन्द्र राजा, उदायी राजा, शाल राजा, महाशाल राजा, नवमल्लिक राजा, नवलिच्छवि राजा नंदीवर्धन राजा आदि लगभग चालीस राजा महावीर प्रभु के अनुयायी थे।

प्रश्न 215–आत्म कल्याण की इच्छा वाले मनुष्य को सर्व प्रथम क्या करना चाहिए ?

उत्तर—आत्म कल्याण के इच्छुक मानव को सर्व प्रथम सात कुव्यसनों का त्याग अवश्यमेव करना चाहिए। सप्त व्यसन निम्न प्रकार से हैं : मांस भक्षण, शराव, चोरी, जूआ, वैश्या गमन, परस्त्री गमन तथा शिकार। यह सात कुव्यसन दुर्गति के कारण हैं। इन व्यसनों का सेवन करने वाले मानव की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है अतः धर्म व आत्मकल्याण के इच्छुक मानव के लिए इनका त्याग अनिवार्य है।

प्रश्न 216–क्या देवर्द्धिगणिक्षमा श्रमण से पहले भी जैनागम लिखे हुए थे ?

उत्तर—देवर्द्धिगीण क्षमाश्रमण से पूर्व जैनागम लिखे हुए प्रतीत नहीं होते। किन्तु कुछ चमत्कारिक विद्याओं के शास्त्र उस समय अवश्य थे। वीर निर्वाण सम्वत् ४७० में आचार्य सिद्धसैन दिवाकर ने चित्तौड़ में एक जिनमन्दिर के अन्दर एक वड़ा स्तम्भ देखा, जो औषधियों के लेप द्वारा बन्द किया गया था। आचार्य महाराज ने विपरीत औषधियो के लेप द्वारा उसे खुलवाया और उस में से एक हस्तलिखित[1] शास्त्र निकाला और वे उसे पढ़ने लगे अभी उन्होंने दो विद्याएं ही पढ़ी थीं, कि उसके अधिष्ठायक देव ने आगे पढ़ने से मना कर दिया और स्तम्भ पुनः बन्द कर दिया।

1. जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तर में लिखा है कि वह शास्त्र आज भी जैसलमेर के ज्ञान भण्डार में विद्यमान हैं।

प्रश्न 217–प्रदेशी जैसे नास्तिक राजा को किस आचार्य ने प्रति-बोधित किया था ?

उत्तर—तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ के चौथे पट्ट पर विराजमान, केशीकुमार श्रमण, जो कि चार ज्ञान के धारक थे उन्होंने प्रदेशी राजा को प्रतिबोधित किया था तथा उन्हें श्रावक के बारह व्रत भी ग्रहण करवाए थे। प्रदेशी राजा केवल ३९ दिन तक दृढ़ धर्माराधना करके प्रथम देवलोक में सूर्याभ नामक देवता बना तथा राजा की सूर्यकान्ता नामक रानी विषयासक्त होने से नरक में गई। सूर्यकान्ता रानी ने राजा को विष देकर मार डाला था।

प्रश्न 218–वज्र स्वामी का स्वर्गवास कब हुआ था तथा इनके पिता का क्या नाम था ?

उत्तर—वीर निर्वाण सम्वत् ५८४ अथवा विक्रम सम्वत् ११४ में आचार्य वज्रस्वामी कालधर्म को प्राप्त हुए थे। उन्होंने छोटी अवस्था में ही दीक्षा स्वीकार की थी, तथा पालने में झूलते २ (दीक्षा से पूर्व) ही ग्यारह अंगों का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। यह तुम्वन नगर के सेठ धनगिरि के पुत्र थे। इन्होंने जिन शासन की भारी प्रभावना की थी।

प्रश्न 219–अष्ट प्रवचन माता किसे कहते हैं ?

उत्तर—इर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदानभंडमत्त निक्षेपणा समिति, पारिष्ठापणिका समिति, मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति। इन पांच समिति तथा तीन गुप्ति को अष्टप्रवचनमाता कहते हैं। (उत्तराध्ययन-अ २४, गाथा १-२)

प्रश्न 220–इर्या समिति का क्या अर्थ है ?

उत्तर—सूर्य उदय होने पर, साढ़े तीन हाथ आगे दृष्टि रखकर जीव रक्षा करते हुए चलना इर्या समिति है।

(नवतत्व प्रकरण गाथा २६)

(समवायाँग ८, उत्तराध्ययन अ २४, गाथा १-२)

प्रश्न 221–भाषा समिति का क्या अर्थ है ?

उत्तर—सत्य वचन तथा निरवद्य भाषा बोलना भाषा समिति है। अर्थात ऐसा वचन नहीं बोलना, जिस से दूसरे के मन को पीड़ा हो। जैसे अंधे को अंधा, काने को काना, पागल को पागल, दरिद्री को दरिद्री कहना, यह व्यवहार से सत्य होने पर भी परमार्थ से असत्य है। इस कारण मुमुक्षु जीव को ऐसी भाषा का त्याग करना चाहिए। इसी का नाम भाषा समिति है।

(नवतत्व प्रकरण गाथा २६)

(उत्तराध्ययन, अ. २४, गाथा १-२)

प्रश्न 222–एषणा समिति का क्या अर्थ है ?

उत्तर—अभक्ष्य वस्तुओं का त्याग करना तथा बयालीस दोष रहित आहार ग्रहण करना, अपने निमित्त बना हुआ आहार, पानी ग्रहण न करना तथा गृहस्थ ने अपने परिवार के निमित्त जो भोजन तैयार किया है, उसमें से थोड़ा सा ग्रहण करना यह एषणा समिति है।

(नवतत्व प्रकरण गाथा २६)

(उत्तराध्ययन, अ. २४, गाथा १-२)

प्रश्न 223–आदानभंड निक्षेपणा समिति का क्या अर्थ है ?

उत्तर—वस्त्र पात्रादि को यतना (विवेक) पूर्वक उठाना तथा रखना, सभी प्रवृतियां यतना से करना, जिस से किसी जीव की हिंसा न हो। यह आदान भंड निक्षेपणा समिति है।

(नवतत्व प्रकरण गाथा २६)

(उत्तराध्ययन अ-२४ गाथा १-२)

प्रश्न 224–पारिष्ठा पाणिका समिति का क्या अर्थ है ?

उत्तर—मल, मूत्रादि यत्ना पूर्वक निर्जीव भूमि पर डालना। साधु जीवन में जो भी अनुपयोगी पदार्थ हैं। उन्हें ऐसे स्थान पर डालना कि किसी जीव की विराधना न हो। इसका नाम पारिष्ठा पाणिका समिति है।

(नवतत्व प्रकरण गाथा २६)

(उत्तराध्ययन २४ गाथा १-२)

प्रश्न 225–मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति का क्या अर्थ है ?

उत्तर—सर्वथा मनोव्यापार का त्याग करना, यह मनोगुप्ति की पराकाष्ठा है। यह बहुत उच्च श्रेणि का विषय है। किन्तु मन में आर्तध्यान तथा रौद्रध्यान अथवा अशुभोपयोग का त्याग करना तथा शुभोपयोग में अथवा धर्मध्यान में मन को लगाये रखना भी मनोगुप्ति है। सर्वथा मौन धारण करना अथवा सावद्य वचन का त्याग कर निर्वध भाषा बोलना, वचन गुप्ति है।

शरीर की (काया की) सभी प्रवृतियां बन्द करके कायोत्सर्ग में रहना, अथवा काय द्वारा किसी भी प्रकार की पाप प्रवृति न करना काय गुप्ति है। (नवतत्व प्रकरण गाथा २६)

(उत्तराध्ययन अ २४ गाथा १-२, समवायांग ८)

प्रश्न 226–शल्य कितने प्रकार का है, विस्तृत वर्णन करें ?

उत्तर—शल्य तीन प्रकार का है—माया शल्य, निदान शल्य, मिथ्यात्व-शल्य, माया शल्य, कपट सहित धर्म क्रिया करना या दूसरों के दिखाने वास्ते धर्म क्रिया करनी अथवा वाहर से धर्मात्मापणे का ढौंग करना अंतरंग में पापाचरण करना।

निदान शल्य—पहिले आत्महित की भावना से धर्मानुष्ठान करना वाद मे इस भव के लिए या पर भव के लिए इन्द्र—चक्रवर्ती आदि भौतिक सुख की इच्छा कर बैठना। अर्थात् मेरी धर्म करनी का यह (संसारिक) फल मिले, ऐसी तीव्र इच्छा करना। जैसे, संभूति मुनि ने चारित्र के फल स्वरूप चक्रवर्ती वनने का निदान किया था।

मिथ्यात्वशल्य -संसारिक सुखों की, भोगविलास की इच्छाओं से पूजा, प्रतिक्रमण. सामायिक, तीर्थयात्रा, जपतपादि आदि करना, अथवा मन में विषयों की इच्छाएं होते हुए भी मजबूरी से जप तप करना।

प्रश्न 227–छः लेश्या कौन २ सी हैं, उदाहरण सहित समझाएं ?

उत्तर—कृष्ण-नील-कापोत-तेजो-पद्म-शुक्ल—यह छः लेश्या है। इस में

प्रथम की तीन त्याज्य हैं। पीछे की तीन ग्रहण करने योग्य हैं। उदाहरण—छः व्यक्ति मिलकर जामुन खाने के वास्ते एक बगीचे में जाते हैं। जामुन का वृक्ष देख कर कृष्ण लेश्या वाला व्यक्ति बोला इस वृक्ष को जड़ से उखाड़ कर गिरा दो—नील लेश्या वाला बोला ऐसा करने की क्या आवश्यकता है। बींच में से (तना) काट कर गिरा दो। कापोत लेश्या वाला बोला ऐसा मत करो, इसकी मोटी-मोटी शाखाएं काट डालो। चौथा तेजो लेश्या वाला बोला, नहीं इस वृक्ष की छोटी छोटी टहनियां काट लो। अपना काम बन जायेगा। पांचवां पद्म लेश्या वाला बोला—अरे भाई जामुन ही तो खाने हैं, इस वृक्ष का सत्यानाश क्यों करते हो। जामुन के गुच्छे ही तोड़ लो, बस काम चल जायेगा। छठा शुक्ल लेश्या वाला कहने लगा, अरे सभी झंझट छोड़ो, वृक्ष के नीचे भी सैंकड़ों जामुन गिरे पड़े हैं। वही इकट्ठे करो और मौज उड़ाओ। छ व्यक्तियों की भावनाएं भिन्न २ हैं। पहिले तीन की भावना अति कलुषित हैं। पीछे के तीन की भावनाएं उतरोत्तर उज्जवल हैं—मन के विवेक युक्त परिणामों को लेश्या कहा गया है। (उपदेश प्रसाद स्तंभ १६)

(उत्तराध्ययन अ-३४, पन्नवणा पद १७-३०४ सूत्र, २२५ टीका)

प्रश्न 228—संज्ञा कितने प्रकार की हैं तथा किस गति में कौन सी संज्ञा अधिक है ?

उत्तर—आहार-भय-मैथुन-परिग्रह यह चार संज्ञाएं हैं: देवगति में, परिग्रह संज्ञा विशेष हैं। मनुष्यगति में मैथुन संज्ञा विशेष रूप से होती है। तिर्यञ्च गति में आहार संज्ञा विशेष रूप से होती है। नरक गति में भय संज्ञा विशेष रूप से होती है। वैसे प्रत्येक गति के जीवों में चारों संज्ञाएं होतीं हैं। यहां जिस गति में जो संज्ञा मुख्य रूप से है यह बताया है।

(दण्डक प्रकरण गाथा-१२)

प्रश्न 229—किस किस गति के जीवों में किस: किस कषाय की मुख्यता है ?

उत्तर—देवगति में लोभ कषाय की मुख्यतः है, मनुष्यगति में मान कषाय की, तिर्यञ्च गति में माया कषाय की तथा नरक गति में क्रोध कषाय की मुख्यतः है। यद्यपि प्रत्येक गति के जीवों में चारों कषाय विद्यमान होते हैं। तथापि उपर्युक्त वर्णन वाहुल्य की अपेक्षा से वोध्य है।

प्रश्न 230—देह धारी मनुष्य कषाय रहित हो सकता है या नहीं ?

उत्तर—केवल ज्ञानी मानव देहधारी ही होते हैं, किन्तु मोह का सर्वथा नाश हो जाने से उनके कषाय का भी अभाव हो जाता है। कषाय का मूल कारण मोहनीय कर्म है। मोहनीय कर्म के क्षीण होने पर ही केवल ज्ञान प्राप्त होता है।

प्रश्न 231—कर्म वंध का मुख्य कारण क्या है ?

उत्तर—कर्म वन्धन का मुख्य कारण मन ही है। वचन एवं काया की प्रवृत्ति के पीछे यदि मन का योग न हो (अथवा मनो वृत्ति निर्लेप वनी रहे) तो विशेष कर्मवन्ध नहीं होता।

प्रश्न 232—दीवाली पर्व किस निमित्त से प्रारम्भ हुआ ?

उत्तर- दीवाली पर्व का सम्वन्ध भगवान महावीर के निर्वाण से है। जिस रात्रि को भगवान महावीर स्वामी का निर्वाण हुआ, उस समय अट्ठारह[1] राजा भगवान के समवसरण में विद्यमान थे। भगवान महावीर का निर्वाण कार्त्तिक वदि अमावस्या की रात्रि को हुआ। राजाओं ने विचार किया कि 'अव भाव प्रकाश (केवल ज्ञान रूपी प्रकाश) तो अस्त हो गया है, अतः द्रव्य प्रकाश ही करना चाहिए।' अतः उन्होंने जवाहरात, हीरे, पन्ने आदि निकाल कर द्रव्य प्रकाश किया तथा समस्त पावापुरी में दीपमाला हुई। इसी तिथि को प्रतिवर्ष मनाने से दीपावली पर्व प्रचलित हो गया। इसी रात्रि को गौतम स्वामी को केवल ज्ञान रूपी लक्ष्मी का लाभ होने से व्यवहार में लोग, लक्ष्मी पूजन करने लग गये।

1. नवमल्लिक तथा नव लिच्छवी राजा।

प्रश्न 233–वास्तव में आत्मा का शत्रु तथा मित्र कौन है ?

उत्तर—वास्तव में आत्मा स्वयं ही अपना शत्रु है तथा स्वयं ही अपना मित्र भी है। अर्थात् जब आत्मा अशुभोपयोग में रमण करता है तथा हिंसा, झूठ, चोरी आदि पाप प्रवृत्तियां करता है, उस समय आत्मा स्वयं ही अपना शत्रु होता है, तथा जब आत्मा शुभोपयोग को धारण करता है अर्थात् अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, परोपकार तथा परमार्थ आदि प्रवृत्तियाँ करता है, उस समय आत्मा स्वयं अपना मित्र होता है। बाह्य निमित्तों पर शत्रु मित्र भाव रखना या उनको शत्रु मित्र समझना मात्र अज्ञानदशा ही है। क्योंकि इस बाह्य दृष्टि वाला व्यक्ति अध्यात्म की ओर उन्मुख नहीं हो सकता।

प्रश्न 234–जैन दर्शनानुसार भरत क्षेत्र में कुल कितने देश हैं ?

उत्तर—भरत क्षेत्र में छः खण्ड तथा बत्तीस हजार देश हैं। प्रथम खण्ड (आर्यखण्ड) में केवल साढ़े पच्चीस देश आर्य कहलाते हैं, शेष सभी देश अनार्य कहलाते हैं।

प्रश्न 235–सच्चा साधु कौन हो सकता है ?

उत्तर—जो सम्यग्दृष्टि हो, पांच महाव्रतों का धारक तथा पालक हो, पांच समिति तीन गुप्ति का पालक हो, वन्दक तथा निन्दक में समभाव रखने वाला हो, पांचों इन्द्रियों को वश में रखने वाला हो, कंचन एवं कामिनी का त्यागी हो, धनाढ्य, धराधीश तथा दीनहीन दरिद्री के साथ समव्यवहार करने वाला हो, वह ही सच्चा साधु हो सकता है।

प्रश्न 236–सच्चा श्रावक किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो सम्यग्दृष्टि हो (सम्यग्दृष्टि अर्थात देव, गुरु तथा धर्म पर दृढ़ श्रद्धावान हो) वीतराग सर्वज्ञ अरिहन्त देव को ही अपना देव मानता हो, कंचन कामिनी के त्यागी निर्ग्रंथ साधु को अपना गुरु मानता हो, तथा वीतराग प्ररुपित धर्म को (सिद्धांत को) ही धर्म मानता हो, चारित्र धर्म (दीक्षा) की अनुमोदना करने वाला हो,

चारित्र (दीक्षा) ग्रहण करने की इच्छा वाला हो, बारह व्रतों का धारक तथा पालक हो, प्रतिदिन अरिहन्त परमात्मा की द्रव्य तथा भाव से पूजा करने वाला हो। अपने ग्राम में निर्ग्रंथ मुनियों की विद्यमानता होने पर नित्य प्रतिदिन धर्म श्रवण करने वाला हो, देव, गुरु तथा धर्म की कभी भी निन्दा करने वाला न हो, प्रतिदिन मुनियों को दान देने वाला हो तथा श्रावक के इक्कीस गुणों से युक्त हो, बाईस अभक्ष्य पदार्थों का त्याग करने वाला हो तथा उसके जीवन में अन्तिम लक्ष्य वीतरागता की प्राप्ति ही हो, इत्यादि गुणों वाला व्यक्ति सच्चा श्रावक कहलाने योग्य है।

प्रश्न 237–भगवान् महावीर से पहले भी जैन धर्म था, इसका क्या प्रमाण है ?

उत्तर—भगवान् महावीर के पिता (राजा सिद्धार्थ) तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के श्रावक थे, तथा पार्श्वनाथ से भी पहिले बाईस तीर्थंकर हो चुके हैं। वर्तमान काल में वेदों को सब से प्राचीन धर्म शास्त्र कहा जाता है, इन वेदो[1] (ऋग्वेद में) में जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर ऋषभ देव, तथा बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ को नमस्कार किया गया है। जैन धर्म को प्राचीनता का यह प्रबल प्रमाण है।

---

1. ॐ नमोऽर्हन्तो ऋषभो.........(यजुर्वेद)

अर्थ 'ऋषभ देव अरिहन्त को नमस्कार हो'।

ऋग्वेद में—ॐ त्रैलोक्य प्रतिष्ठातानां चतुर्विंशति तीर्थंकराणां।
ऋषभादिवर्द्धमानान्तानां, सिद्धानां शरणं प्रपद्ये ॥

अर्थ—तीनों लोक में प्रतिष्ठित श्री ऋषभ देव आदि से लेकर श्री वर्द्धमान स्वामी तक चौवीस तीर्थंकर हैं, उन सिद्धों की शरण स्वीकार करता हूं।

शिव पुराण में कहा हैं :—

अष्टषष्टिषु तीर्थेषु यात्रायां यत्फलं भवेत्।
आदिनाथस्य देवस्य स्मरणेनापि तद्भवेत्।

(शेष पृष्ठ ७६ पर)

प्रश्न 238–भगवान् ऋषभ देव से पहले जैन धर्म था, या नहीं ?

उत्तर—भगवान् ऋषभ देव अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे में पैदा हुए थे। उस से पहले भरतक्षेत्र में युगलिक काल था। उस काल में कोई भी धर्म नहीं था, ऋषभदेव ने तिरासी लाख पूर्व गृहस्थावस्था में विताने के पश्चात् दीक्षा स्वीकार की तथा एक हज़ार वर्ष पश्चात् केवल ज्ञान होने पर उन्होंने धर्म संघ की अर्थात् चतुर्विध संघ की स्थापना की, तब से अवसर्पिणी काल में सर्व प्रथम जैन धर्म का प्रारम्भ हुआ। तत्पश्चात् अन्य धर्म प्रचलित हुए।

प्रश्न 239–भगवान् ऋषभ देव आदि कई महापुरुषों की अवगाहणा (शरीर की ऊंचाई) पांच सौ धनुष कही है। तो शास्त्रों में धनुष का प्रमाण कितना कहा गया है ?

उत्तर—तीर्थंकरादि महापुरुषों के शरीर की अवगाहणा का माप, पांचवें आरे के मध्य के मनुष्यों के धनुष की अपेक्षा से कहा गया है। आजकल भी पांचवां आरा ही व्यतीत हो रहा है। उपर्युक्त माप इस काल के मनुष्य के धनुष प्रमाण (चार हाथ की लम्बाई को

(पृष्ठ ७५ का शेष)

अर्थ—अड़सठ तीर्थों की यात्रा करने का जो फल होता है। उतना फल श्री आदिनाथ भगवान् के स्मरण मात्र से होता है।

ब्रह्माण्ड पुराण :—

नाभिस्तु जनयेत्पुत्रं मरुदेव्यां मनोहरम्
ऋषभं क्षत्रियश्रेष्ठं सर्व क्षत्रस्य पूर्वकम् ॥
ऋषभाद्भारतोजज्ञे वीरपुत्रशताग्रजः।
राज्येऽभिषिच्य भरतं महाप्राव्रज्य माश्रितः ॥

अर्थ—नाभिराजा के यहां मरुदेवी माता से ऋषभ देव उत्पन्न हुए। जिनका बड़ा सुन्दर रूप है, जो क्षत्रियों में श्रेष्ठ हैं और सब क्षत्रियों के आदि हैं। ऋषभ देव से भरत पैदा हुए, जो वीर और अपने सौ (१००) भाईयो में बड़े थे, ऋषभ देव राजा भरत को राज्य देकर महादीक्षा को प्राप्त हुए अर्थात् तपस्वी हो गये।

एक धनुष कहा है) से कुछ न्यून समझना चाहिए, किन्तु तीर्थंकर आदि के स्वयं के धनुष प्रमाण के अनुसार उनकी अवगाहणा समझना नितान्त भ्रम है।

प्रश्न 240—पाँचवें आरे के अन्त में मनुष्यों की अवगाहणा कितनी रह जायेगी ? तथा बचे हुए मनुष्य किस स्थान पर निवास करेंगे ?

उत्तर—पांचवें आरे के अन्त में मनुष्यों की उत्कृष्ट अवगाहणा (शरीर की ऊंचाई) दो हाथ की रह जाएगी। प्रलय होने पर भी मनुष्यादि का सर्वनाश नहीं होगा। बचे हुये कुछ मनुष्यादि विलों में निवास करेंगे। गंगा सिन्धु नदियों के किनारे यह वहत्तर २ विल (गुफाएं) हैं। पांचवां आरा समाप्त होने पर छठा आरा प्रारम्भ होगा। उसमें सभी मनुष्यादि माँसाहारी होंगे, कारण कि अन्न तथा वनस्पति आदि सभी का नाश हो जायेगा। तव धर्म प्रवृत्ति का भी अभाव होगा एवं किसी भी प्रकार का कोई भी धर्म सम्प्रदाय नहीं होगा। वह मनुष्य निर्दयी, कुकर्मी, अल्पायु वाले एवं वेढगी आकृति वाले होंगे।

प्रश्न 241—महाराजा कुमार पाल किस समय में हुए थे ?

उत्तर—महाराजा कुमार पाल का जन्म विक्रम सम्वत् ११४४ में हुआ था तथा वे विक्रम सम्वत् १२३० में काल धर्म को प्राप्त हुये थे।

प्रश्न 242—महाराजा कुमार पाल पर किस जैनाचार्य का प्रभाव था, तथा उन्होंने धर्म प्रभावना किस प्रकार की थी ?

उत्तर—महाराजा कुमार पाल, कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य के परम भक्त थे। वे बारह व्रतधारी श्रावक थे तथा जिनेश्वर भगवान की त्रिकाल पूजा करते थे। वे अष्टमी एवं चतुर्दशी पर्व तिथि को पौषधोपवास करते थे और जो भी श्रावक उनके साथ पौषध करता था, उसे अपने महल में लेजाकर पारणा करवाते थे। वे अर्थहीन साधर्मी भाईयों के लिए प्रतिदिन एक हजार स्वर्ण मोहरें खर्च करते थे। उन्होंने जनता के पुत्ररहित वर्ग को दिया हुआ

७२ लाख रुपये का ऋण भी माफ कर दिया तथा ऋण-पत्र फाड़ दिए। उन्होंने २१ ज्ञान भंडार लिखवाए तथा इस कार्य के लिए ५०० पण्डितों की नियुक्ति की तथा नित्य प्रति पूजन के लिए छियानवें करोड़ रुपये खर्च करके जिन[1] मन्दिर बनवाया था। वे नित्य पक्षपात रहित न्याय करते थे। उन्होंने चौदह सौ चवालीस नये जैन मन्दिर बनवाये थे, सोलह सौ मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया था तथा अठारह देशों में सर्वत्र अमारी घोषणा करवाई थी। वे कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य के चरणों में नित्य द्वादशावर्त्तवन्दन करते थे तथा क्रम से अन्य सभी मुनियों को भी वन्दन करते थे। कुमारपाल सम्राट सात बार तीर्थ यात्रा करने गये थे।

(उपदेश रत्नाकर)

प्रश्न 243—कुमार पाल राजा ने श्रावक के बारह व्रतों की मर्यादा किस प्रकार की थी ?

उत्तर—सम्राट् कुमार पाल ने निम्नोक्त रूप से १२ व्रतों का नियम लिया था—पहले व्रत में निरपराधी को 'मारो' ऐसा शब्द कहा जाये तो एक उपवास करना। दूसरे व्रत में भूल से भी झूठ बोला गया हो तो एक आयंबिल करना। तीसरे व्रत में निःसन्तान मरने वाले का धन ग्रहण नहीं करना चाहिये। चौथे व्रत में जैन धर्म स्वीकार करने के पश्चात अन्य विवाह नहीं करना तथा वर्षा ऋतु में चार महीने तक ब्रह्मचर्य का पालन करना। यदि ब्रह्मचर्य व्रत मन से टूटे तो एक उपवास करना, वचन से टूटे तो आयंविल, करना, काया से टूटे तो एकासना करना। भोपाला देवी आदि आठों रानियों के मरने के बाद भी विवाह नहीं करना। उन्होने इस नियम का जीवन पर्यन्त पालन किया एवं किसी प्रकार का

1. सम्राट ने उस मन्दिर का नाम 'त्रिभुवन विहार' रखा था। मन्दिर में मूलनायक नेमिनाथ प्रभु की १२५ अंगुल ऊंची अरिष्ट रत्न की प्रतिमा विराजमान की, बहत्तर देहरियों में, चौबीस प्रतिमाएं रत्नों की, चौबीस सोने की, तथा चौबीस प्रतिमाएं चांदी की स्थापित की थीं।

(वैराग्य भावना)

दोष नहीं लगाया। पांचवें व्रत में छः करोड़ का सोना, आठ करोड़ की चांदी, एक हजार तोला जवाहरात, मानक, मोती रत्नादि, बत्तीस हज़ार मन घी, बत्तीस हज़ार मन तेल, एक लाख मुंढक (एक प्रकार का माप) धान्य, मूंग, जवार, चना, गेहूं, बाजरा आदि, पांच लाख घोड़े, पांच हज़ार हाथी, पांच सौ ऊंट, पांच सौ घर, पांच सौ हाट, पाँच सौ सभागृह, पांच सौ यानपात्र, पांच सौ गाड़े इत्यादि उपभोग में लेने का नियम तथा चतुरंगिणी सेना में ग्यारह सौ हाथी, पच्चास हज़ार रथ, ग्यारह लाख घोड़े तथा अठारह लाख पैदल सेना रखने का परिमाण। छठे व्रत में वर्षा काल में पाटन की सीमा से बाहर नहीं जाना। सातवें व्रत में चारों महाविगई का सर्वथा त्याग, अभक्ष्य तथा अनन्त काय (कंदमूलादि) का सर्वथा त्याग, श्री जिनेश्वर देव की पूजा में दिये बिना नवीन वस्त्र-फल-आहारादि का ग्रहण नहीं करना। सचित्र वस्तु में मात्र एक जाति का पान खाने का नियम, सर्वदा एकासना करना, वर्षा काल में केवल एक विगई (घी) ही लेना, पर्व के दिन ब्रह्मचर्य पालन करना। आठवें व्रत में सप्त कुव्यसनों का त्याग, उन्होंने अपने राज्य में से व्यसनी मनुष्यों को भी निकाल दिया था। नवमें व्रत में दोनों समय सामायिक करना, प्रतिदिन योग शास्त्र के बारह प्रकाश तथा वीतराग स्तोत्र के वीस प्रकाश का स्वाध्याय करना। दसवें व्रत में शत्रु पर चढ़ाई नहीं करना। ग्यारहवें व्रत में पौषधोपवास में रात्रि को कायोत्सर्ग में रहना। बारहवें व्रत में हेमचन्द्राचार्य जी के उतरने की धर्मशाला में मुखवस्त्रिका प्रतिलेखन करने वाले साधर्मी को सम्राट् ने पांच सौ घोड़े तथा बारह गाँव भेंट में दिये, इत्यादि धर्मकरनी, विवेक शिरोमणि कुमार पाल राजा ने की।

(उपदेश रत्नाकर)

प्रश्न 244—कुमार पाल राजा मर कर किस गति में गये, तथा उनका मोक्ष कब होगा?

उत्तर—कुमार पाल राजा मर कर व्यन्तर देव बने हैं, तथा वे भविष्य

की चौबीसी में, प्रथम तीर्थंकर पद्मनाभ स्वामी के गणधर बनकर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

प्रश्न 245—भगवान महावीर के निर्वाण से कुछ समय पहिले, इन्द्र ने प्रभु से क्या प्रार्थना की थी ?

उत्तर—इन्द्र ने प्रार्थना की थी कि हे प्रभो ! आप क्षण मात्र के लिये अपनी आयुष्य बढ़ा लीजिये, जिस से आपका शासन पीड़ा रहित होकर चल सकेगा। क्योंकि आप के जन्म नक्षत्र पर भस्म राशि-ग्रह आ रहा है। उस पर आपकी दृष्टि पड़ जाने से उसका प्रभाव कम हो जायेगा। प्रभु ने उत्तर में कहा "हे इन्द्र ! भूतकाल में कभी ऐसा नहीं हुआ, वर्तमान में नहीं हो सकता, भविष्यकाल में भी कभी ऐसा नहीं होगा कि आयुष्य बढ़ाई जा सके। भस्मराशि ग्रह का दुष्प्रभाव २००० वर्ष तक रहेगा तथा ५०० वर्ष तक इसकी छाया रहेगी। इस अवधि में जैन शासन में अनेक सम्प्रदाय बन जाएंगे तथा जैन धर्म का प्रभाव भी कम हो जाएगा। यह भवितव्यता है, इसे कोई अन्यथा नहीं कर सकता। २५०० वर्ष पश्चात पुनः जैन शासन का उदय होगा।

प्रश्न 246—अन्य मतावलम्बी कहते हैं कि हमारे सन्यासी गुरु आदि योगाभ्यास द्वारा आयु बढ़ा लेते थे। क्या यह ठीक है ?

उत्तर—उनका यह कहना, केवल अज्ञान दशा का सूचक है। वे अपना महत्त्व बढाने के लिए ऐसा कहते हैं। यदि उस के सन्यासी आदि ऐसी लब्धि वाले थे, तो आज तक जीवित क्यों नहीं रहे ? मर क्यों गये ? अतः अन्यमतियों का कथन निराधार है।

प्रश्न 247—'उत्तराध्ययन सूत्र के छत्तीस अध्ययन दीवाली की रात्रि को भगवान् महावीर ने प्रतिपादित किये हैं, और सैंतीसवें अध्ययन का कथन करते हुए उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया', यह कथन कहाँ तक सत्य है ?

उत्तर—यह कथन सत्य नहीं है—कारण कि उत्तराध्ययन का दूसरा अध्ययन तो कर्म प्रवाद पूर्व से रचा गया है। आठवाँ अध्ययन

कपिल केवली ने रचा है। दसवां अध्ययन चम्पा नगरी में गौतम को (अष्टापद से वापिस आने पर) महावीर ने कहा था। तेइसवाँ अध्ययन गौतम तथा केशी कुमार के संवाद के रूप में है। कई अध्ययन प्रत्येक बुद्ध मुनियों के रचे हुए हैं, तथा अनेक अध्ययन जिन भाषित हैं। इसलिए ऐसा सिद्ध नहीं होता कि समस्त अध्ययन महावीर की अन्तिम वाणी है।

(जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तर)
(लेखक विजया नन्द सूरि जी महाराज)

प्रश्न 248—पुण्य बंध मोक्ष प्राप्ति में सहायक बनता है या नहीं ?

उत्तर—पुण्य वन्ध की इच्छा से तथा भौतिक लालसा से उपार्जित किया हुआ पुण्य मोक्ष मार्ग में सहायक नहीं बन सकता, किन्तु वीतरागता की भावना होते हुए भी जो किंचित् पुण्य बंध (मुक्ति के रागोदय वश) हो जाता है, वह पुण्य मोक्ष मार्ग में सहायक बनता है।

प्रश्न 249—वीतरागता की रुचि होते हुए भी पुण्यबंध कैसे हो सकता है ?

उत्तर—सम्यग् दृष्टि आत्मा नियम से वीतरागता की रुचि वाला ही होता है, किन्तु फिर भी (राग द्वेष के उदय से) वह किंचित पुण्यवन्ध करता ही है, क्योंकि छद्मस्थ अवस्था में राग का उदय निश्चित है। वीतरागता की रुचि से कृत धर्म मुख्यतः निर्जरा एवं संवर का कारण बनता है। निर्जरा तथा संवर मोक्ष प्राप्ति के मुख्य कारण हैं।

प्रश्न 250—वर्तमान काल में क्षायिक सम्यक्त्व न होने का क्या कारण है ?

उत्तर—वर्तमान काल में वज्रऋषभ नाराच संघयन का विच्छेद[1] हो चुका है, वज्रऋषभ नाराच संघयन वाला ही क्षायिक सम्यक्त्व

1. स्थूलभद्र मुनि के काल धर्म (वीर निर्वाण सं० २१७) के पश्चात् वज्रऋषभ नाराच संघयन का विच्छेद हो गया था।

की प्राप्ति कर सकता है, इसी कारण वर्तमान समय में क्षायिक सम्यकत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। (कर्म ग्रंथ, प्रवचन सारोद्धार (कम्मपेढ़ी ग्रंथ टीका)

प्रश्न 251—अभव्य जीव को क्या क्या वस्तुएं प्राप्त नहीं हो सकतीं ?

उत्तर—अभव्यात्मा को निम्न वस्तुएं प्राप्त नहीं हो सकतीं:
१-अनुत्तर वासी देवत्व २-इन्द्रत्व ३-युगलिकपना ४-शासन का अधिष्ठायक देव होना ५-लोकान्तिक देवत्व ६-नारद बनना ७-त्रिषष्टि-शला का पुरुष बनना ८-सुपात्रदान का लाभ ९-तीर्थंकर के हाथ मे दान १०-केवली तथा गणधर से दीक्षा ११-तीर्थंकर प्रभु के साथ माता पिता आदि का सम्बन्ध १२-परमाधार्मिक देव होना १३-विद्याचारण, जंघा चारण लब्धि १४-तीर्थंकर प्रतिमा का पत्थर बनना इत्यादि वस्तुएं अभव्य जीव को प्राप्त नहीं हो सकतीं। (संबोध प्रकरण, हरिभद्र सूरि)

प्रश्न 252—मनुष्य क्षेत्र से बाहर क्या क्या वस्तु नहीं है ?

उत्तर—बादर अग्नि, दिन रात[1], द्रह, नदियां, मेघ गर्जन तथा मनुष्यों का जन्म-मरण इत्यादि वस्तुए मनुष्य क्षेत्र से बाहर नहीं हैं। (क्षेत्र समास प्रकरण, गाथा २५६)

प्रश्न 253—सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय मनुष्य, मिथ्यादृष्टि होता है या सम्यग्दृष्टि होता है ?

उत्तर—सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय मनुष्य मिथ्या दृष्टि तथा अपर्याप्त[2] होता है।

---

1. ढ़ाई द्वीप (मनुष्य क्षेत्र) से बाहर सूर्य चंद्रादि स्थिर होने के कारण वहां भिन्न-क्षेत्रों में जहां सूर्य हैं वहां सदैव दिन ही रहता है, तथा जहां चन्द्र है वहां सदैव रात ही रहती है।
2. पर्याप्तियां ६ हैं—१. आहार पर्याप्ति, २. शरीर पर्याप्ति, ३. इन्द्रिय पर्याप्ति, ४. भाषा पर्याप्ति, ५. श्वोसोच्छवास पर्याप्ति, तथा मन पर्याप्ति।

प्रश्न 254–सूर्य, चन्द्र, धरती से कितने योजन ऊंचे हैं ?

उत्तर—सुमेरु पर्वत के समीप समभूतला नामक पृथ्वी का सपाट स्थान है। समभूतला पृथ्वी से ७९० योजन[1] ऊपर तारों के विमान हैं। उनसे १० योजन ऊपर सूर्य का विमान है। उससे ८० योजन ऊपर चन्द्र का विमान है। उससे चार योजन ऊपर नक्षत्रों के विमान हैं। उससे १६ योजन ऊपर ग्रहों के विमान हैं। समभूतला से नव सौ योजन ऊपर तक ज्योतिष चक्र है।

(ठाणांग ५ उद्देशा १ सूत्र ४०१)

(जीवाभिगम सूत्र प्रति पत्ति ३-सूत्र १२२)

प्रश्न 255–लोकान्तिक देव कहां पर रहते हैं ?

उत्तर—लोकान्तिक देव पांचवें ब्रह्म देव लोक के अन्त में रहते हैं तथा इनकी आयु आठ सागरोपम होती है।

प्रश्न 256–'अजित शान्ति स्तोत्र' के रचयिता कौन थे, तथा वे किस समय हुए ?

भूल का सुधार

प्रश्नोत्तर २५७ :- आचार्य मुनि सुन्दर सूरि जी का जन्म विक्रम सम्वत् १४३६ में हुआ था, तथा कालधर्म विक्रम सम्वत् १५०३ में हुआ।

(अध्यात्म कल्पद्रुम)

... रचना का था, यह आचार्य

1. सामान्यतः ४ कोस (कोस = २ मील) को योजन कहा जाता है लेकिन यहां जम्बूद्वीप आदि शाश्वत पदार्थों की दूरी का माप करते हुए योजन २००० कोस ही माना गया है।

सहस्रावधानी थे। इनका काल धर्म विक्रम सम्वत् १४३६ में हुआ था।

प्रश्न 258–'लघु शान्ति' की रचना किस ने की, तथा किस काल में की थी ?

उत्तर—'लघु शान्ति' के रचयिता आचार्य मानदेव सूरि जी महाराज थे। इन्होंने नाडोल नगर में (राजस्थान में) वीर निर्वाण की सातवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में इस स्तोत्र की रचना की, इन के पट्ट धर शिष्य श्री मानतुंग आचार्य थे, उन्होंने श्री भक्तामर स्तोत्र की रचना की थी।

प्रश्न 259–'सकलार्हत्' की रचना किस ने की थी ?

उत्तर—इस स्तोत्र के रचयिता कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य महाराज हैं। इस स्तोत्र की २ , २९, ३०, ३२, ३३वीं गाथाएं इनकी रची हुई नहीं हैं। ये पांच गाथाएं किसी अन्य आचार्य की हैं।

प्रश्न 260–भरत क्षेत्र की लम्बाई, चौड़ाई का माप कितना है ?

उत्तर—भरत क्षेत्र की पूर्व पश्चिम लम्बाई १४४७१ योजन ५ कला है तथा चौड़ाई (उत्तर से दक्षिण) ५२६ योजन ६ कला है। यह माप प्रमाण अंगुल के योजन से समझना चाहिए। जैन दर्शनानुसार चीन, जापान, जर्मन, रूस, अमेरिका आदि सभी देश भरत क्षेत्र के अंतर्गत हैं।

प्रश्न 261–'इरिया वहियं सूत्र' के उत्कृष्ट भेद कितने हैं ? विस्तार से बताएं ?

उत्तर—'इरिया वहियं सूत्र' के उत्कृष्ट भेद १८२४१२० हैं जो कि निम्न प्रकार से हैं :

जीव के उत्कृष्ट भेद ५६३ हैं। अभिह्या, वत्तिया आदि दस प्रकार से जीवों की विराधना होती है। मन, वचन, काया, इन

1. योजन के उन्नीसवें भाग को कला कहा गया है। प्रमाण अंगुल का योजन दो हज़ार कोश का समझना चाहिए।

तीन योगों द्वारा विराधना होती है। करना, करवाना, अनुमोदना इन तीन करणों द्वारा विराधना होती है। तीन काल से विराधना होती है—भूतकाल, वर्तमानकाल, तथा भविष्यकाल। छः की साक्षी से विराधना होती है—अरिहन्त, सिद्ध, साधु, देव, गुरू तथा आत्मा। दो प्रकार से विराधना होती है—द्रव्य तथा भाव से। सभी को उत्तरोत्तर गुणा करने से गुणनफल १८२४१२० होगा। ५६३ × १० = ५६३० × ३ = १६८९० × ३ = ५०६७० × ३ = १५२०१० × ६ = ९१२०६० × २ = १८२४१२०।

प्रश्न 262–क्या कभी व्यन्तर देवता भुवनपति देवों से अधिक ऋद्धि वाला हो सकता है?

उत्तर—कभी २ कोई व्यन्तर देव भवनपति देव से भी अधिक ऋद्धि वाला होता है। (भगवती सूत्र, शतक १ उद्देशा २)

प्रश्न 263–सिद्ध भगवान् का अनंत चतुष्क कौनसा है?

उत्तर—सिद्ध परमात्मा में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य तथा अनंत सुख (अनन्त चारित्र) यह अनन्त चतुष्क सदैव विद्यमान रहता है।

प्रश्न 264–गौशालक की तेजोलेश्या से भस्म होकर सुनक्षत्र तथा सर्वानुभूति ये दोनों मुनि किस गति में गये हैं?

उत्तर—सुनक्षत्र मुनि आठवें देवलोक में गये हैं तथा सर्वानुभूति मुनि बारहवें देव लोक में गए हैं। (उपदेश माला टीका)

प्रश्न 265–देवताओं को निद्रा का उदय होता है या नहीं?

उत्तर—देवता अपनी शय्या (देवशय्या) में आराम करते हैं, किन्तु वह निद्रा (नींद) नहीं लेते। (रायपसेणी सूत्र की टीका)

प्रश्न 266–क्या भवनपति निकाय में से च्युत होकर भी कोई जीव तीर्थंकर बन सकता है?

उत्तर—ऐरावत क्षेत्र में वर्तमान चौवीसी के अन्तिम तीर्थंकर

भवनपति (नागकुमार) निकाय में से च्युत होकर आये थे। भरत क्षेत्र की भविष्यत् चौवीसी के दूसरे तथा तीसरे तीर्थंकर भी भवनपति या व्यन्तर से आयेंगे। दूसरा तीर्थंकर सुपार्श्व (भगवान महावीर का चाचा) का जीव होगा, तथा तीसरा तीर्थंकर उदायी राजा (सम्राट् कोणिक का पुत्र) का जीव होगा।

(प्रज्ञापनासूत्र पद की वृत्ति २०, सेन प्रश्न उल्लास २)

प्रश्न 267–कोड़कू मूंग सचित है, या अचित है ?

उत्तर—कोड़कू मूंग अचित्त हैं। (ओघनियुक्ति की टीका, श्राद्ध विधि सूत्र)

प्रश्न 268–नारकी जीवों को परमाधार्मिक देव दुःख देते हैं। क्या कभी नारकी जीव भी परमाधार्मिक देवों को दुःख दे सकते हैं ?

उत्तर—कभी कभी अनन्त काल के पश्चात आश्चर्य रूप ऐसी घटना घटित होती है कि नारकी जीव सम्प करके परमाधार्मिक देव को बाँध लेते हैं। (पन्नवणा सूत्र पद २२ टीका)

प्रश्न 269–तिर्यग् जृम्भक देवता (जो तीर्थंकर के घर में धन ला ला कर कोश भरते हैं) किस निकाय के हैं तथा उनकी आयुष्य कितनी होती है ?

उत्तर—तिर्यग् जृम्भक देव व्यन्तर निकाय के हैं, तथा इनका आयुष्य एक पल्योपम का होता है। (भगवती सूत्र शतक १४, उद्देशा आठवां)

प्रश्न 270–सिद्ध परमात्मा के कितने प्राण हैं ?

उत्तर—सिद्ध भगवान् के द्रव्य प्राणों का सर्वथा अभाव है। उनके ज्ञान, दर्शन, वीर्य तथा सुख, यह चार भाव प्राण हैं।

(षड्दर्शन समुच्चय की टीका)

प्रश्न 271–जाति स्मरण ज्ञान वाला स्वयं के पिछले कितने भव देख सकता है ?

उत्तर—जातिस्मरण ज्ञान वाला स्वयं के पिछले नव भवों को जान और देख सकता है। मतांतर से वह संख्यात भव देख सकता है।

(आचारांग १ श्रु. १, अ १ उद्देशा की टीका, रत्नसार ग्रंथ तथा विचार शतक)

प्रश्न 272–शुक्ल पक्षी तथा कृष्ण पक्षी जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो जीव अर्धपुद्गल परावर्तन काल के अन्दर मोक्ष जाने वाला है, वह सम्यग्दृष्टि हो या मिथ्यादृष्टि, वह शुक्लपक्षी के नाम से वर्णित किया जाता है। (स्थानांग सूत्र ठाणा १ टीका दशाश्रुतस्कंध के छठे अध्ययन की टीका)

प्रश्न 273–अवधि ज्ञानी को ही मन:पर्यव ज्ञान होता है या मति, श्रुत ज्ञान वाले को भी मन: पर्यव ज्ञान हो सकता है ?

उत्तर—अवधि ज्ञान सहित तथा अवधि ज्ञान रहित, दोनों को मन: पर्यव ज्ञान हो सकता है। (नन्दी सूत्र की टीका, भगवती सूत्र शतक ८ उद्देशा दूसरा)

प्रश्न 274–परमावधि ज्ञान वाला कितने समय पश्चात् केवल ज्ञान प्राप्त करता है ?

उत्तर—परमावधि ज्ञानी निश्चय ही अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् केवल ज्ञान प्राप्त करता है। (भगवती सूत्र शतक १८ उद्देशा ८वां)

प्रश्न 275–पौषध-एकासना में हरी सब्जी कल्पती है या नहीं ?

उत्तर—पौषध एकासना में हरा साग सब्जी नहीं कल्पता।

(सेन प्रश्नावली)

प्रश्न 276–आचार्य महाराज गौचरी के लिए जा सकते हैं या नहीं ?

उत्तर—आचार्य महाराज गौचरी के लिए नहीं जा सकते। यदि वे गौचरी के लिए जाते हैं, तो उन्हें प्रायश्चित लेने का विधान है।

(व्यवहार भाष्य उद्देशा ६ की टीका)

प्रश्न 277–प्रथम के चार अनुत्तर विमानों में गया हुआ जीव, क्या कभी नरक में जाता है ?

उत्तर—विजय, विजयन्त, जयन्त तथा अपराजित—इन चार विमानों में गया हुआ जीव कभी भी नरक, तिर्यञ्च, भवनपति देवनिकाय ज्योतिष तथा व्यन्तर में नहीं जाता। वह जीव वैमानिक देवगति में या मनुष्य गति में ही जाता है। (पन्नवणा सूत्र, पद १५वां)

प्रश्न 278–कल्प वृक्ष तथा चिन्तामणि रत्न, लोगों को मनोवांछित फल कैसे प्रदान करते हैं ?

उत्तर—कल्प वृक्ष तथा चिन्ता मणि रत्न के अधिष्ठायक देव ही भक्त जनों की इच्छाएं पूर्ण करते हैं। वृक्षों तथा रत्नों में यह शक्ति स्वतः संभाव्य नहीं है। (वीतरागस्तव की टीका)

प्रश्न 279-विजय सेठ एवं विजया सेठानी जैसे ब्रह्मचारी कोई अन्य श्रावक, श्राविका हुए हैं, या नहीं ?

उत्तर—भरूच नगर में रहने वाला श्रावक जिनदास तथा उसकी पत्नी सुहागदेवी, ये आदर्श श्रमणोपासक थे। ये विजय-विजया जैसे ही दृढ़ धर्मी थे। श्री धर्मदास[1] आचार्य ने 'इनको भोजन करवाने से एक लाख साधर्मियों की भक्ति का लाभ है' ऐसा कथन किया था। (उपदेश तरंगिणी ग्रंथ)

प्रश्न 280–आचार्यभद्र बाहु स्वामी ने कल्पसूत्र की रचना की थी। उस से पहिले पर्यूषण पर्व में क्या वांचने की पद्धति थी !

उत्तर—कल्पसूत्र की रचना, नवमें पूर्व में से कुछ अंश उद्धृत करके की

1. एक समय धर्मदास आचार्य वसंतपुर नगर में पधारे। उस नगर में रहने वाला शिवंकर नामक परम जैन उनके वन्दनार्थ आया, और उसने कहा कि गुरुदेव मुझे एक लाख साधर्मियों को भोजन करवाने का मनोरथ उत्पन्न हुआ है, लेकिन इतना समर्थ नहीं हूं, उस समय धर्मदासाचार्य ने ऐसा कहा था।

गई है। इस रचना से पूर्ववर्ती आचार्य नवमें पूर्व में से यह अध्ययन वांचते हों ऐसी सम्भावना है।

(सेन प्रश्नावली, उल्लास २)

प्रश्न 281–श्री गौतम प्रभु को भगवान् महावीर पर अति स्नेह-राग था। क्या पूर्व भव में इनका कुछ परस्पर सम्वन्ध भी था?

उत्तर—जिस समय महावीर का जीव त्रिपृष्ट वासुदेव था, उस समय गौतम प्रभु का जीव उनके रथ का सारथी था। इन दोनों का वस इतना ही सम्वन्ध था। (भवगती सूत्र शतक १४, उद्देशा ७वां)

प्रश्न 282–किस किस गति में से आकर जीव, चक्रवर्ती बन सकता है?

उत्तर—सामान्य नियमानुसार कोई भी जीव देवगति या नरकगति में से आकर ही चक्रवर्ती वनता है। किन्तु कभी कभी आश्चर्य रूप में मनुष्य गति में से आकर भी जीव चक्रवर्ती वन सकता है। जैसे, भगवान महावीर स्वामी का जीव वाईसवें भव में मनुष्य था और तेईसवें भव में प्रियमित्र चक्रवर्ती बना था।

(भगवती सूत्र शतक १२वां उद्देशा नवमां. देवभद्र सूरिकृत महावीर चारित्र)

प्रश्न 283–पोरिसी आदि पच्चक्खाण चउविहार करने में आते हैं। क्या इस में तिविहार का पच्चक्खाण भी हो सकता है?

उत्तर–सामर्थ्य होने पर साधु तथा श्रावक पोरिसी आदि पच्चक्खाण चौविहार ही करे, किन्तु सामर्थ्य के अभाव में साधु तिविहार पोरिसी कर सकता है। श्रावक तो दुविहार पोरिसी भी कर सकता है। परन्तु यह उत्सर्ग मार्ग नहीं, अपवाद मार्ग है।

(श्री वृन्दारुवृत्ति, देवेन्द्रसूरि विरचित)

प्रश्न 284–तीर्थंकर नाम कर्म के वंध में हेतुभूत कौन सा सम्यक्त्व है?

उत्तर—उपशम, क्षयोपशम तथा क्षायिक यह तीनों सम्यक्त्व तीर्थंकर नाम कर्म के बंध में हेतु भूत हैं। (पंचसंग्रह स्वोपज्ञ टीका)

प्रश्न 285—भरत क्षेत्र में अन्तिम युग प्रधान आचार्य कौन होंगे ?

उत्तर—भरत क्षेत्र में अन्तिम युगप्रधान आचार्य दुप्पसह सूरि महाराज होंगे।

प्रश्न 286—इस समय दुप्पसहसूरि आचार्य का जीव किस गति में है ?

उत्तर—इस महान् आत्मा ने पहिले मनुष्य भव में क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया था। वे इस समय दूसरे भव में देव लोक में हैं। उनका तीसरा भव दुप्पसह सूरि के रूप में होगा। वे चौथा भव देवलोक का करेंगे तथा पांचवें भव में मनुष्य बन कर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

प्रश्न 287—कृष्ण[1] वासुदेव भी क्षायिक सम्यक्त्वी थे, वह कितने भव में मोक्ष जायेंगे ?

उत्तर—कृष्ण वासुदेव भी पांच भवों में ही मोक्ष प्राप्त करेंगे। उनका प्रथम भव कृष्ण वासुदेव का (जिसमें क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त किया) था। वे दूसरे भव में (वर्तमान) में तीसरे नरक में हैं। तीसरा भव मनुष्य का लेंगे, चौथे भव में पांचवें देव लोक में जायेंगे और पाँचवें भव में अमम नामक बारहवें तीर्थंकर बनकर मोक्ष प्राप्त करेंगे। (कर्म प्रकृति की टीका; वसुदेवहिण्डी-संघदासगणि विरचित)

प्रश्न 288—भाव तीर्थ किसे कहते हैं ?

उत्तर—चतुर्विध संघ तथा प्रथम गणधर महाराज को भाव तीर्थ कहते हैं। (चैत्य वन्दन भाष्य, भगवती सूत्र शतक २० उद्देश ८)

प्रश्न 289—मिथ्यात्व को भी, किस कारण गुणस्थान कहा गया है—जबकि मिथ्यात्व सर्व पापों का मूल है ?

---

1. जो नेमिनाथ प्रभु के चचेरे भाई थे तथा जिन्हें जैन शास्त्रानुसार लगभग ८६५०० वर्ष हो चुके हैं।

उत्तर—प्रथम गुणस्थान स्थ जीव में जो भद्रकत्वादि गुण हैं—उनकी अपेक्षा से ही मिथ्यात्व को भी गुणस्थान कहा है, यह समस्त गुणस्थानों का प्रारम्भ स्थल भी है तथा मिथ्या दृष्टि जीव भी दृश्यमान पदार्थों के अस्तित्व को स्वीकार करता है—अर्थात् उस में ज्ञान एवं चेतना रूप गुण अवस्थित है—इसी कारण से मिथ्यात्व को भी गुणस्थान कहना अनुचित नहीं। (योगशास्त्र)

प्रश्न 290—चैत्यवन्दन, स्तुति एवं स्तवन में क्या अन्तर है ?

उत्तर—इन तीनों में जिन गुण कीर्त्तन की अपेक्षा से कोई भी अन्तर नहीं है, किन्तु नमुत्थुणं से पूर्व जो श्लोक कहे जाते हैं वह चैत्यवन्दन है नमुत्थुणं के बाद जो चार श्लोकादि कहे जाते हैं वह स्तवन है। तथा कायोत्सर्ग के पश्चात् जो एक श्लोक कहा जाता है उसे स्तुति कहते हैं। इनमें यही मुख्य अन्तर है।

(चैत्यवन्दन भाष्य की अवचूरि)

प्रश्न 291—साधु तथा साध्वी को रात को सोते समय कान में रुई का फोहा रखना चाहिए या नहीं ?

उत्तर—साधु-साध्वी को रात्रि को सोते समय रूई का फोहा कान में अवश्य रखना चाहिए, नहीं रखे तो दड का विधान है।

(महानिशीथ्य सूत्र, अध्ययन ७)

प्रश्न 292—सिद्धशिला से अलोक कितने योजन दूर है ?

उत्तर—सिद्धशिला से अलोक का अन्तर एक योजन का है।

(भगवती सूत्र शतक १४ उद्देशा ८)

प्रश्न 293—शास्त्रों के अनुसार नरक में बादर अग्नि काय का अभाव है, तो नरक में नारकी जीवों का अग्नि आदि से जलना-भुनना कैसे सम्भव है ?

उत्तर—नरक में बादर अग्नि काय का सर्वथा अभाव ही है, किन्तु नरक में कुछ द्रव्य ऐसे हैं, जो अग्नि के सदृश हैं। उनकी अपेक्षा नरक में जलना भुनना प्रतिपादित किया गया है।

(भगवती सूत्र शतक १४ उद्देशा ५ की

प्रश्न 294—जहां जहां पर तीर्थंकर भगवान् विचरते हैं, वहां वहां पर पच्चीस योजन तक कोई उपद्रव दुर्भिक्ष, मरि का रोग, या वैर विरोध आदि हों तो वह सब शान्त हो जाते हैं, किन्तु पुरिमतालपुर नगर में तीर्थंकर महावीर स्वामी की विद्यमानता में महाबल राजा ने अभंग सेन चोर की दुर्दशा कैसे की ? तथा वणिक् ग्राम में मित्र राजा ने उज्झित के नाक, कान का छेदन किस प्रकार किया ?

उत्तर—पच्चीस योजन तक (मतान्तरेण बारह योजन तक) तीर्थंकर देव की विद्यमानता में वैर, विरोध तथा उपद्रव आदि नहीं होते। वहां सोपक्रम (अनिकाचित)[1] कर्म के उदय से होने वाले उपद्रव आदि तो शान्त हो जाते हैं, किन्तु निरुपक्रम (अवश्यमेव भोक्तव्य निकाचित) कर्म के उदय से होने वाली व्याधियां, रोगादि, छेदन भेदनादि अवश्य ही जीव को भोगने पड़ते हैं। जिस प्रकार साध्य रोग औषधि द्वारा नष्ट हो जाता हैं, किन्तु असाध्य रोग पर औषधि काम नहीं करती।

(विपाक सूत्र, अध्ययन ३ टीका अभयसूरि जी)

प्रश्न 295—कच्चे अथवा पके हुए चने की भाजी के साथ कच्चा गोरस मिलने से वह भोज्य पदार्थ अभक्ष्य होता है, या नहीं ?

उत्तर—चने की भाजी, गवार फली, मेथी की भाजी तथा द्विदल[2] के साथ कच्चा गोरस दही तथा लस्सी मिलने से वह भोजन अभक्ष्य हो जाता है। (सेन प्रश्नावली, उल्लास २)

1. जो कर्म तप, स्वाध्याय आदि से छूट सकते हों तथा जिन कर्मों का विपाक होना आवश्यक नहीं होता, उन्हें अनिकाचित कर्म कहते हैं।
2. जो अनाज या सब्जी दो भागों में विभक्त हो जाए तथा उसमें से तेल न निकले उसे द्विदल कहते हैं। जैसे—चना, मूंग आदि। मूंगफली व बादाम आदि द्विदल नहीं गिने जाते।

प्रश्न 296–चक्रवर्ती का जीव पुनः चक्रवर्ती बने तो कितने समय का अन्तर पड़ता है ?

उत्तर—चक्रवर्ती को पुनः चक्रवर्तित्व प्राप्त करने में जघन्य[1] से साधिक एक सागरोपम का अन्तर पड़ता है तथा उत्कृष्ट[2] से अर्धपुद्गल परावर्तन समय का अन्तर पड़ता है।

(भगवती सूत्र शतक १२ उद्देशा ९)

प्रश्न 297–जघन्य से जघन्य कितनी आयुष्य वाला मनुष्य नरक गति में जा सकता है ?

उत्तर—गर्भ में पैदा होने के पश्चात् दो मास से कम आयुष्य वाला मनुष्य नरक में नहीं जा सकता, तथा जीवाभिगम सूत्र के अभिप्राय से अन्तर्मुहूर्त की आयुष्य वाला मनुष्य नरक में जा सकता है। पहला कथन भगवती सूत्र में बहुलता की अपेक्षा से समझना चाहिए।

(भगवती सूत्र शतक २४ उद्देशा १, जीवाभिगम सूत्र टीका)

प्रश्न 298–जिस आसन पर स्त्री बैठी हो, उस आसन पर ब्रह्मचारी पुरुष को कितने समय पश्चात् बैठना शास्त्र-विहित है ?

उत्तर—जिस आसन पर स्त्री बैठी हो, उस आसन पर ब्रह्मचारी पुरुष को दो घड़ी पश्चात् बैठना कल्पता है।

(सम्बोध प्रकरण गाथा ८०)

प्रश्न 299–जिस आसन पर पुरुष बैठा हो, उस आसन पर ब्रह्मचारिणी स्त्री को कितने समय पश्चात् बैठना कल्पता है।

उत्तर—जिस आसन पर पुरुष बैठा हो, उस आसन पर ब्रह्मचारिणी स्त्री को तीन पहर तक बैठना नहीं कल्पता।

(सम्बोध प्रकरण गाथा ८०) (हरिभद्र सूरिकृत)

1. कम से कम। 2. अधिक से अधिक।

प्रश्न 300–नरक में कितने प्रकार की वेदना होती है ?

उत्तर—नरक में मुख्य रूप से तीन प्रकार की वेदना होती है :

१-क्षेत्र कृत २-परस्परकृत ३-परमाधार्मिक कृत।

१. क्षेत्रकृत वेदना—वहां के क्षेत्र के कारण होने वाली वेदनाएं यथा गर्मी, सर्दी, भूख प्यास, गंदगी तथा अन्धेरा आदि।

२. परस्परकृत वेदना—नारकी जीवों को जातिस्मरण ज्ञान होता है। उसके द्वारा वे पूर्व जन्मों के शत्रुओं को नरक में उत्पन्न देखकर लड़ाई मार पिटाई, झगड़ा आदि करते हैं।

३. परमाधार्मिककृत वेदना—नरक में परमाधार्मिक देव होते हैं। वह नारकियों की कदर्थना करते हैं, तथा उन्हें भाले से बींधते हैं, आरी से काटते हैं, भट्ठी में भूनते हैं इत्यादि अनेकविध कष्ट देते हैं।

प्रश्न 301–कौन सी नरक भूमि तक परमाधार्मिक देव होते हैं ?

उत्तर—तीसरी नरक भूमि तक परमाधार्मिक देव हैं, तथा मतांतर से चौथी नरक तक परमाधार्मिक देवों का होना माना गया है।

(त्रिषष्टिशलाका, संग्रहणी सूत्र)

प्रश्न 302–कच्चा आम तथा अन्य कच्चे फल टुकड़े करने पर दो घड़ी के पश्चात् अचित होते हैं या नहीं ?

उत्तर—कच्चा आम तथा चिबड़ा आदि फल बीज गुठली निकाल लेने पर भी दो घड़ी के पश्चात् अचित नहीं होता किन्तु अग्नि संस्कार अथवा प्रबल नमक संस्कार होने से अचित होता है।

(सेनप्रश्नावली उल्लास ४, प्र-७५)

प्रश्न 303–प्रतिमाधारी साधू के लिए नगर तथा ग्राम में ठहरने का कितना कल्प है ?

उत्तर—प्रतिमाधारी मुनि के लिए नगर में पांच रात्रि तथा ग्राम में एक रात्रि ठहरने का नियम है।

(प्रश्नव्याकरण अंग, सूत्र १० की टीका)

प्रश्न 304–तीर्थंकर देव की माता तीर्थंकर देव के जन्म के पश्चात् अन्य पुत्र को जन्म देती है, या नहीं ?

उत्तर—उन्नीसवें तीर्थंकर श्री मल्लिनाथ जी का मल्ल कुमार नामक छोटा भाई था, तथा बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ जी का रथनेमि नामक छोटा भाई था, तो सिद्ध होता है कि तीर्थंकर के जन्म के पश्चात् भी उनकी माता अन्य पुत्र को जन्म दे सकती है। (ज्ञाता धर्मकथांग अध्ययन ८)

प्रश्न 305–महाविदेह क्षेत्र में विचरने वाले २० विहरमान तीर्थंकरों के कौन २ से चिह्न (लांछन) हैं?

उत्तर—२० विहरमानों के लांछन क्रमशः ये हैं :
वृषभ, हस्ती, मृग, बन्दर, सूर्य, चन्द्र, सिंह, हस्ती, चन्द्र, सूर्य, शंख वृषभ, कमल, कमल, चन्द्र, सूर्य, वृषभ, हस्ती, चन्द्र तथा स्वस्तिक। (श्री विहरमान एक विशंति स्थानक ग्रंथ)

प्रश्न 306–शालिभद्र तथा धन्ना जी कौन सी गति में गये हैं?

उत्तर—शालि भद्र जी तथा धन्ना जी (साला और बहनोई) यह दोनों महामुनि सर्वार्थसिद्धि विमान में गए हैं। वे आगामी भव में मोक्ष जायेंगे। (योगशास्त्र)

प्रश्न 307–चारण मुनि रात्रि को गमनागमन कर सकते हैं या नहीं?

उत्तर—चारण मुनि रात्रि को गमनागमन कर सकते हैं। जैसे—पर्वत, वसु तथा नारद। इन तीनों के विषय में, रात्रि को जाते हुए चारण मुनियों ने ही भविष्य वाणी की थी कि दो विद्यार्थी नरक गामी हैं तथा एक विद्यार्थी स्वर्ग में जायेगा। (योगशास्त्र प्रकाश २)

प्रश्न 308–इक्षुरस[1] कितने समय तक कल्पता है?

उत्तर—इक्षुरस दो प्रहर के पश्चात् नहीं कल्पता।
(लघुप्रवचन सारोद्धार ग्रंथ, रचयिता मलधारी चन्द्रसूरि जी)

प्रश्न 309–किस किस तीर्थंकर भगवान् के अंतरे में तीर्थ (शासन) का विच्छेद हुआ था?

1. गन्ने का रस।

उत्तर—नवमें तीर्थंकर सुविधि नाथ से लेकर सोलहवें तीर्थंकर शान्ति नाथ तक,सात अन्तरों में तीर्थ विच्छेद[1] हुआ है। इन सात अंतरों में तीर्थ विच्छेद का कुल समय पौने चार पल्योपम है। मतांतर से ग्यारह पल्योपम समय तक तीर्थ विच्छेद हुआ है।

(सप्तति शतक स्थानक गाथा २१३,
प्रवचन सारोद्धार द्वार ३६वां, गाथा ४३०)

प्रश्न 310–कच्चे पानी में गुड़, खांड तथा शक्करादि डालने के पश्चात वह पानी कितने समय तक प्रासुक रहता है ?

उत्तर—कच्चे पानी में गुड़, खांड या शक्करादि डालने के पश्चात् जब पानी का वर्ण, रस, गंध तथा स्पर्श, परिवर्तित हो जाए तो वह पानी प्रासुक होता है। इस पानी का काल चातुर्मास में तीन प्रहर, गर्मियों में पाँच प्रहर तथा सर्दियों में चार प्रहर होता है। तत्पश्चात् वह पानी सचित हो जाता हैं।

(लघुप्रवचन सारोद्धार, गाथा ८६)

प्रश्न 311–सोलह प्रकार के मुख्य रोग कौन कौन से हैं ?

उत्तर—श्वास, खांसी, ज्वर, दाह, कुक्षिशूल, भगंदर, अलस, अजीर्ण, दृष्टिशूल, मस्तक शूल अरुचि, अक्षिवेदना खाज (खुजली), कान की वेदना, जलोदर, कोढ़ ये मुख्य १६ रोग हैं।

प्रश्न 312–जम्बूद्वीप की परिधि (घेरा) कितनी है ?

उत्तर—जम्बूद्वीप की परिधि ३ लाख १६ हज़ार योजन, तीन कोस एक सौ अठाईस धनुष, साढ़े तेरह अंगुल पांच यव तथा एक जूं परमार्थी है। (लोक प्रकाश सर्ग १५)

प्रश्न 313–भगवान् आदिनाथ की पुत्रियां ब्राह्मी तथा सुन्दरी विवाहित थीं या अविवाहित थीं ?

उत्तर—ब्राह्मी का विवाह बाहुबली के साथ तथा सुन्दरी का विवाह भरत के साथ हुआ था।

(आचार्यमलयगिरि की आवश्यकसूत्र टीका)

---

१. साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका इसे तीर्थ कहते हैं अथवा जिन शासन भी कहते हैं।

प्रश्न 314–देवता अवधि ज्ञान द्वारा कार्मण पुद्गलों को जानते तथा देखते हैं, या नहीं ?

उत्तर—अनुत्तर विमान वासी देव कार्मण वर्गणाओं को जानते भी हैं, तथा देखते भी हैं। बाकी नवग्रैवेयक आदि विमानों के देव आहारक पुद्गलों को भी न जानते हैं, न देख सकते हैं। कार्मण पुद्गल, आहारक पुद्गलों से अति सूक्ष्म हैं। नवग्रैवेयक तक के देवों में जो सम्यग्दृष्टि देव हैं, वह मात्र आहारक पुद्गलों को ही जानते तथा देखते हैं। बाकी भवनपति, व्यन्तर तथा ज्योतिष देव न उन्हें जानते हैं, न देखते हैं।

(मलधारी चन्द्र सूरि कृत संग्रहणी सूत्र की टीका, समवायांग सूत्र टीका)

प्रश्न 315–केशलुञ्चन (लोच) किन२ नक्षत्रों में करनी चाहिए?

उत्तर –पुनर्वसु, पुष्य, श्रवण तथा धनिष्टा—यह चार नक्षत्र लोच के योग्य हैं। (गणि विज्झापयन्ना गाथा २४-२५)

प्रश्न 316–लोच के लिए कौन २ से नक्षत्र अयोग्य हैं ?

उत्तर—भरणी, कृत्तिका, विशाखा तथा मघा, यह चार नक्षत्र लोच के अयोग्य हैं। (गणि विज्झापयन्ना गाथा २४-२५)

प्रश्न 317–देवी देवता मानव की तरह कवलाहार करते हैं या नहीं ?

उत्तर—देवी देवता कवलाहार[1] नहीं करते, किन्तु रोमाहार ही करते हैं। संकल्प करने मात्र से ही आहार के पुद्गल उनके शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं। (लोक प्रकाश सर्ग १२, गाथा ६५-६६-६७)

प्रश्न 318–कतिपय देवी देवता मांसाहार की बलि लेते हैं, इसका क्या कारण है ?

उत्तर—मिथ्यादृष्टि देवता ही मांसाहार की बलि लेते हैं। वह पूर्व

1. मुंह द्वारा किया जाने वाला आहार कवलाहार कहलाता है।

जन्म के अभ्यास से ही मद्य मांसादि देख कर संतुष्ट होते हैं किन्तु मांसाहार करते नहीं हैं।

(लोक प्रकाश सर्ग १२, गाथा ६५-६६-६७)

प्रश्न 319–गृहस्थ के घर पर यदि जिन मन्दिर की ध्वजा की छाया पड़ती हो तो वह शुभ है या अशुभ है ?

उत्तर– यदि प्रथम प्रहर तथा अन्तिम प्रहर में ध्वजा की छाया[1] घर पर पड़ती हो तो हानिकारक नहीं है किन्तु दूसरे प्रहर तथा तीसरे प्रहर में घर पर पड़ने वाली ध्वजा की छाया अशुभ है।

(विवेक विलास उल्लास ८, गाथा ७१, वास्तुसार ग्रंथ, गाथा १)

प्रश्न 320–अक्षर का अनंतवां भाग समस्त जीवों का उघाड़ा रहता है, इसका क्या अर्थ है ?

उत्तर—उघाड़ा अर्थात् उद्घाटित-अनावृत या प्रकाशित निगोद के जीवों का भी अक्षर का अनंतवां भाग अर्थात् श्रुतज्ञान का अनंतवां भाग रहता है। चेतन आत्मा में ज्ञान शक्ति का सर्वथा अभाव कभी भी नहीं होता। यही जीव की विशेषता है।

(बृहत्कल्पभाष्य की पीठिका, गाथा ७१-७२)

प्रश्न 321–नरक में किन २ कारणों से नारकी जीव साता वेदनीय का अनुभव करता है ?

उत्तर—उत्पत्ति काल, पूर्व जन्म के स्नेही देवता का निमित्त, सम्यक्त्व का उत्पत्ति काल तथा तीर्थंकरों के कल्याणकों के समय इन चार कारणों से नारकी जीव सात। वेदनीय का अनुभव करते हैं।

(जीवाभिगम सूत्र तृतीया प्रतिपत्ति, उद्देशा ३ नरकाधिकार)

प्रश्न 322–अलोक में कौन २ से पदार्थ हैं ?

उत्तर—अलोक में धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय तथा काल। इन पांचों द्रव्यों का सर्वथा अभाव है। वहां केवल आकाश द्रव्य ही है। (भगवती शतक २ उद्देशा १०)

---

1. वृक्ष की छाया के विषय में भी यही नियम समझना चाहिए।

प्रश्न 323–लोकान्तिक देव कितने भवों के अन्दर मोक्ष प्राप्त करते हैं ?

उत्तर—लोकान्तिक देव एक भवावतारी हैं। मतांतर से वे सात आठ भवावतारी हैं। (स्थानांग सूत्र, स्था ३-उद्देशा १ की टीका तथा प्रवचनसारोद्धार-द्वार २६७)

प्रश्न 324–परमाणु पुद्‌गलों के वर्ण, रस, गंध तथा स्पर्श का परिवर्तन होता है या नहीं ?

उत्तर—पुद्‌गल परमाणुओं का वर्ण, रस, गंध तथा स्पर्श, परिवर्तन होता रहता है। (हीर प्रश्न-प्रकाश ३)

प्रश्न 325–जब भगवान् महावीर प्रभु का निर्वाण हुआ, उस समय कितनी रात्रि शेष थी ?

उत्तर—भगवान महावीर के निर्वाण के समय लगभग चार घड़ी (२ मुहूर्त्त) रात्रि शेष थी। तीस मुहूर्त्त का अहोरात्र (रात दिन) होता है। सर्वार्थ सिद्धि नामक २९वें मुहूर्त्त में भगवान् का निर्वाण हुआ था।

प्रश्न 326–श्री स्थापनाचार्य जी मस्तक से कितनी ऊंची तथा नीची होनी चाहिए, जिससे क्रिया शुद्ध मानी जाये ?

उत्तर—श्री स्थापनाचार्य जी मस्तक से ऊंची तथा पांव से नीची हो, तो धर्म क्रिया की शुद्धि नहीं होती। (हीर प्रश्न प्रकाश २)

प्रश्न 327–पाक्षिक प्रतिक्रमण में छींक आ जावे तो क्या करना चाहिए ?

उत्तर—पाक्षिक प्रतिक्रमण में पाक्षिक अतिचार से पहिले यदि छींक आ जाये, तो पुनः प्रारम्भ से (चैत्यवन्दन से) प्रतिक्रमण करना चाहिए किन्तु यदि समय की अनुकूलता न हो तो सज्भाय करने के पश्चात् खमासमणा देकर 'क्षुद्रोपद्रव उड़ावत्थं' चार लोगस्स का कायोत्सर्ग ('सागरवर गंभीरा' तक) करें। कायोत्सर्ग पारने के पश्चात् 'नमोऽर्हत्' कह कर 'सर्वेयक्षांबिकाद्या स्तुति कहनी चाहिए। (प्रश्नोत्तर चिन्तामणि तथा हीर प्रश्न : प्रकाश २)

प्रश्न 328–देव तथा देवियां पृथ्वी पर भवधारणीय शरीर से आते हैं, या उत्तर वैक्रिय शरीर से ?

उत्तर—शाश्वत पर्वतों पर व्यन्तर देव देवियां मूल शरीर से तथा उत्तरवैक्रिय शरीर से नित्य क्रीड़ा करते हैं, तथा मेरु पर्वत पर संगम देव हजारों वर्षों से मूल शरीर मे ही निवास करता है क्योंकि उत्तर वैक्रिय शरीर की स्थिति केवल पन्द्रह दिन ही होती है। अतः उनका मूल शरीर से पृथ्वी पर आना भी संभव है। मतांतर से मूल शरीर प्रायः विमान से बाहर नहीं जाता।

(जीवाभिगम सूत्र ३ प्रतिपत्ति, मनुष्य अधिकार)
(रायपसेणी सूत्र की वृत्ति-सूर्याभ विमान वर्णन अधिकार)
(हीर प्रश्नावली प्रकाश ३, सेन प्रश्नावली उल्लास ३-३५२)

प्रश्न 329–प्रथम आठ तीर्थंकरों के पिता यहां से मर कर कहां गये हैं ?

उत्तर—भगवान आदिनाथ के पिता मर के भवनपति निकाय में गए हैं। अजित नाथ से चन्द्र प्रभु तक ७ तीर्थंकरों के पिता मर के दूसरे देवलोक में गए हैं। मतांतर से भगवान् अजितनाथ के पिता जित शत्रु राजा मर के मोक्ष में गए हैं।

प्रश्न 330–'नवकारमन्त्र चौदह पूर्व का सार है'–यह किस ग्रंथ में लिखा है ?

उत्तर—चौदह पूर्व ज्ञानी भी अन्त समय में द्वादशांगी को छोड़कर नमस्कार मन्त्र का स्मरण करते हैं, इसी कारण नमस्कार मंत्र को चौदह पूर्व का सार कहा है।

(श्राद्धदिन कृत्य, देवेन्द्र सूरि विरचित)

प्रश्न 331–भारंड पक्षी कैसा होता है ?

उत्तर—भारंड पक्षी का शरीर एक होते हुए भी मुंह दो, पेट एक तथा तीन टांगें होती हैं। वह मनुष्य की भाषा बोलता है। उसके शरीर में आत्माएं दो होती हैं, लेकिन वह सर्वदा अप्रमत्त रहता है। जब उसके शरीर में विद्यमान दोनों जीवों को भिन्न २ फल खाने की

इच्छा होती है तब उसकी मृत्यु हो जाती है।

(कल्पसूत्र की किरणावली नामक वृत्ति तथा औपपातिक सूत्र की टीका, ज्ञातासूत्र अ. ५वें की टीका)

प्रश्न 332–नारकी जीव अपने पूर्व जन्म को अवधि ज्ञान द्वारा देखते हैं या अन्य किसी ज्ञान द्वारा जानते हैं ?

उत्तर—नारकी जीव जातिस्मरण ज्ञान द्वारा अपने पूर्व जन्म के दुष्कृत्यों को जानते हैं। अवधि ज्ञान द्वारा नहीं जानते, कारण कि नारकियों का अवधि ज्ञान एक योजन प्रमाण ही होता है।

(सेन प्रश्न उल्लास ३)

प्रश्न 333–'पर्यू षणपर्व' के अतिरिक्त दिनों में श्रावक को कल्प सूत्र सुनने की आज्ञा है, या नहीं ?

उत्तर—पर्यू षणपर्व के विना श्रावक श्राविकी को कल्प सूत्र सुनने की आज्ञा नहीं है। यदि साधु मुनिराज वांचते हों और श्रावक वन्दनार्थ आया हो तो बैठ कर सुन सकता है। किन्तु श्रावक को उद्देश्य कर के पर्यू षणपूर्व के अतिरिक्त कल्पसूत्र सुनाया नहीं जा सकता। (सेन प्रश्न, उल्लास ४)

प्रश्न 334–महावीर प्रभु के तीर्थ में किस किस जीव ने तीर्थंकर नाम कर्म का बंध किया ?

उत्तर—भगवान् महावीर के तीर्थ में राजा श्रेणिक, उदायी राजा (कौणिक राजा का पुत्र) शंख श्रावक, शतक श्रावक, दृढ़ायु, पोटिल अणगार, सुलसा श्राविका, रेवती श्राविका तथा सुपार्श्व (महावीर स्वामी का चाचा) इन नव-आत्माओं ने तीर्थंकर नाम कर्म का बंध किया है। (स्थानांग सूत्र, स्थान ९वाँ)

प्रश्न 335–जगत में किन किन कारणों से अन्धकार होता है ?

उत्तर—तीर्थंकर देव के निर्वाण के पश्चात्, तीर्थ का विच्छेद होने पर, पूर्व ज्ञान का विच्छेद होने पर तथा वादर अग्नि का विच्छेद होने पर (इन चार कारणों से) संसार में अंधकार होता है।

(स्थानांग सूत्र का स्थान ४ उद्देशा ३)

प्रश्न 336–भगवान् ऋषभ देव की आयुष्य ८४ लाख पूर्व कही गई है, तो एक पूर्व कितने वर्षों का समझें?

उत्तर—एक पूर्व में सात नील पांच खरव तथा साठ अरब वर्ष होते हैं। जैसे ८४ लाख वर्षों का एक पूर्वांग होता है और ८४ लाख पूर्वांग का एक पूर्व होता है, अर्थात् ८४ लाख की संख्या को ८४ लाख पर गुणा करने से एक पूर्व वर्षों की संख्या निकलती है।

प्रश्न 337–पूर्ण तापस तथा कार्तिक मुनि यह दोनों मर कर किस किस गति में गये हैं?

उत्तर—पूर्ण तापस मर कर चमरेन्द्र देव बना तथा कार्तिक[1] मुनि मर कर सौधर्मइन्द्र बना है।

(भगवती सूत्र, सातवां शतक, नवमां उद्देशा)

प्रश्न 338–तामलि[2] तापस मरकर किस गति में गया है?

उत्तर—तामली तापस मर कर ईशानेन्द्र[3] हुआ है, इसने तापस के भव में ही सम्यक्त्व उपार्जन किया था।

(जिनेश्वर सूरि कृत कथाकोष)

---

1. एक मिथ्यादृष्टि तापस अपना सम्मान न करने से कार्तिक सेठ पर नाराज हो गया। पौषधस्थ कार्तिक सेठ को राजाज्ञा से अपनी पीठ पर थाली रखवा कर उस तापस को भोजन कराना पड़ा। फलतः सेठ की पीठ जल गई। कार्तिक सेठ समभाव पूर्वक ध्यानस्थ खड़े हो गए, कौओं आदि ने उसकी पीठ के मांस को नोच डाला। इसी अवस्था में मर कर कार्तिक सेठ सौधर्मेंद्र बना। जबकि वह मिथ्यादृष्टि तापस इसी सौधर्मेंद्र का ऐरावण हाथी बना।
2. तामलि तापस मिथ्या दृष्टि था। उसने ६०००० वर्ष तक अज्ञान तप किया। अंत समय में अनशन धारण करने के पश्चात् उसने श्वेतांबर जैन साधुओं को ईर्यासमिति की पालना कदम कदम पर करते हुए देखकर विचार किया कि 'इन साधुओं का धर्म श्रेष्ठ है जिसमें गमनागमन में भी इस प्रकार जीव रक्षा की जाती है।' फलतः उसने सम्यक्त्व प्राप्त किया तथा मरकर ईशानेंद्र बना।
3. सम्यग्दृष्टि जीव ही इन्द्र बन सकता है।

प्रश्न 339–महाराजा चेटक तथा कोणिक[1] के संग्राम में कितने जीवों का संहार हुआ ?

उत्तर—इस युद्ध में एक करोड़ अस्सी लाख मनुष्यों का संहार हुआ था। यह अवसर्पिणी काल का सब से बड़ा युद्ध था। इसके महाशिला कंटक संग्राम में चौरासी लाख मनुष्यों का तथा रथमूशल संग्राम में ९६ लाख मनुष्यों का क्षय हुआ था। इस युद्ध में कोणिक सम्राट् के अट्ठम तप के प्रभाव से सौधर्मेंद्र तथा चमरेन्द्र (जोकि कोणिक के पूर्व भवीय मित्र थे कोणिक के सहायतार्थ आए थे। (भगवती सूत्र शतक ७वां उद्देशा नवमां)

प्रश्न 340–तंदुलियामत्स्य (मच्छ) किस गति में से आता है तथा पुनः मर कर किस गति में जाता है ?

उत्तर—तंदुलिया मत्स्य नरक गति में से आता है तथा अति रौद्र परिणामों में पुनः मर कर सातवीं नरक में तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला नारकी वनता है।

(जीवाभिगम सूत्र वृत्ति तथा धर्मविन्दु टीका मुनिचन्द्र सूरि विरचित)

प्रश्न 341–कोणिक राजा मरकर किस गति में गया है ?

उत्तर—कोणिक राजा स्वयं को चक्रवर्ती मानकर तिमिस्त्रा गुफा को खोलने गया था, (वास्तव में वह चक्रवर्ती नहीं था) किन्तु वह गुफा के अधिष्ठायक देव के प्रहार से मर कर छठी नरक में गया है।

प्रश्न 342–सातवीं नरक में कुल कितने रोग होते हैं ?

उत्तर—पांच करोड़, अड़सठ लाख, निन्यानवें हज़ार, पांच सौ, चौरासी (५६८९९५८४) रोग सातवीं नरक में हैं।

(श्री उपदेशरत्नाकर गाथा १)

प्रश्न 343–ऊंटनी का दूध भक्ष्य है या अभक्ष्य ?

१. सम्राट कोणिक (अपर नाम-अजात शत्रु) सम्राट् श्रेणिक तथा चेलना रानी का पुत्र था तथा चेटक महाराजा का दौहित्र (पुत्री का पुत्र) लगता था।

उत्तर—ऊंटनी का दूध अभक्ष्य है।

(पिंडनिर्युक्ति ११२७, वीराचार्यकृत)

प्रश्न 344—तीर्थंकर भगवन्तों की देशना का समय कौन सा है ?

उत्तर—तीर्थंकर सूर्य उदय से लेकर एक प्रहर तक देशना[1] देते हैं। तत्पश्चात् दूसरी पोरिसि तक प्रथम गणधर देशना देते हैं। तीसरी पोरिसी में देशना नहीं होती तथा चौथे पहर में पुनः तीर्थंकर देव देशना देते हैं। (बृहत्कल्पभाष्य वृत्ति प्रथम खण्ड)

प्रश्न 345—नरक में नारकी अशुभ वर्ण, गंध, रस तथा स्पर्श वाले पुद्गलों का आहार करते हैं। तो क्या भावी तीर्थंकर का जीव भी वैसा ही आहार करता है ?

उत्तर—यद्यपि भावी तीर्थंकर का जीव नरक में है, तथापि वह अशुभ पुद्गलों का आहार नहीं करते, वह तो शुभ पुद्गलों का ही आहार करते हैं। यह उनकी विशेषता है।

(भगवती सूत्र प्रथम वृत्ति प्रथम उद्देशा)

प्रश्न 346—मन्दिर जी में आचार्य महाराज पधारे तो क्या उन्हें देखकर श्रावकों का खड़ा होना योग्य है ?

उत्तर—आचार्य महाराज मन्दिर जी में पधारें तो श्राविकाओं को खड़े होना आवश्यक है। (श्राद्धविधि ग्रंथ रत्नशेखर सूरि)

प्रश्न 347—साध्वी जी महाराज को कितनी लब्धियां प्राप्त हो सकती हैं ?

उत्तर—अट्ठाईस[2] लब्धियों में से अठारह लब्धियां साध्वी जी को प्राप्त

1. तीर्थंकर सवमवसरण में विराजमान होने से पूर्व, 'नमोतित्थस्स' शब्द का उच्चारण करते हैं।

2. आमर्षौषधि, विप्रुडौषधि, खेलौषधि, जलौषधि, सर्वौषधि, संभिन्नश्रोतः, अवधिज्ञान, ऋजुमति, विपुलमति, चारण, आशीविष, केवल, गणधर, पूर्वधर, अरिहन्त, चक्रवर्ती, वलदेव, वासुदेव, क्षीरमधु सर्पिआश्रव, कोष्टकबुद्धि, पदानुसारिणी, बीजबुद्धि, तेजोलेश्या, शीतलेश्या, आहारक, वैक्रिय शरीर, अक्षीणमहानसी तथा पुलाक। यह अट्ठाईस लब्धियां हैं।

हो सकती हैं, किन्तु निम्न दस लब्धियों की प्राप्ति नहीं हो सकती:
१-अरिहन्त लब्धि[1] २-गणधर लब्धि ३-पूर्व लब्धि ४-आहारक लब्धि ५-पुलाक लब्धि ६-विद्याचारण, जंघाचारण लब्धि ७-चक्रवर्ती लब्धि ८-वासुदेव लब्धि ९-बलदेव लब्धि १०-संभिन्न श्रोतः लब्धि। (प्रवचनसारोद्धार द्वार २७०)

प्रश्न 348–देवताओं के एक नाटक में कितना समय व्यतीत होता है ?

उत्तर—देवताओं के एक नाटक में चार हजार वर्ष जितना समय व्यतीत होता हैं। (विशेषावश्यक ग्रंथ समयसुन्दर सूरि कृत)

प्रश्न 349–महाराजा चेटक की कितनी पुत्रियां थी ?

उत्तर—चेटक राजा की निम्न सात पुत्रियां[1] थीं :
प्रभावती, पद्मावती, मृगावती, शिवादेवी, ज्येष्ठा, सुज्येष्ठा तथा चेलना।

प्रश्न 350–केवल ज्ञानी महात्माओं को ध्यान तथा आवश्यक आदि क्रिया करनी पड़ती है, या नहीं ?

उत्तर—केवल ज्ञानी महात्मा चिन्तन रूप ध्यान नहीं करते तथा न ही आवश्यक क्रिया करते हैं, क्योंकि समस्त क्रियाएं तथा ध्यानादि करने का लक्ष्य तो आत्म स्वरूप प्रकट करना ही होता है। केवलियों का आत्म स्वरूप प्रकट हो चुका होता है। इसी कारण से उन्हें आवश्यकादि क्रिया करने का प्रयोजन नहीं रहता।
(भगवती सूत्र शतक १८ उ. १०)

---

1. चेटक की छः पुत्रियां विवाहित थीं, जिनमें से प्रभावती वीतभयपत्तन के राजा उदायन की पत्नी थी, पद्मावती चम्पा नगरी के राजा दधिवाहन की पत्नी थी, मृगावती, कौशाम्बी के राजा शतानिक की पत्नी थी, शिवादेवी, अवन्तिपति राजा चण्डप्रद्योत की पत्नी थी, ज्येष्ठा क्षत्रिय कुण्ड ग्राम के राजा नन्दिवर्धन की पत्नी थी तथा चेलना राजगृही के राजा श्रेणिक (श्रेणिक ने गांधर्व विवाह किया था) की पत्नी थी। जबकि सुज्येष्ठा ने चारित्र ग्रहण किया था।

(त्रिषष्ठि शलाका पर्व १० सर्ग ६)
(गाथा-१८६ से १९२

प्रश्न 351–पांचवें आरे के अन्त तक कौन कौन से आगम (जैन शास्त्र) विद्यमान रहेंगे ?

उत्तर—आवश्यक सूत्र, दशवैकालिक, नन्दीसूत्र तथा अनुयोगद्वार सूत्र यह चार आगम पांचवें आरे के अन्त तक विद्यमान रहेंगे। शेष सभी आगमों का विच्छेद हो जायेगा।

(तीर्थोद्‌गालि पयन्ना गा. ५० से ५३)

प्रश्न 352–शाश्वत जिन प्रतिमाओं की ऊंचाई कितनी होती है ?

उत्तर—ऊर्ध्वलोक तथा अधोलोक में शाश्वत प्रतिमाओं की ऊंचाई सात हाथ की है तथा तिर्यक् लोक में (नन्दीश्वरद्वीप तथा वैताढ्य आदि पर्वतों पर) शाश्वत प्रतिमाओं की ऊंचाई ५०० धनुष की है। (संघाचार भाष्यवृत्ति, गाथा २६ आचार्य धर्मघोष सूरि कृत)

प्रश्न 353–कोटिशिला किसे कहते हैं, तथा यह कहां पर विद्यमान है ?

उत्तर—यह शिला[1] मगध देश में दशार्ण पर्वत के समीप है। इस शिला पर अनेक कोटि मुनि सिद्धि पद को प्राप्त हुए हैं। इसी कारण इसका नाम कोटिशिला पड़ा है अथवा इस शिला को एक करोड़ व्यक्ति मिलकर उठा सकते हैं अतः इसका कोटिशिला नाम सार्थक ही है। यह शिला एक योजन लम्बी एक योजन चौड़ी

1. भरत क्षेत्र के मध्य खण्ड में देवताओं से पूजित पृथ्वीपर प्रसिद्ध कोटि शिला नामक कोटि शिला तीर्थ है। इस शिला पर शान्ति नाथ प्रभु का प्रथम गणधर चक्रायुद्ध अनेक कोटि मुनियों सहित मोक्ष गये हैं, उनके बत्तीस पाट तक संख्यात करोड़ मुनि मोक्ष गये हैं। कुन्थु नाथ प्रभु के शासन में अठाईस पाट तक संख्यात करोड़ मुनि मोक्ष में गये हैं, अरनाथ प्रभु के चौबीस पाट तक बारह करोड़ मुनि मोक्ष गये हैं, मल्लिनाथ प्रभु के बीसवें पाट तक छः करोड़ मुनि मोक्ष गये हैं, मुनि सुव्रतस्वामी के तीन करोड़ मुनि, तथा नमिनाथ प्रभु के एक करोड़ मुनि मोक्ष गये हैं। इस प्रकार इस शिलापर अनेक कोटि मुनि मोक्ष पधारे हैं।

(अजित प्रभ सूरि कृत शान्तिनाथ चारित्र)

तथा एक योजन ऊँची गोलाकार है। यह शिला तीर्थ रूप में पूजी जाती है। इस शिला को वासुदेव ही उठाता है। प्रथम वासुदेव इसे मस्तक तक उठा लेता है जबकि अन्तिम वासुदेव इसे जानुपर्यंत उठाता है। (विशेषशतक. उपाध्याय समयसुन्दर कृत सेन प्रश्न)

प्रश्न 354–भवन पति देवताओं का स्थान कहां पर है ?

उत्तर—रत्नप्रभा पृथ्वी का पिंड एक लाख अस्सी हज़ार (१८००००) योजन का है, इसके नीचे तथा ऊपर का एक एक हज़ार योजन छोड़कर वाकी के एक लाख अठत्तर हजार योजन में प्रथम नरक के तीस लाख नरकावास हैं, इन नरकावासों के चारों ओर भवन-पति देवताओं के आवास (स्थान) हैं।

(भगवती सूत्र शतक १३, उद्देशा ६)

प्रश्न 355–जिस प्रकार तीर्थंकर देव के शरीर की अस्थियां (हड्डियां) देवलोक में पूजी जाती हैं, तो क्या, किसी दूसरे मनुष्य की अस्थियां भी देव लोक में पूजी जाती हैं ?

उत्तर—जो जो चक्रवर्ती तथा वलदेव, दीक्षा स्वीकार करते हैं, उनकी अस्थियां भी (मृत्यु के पश्चात) देवलोक में पूजी जाती हैं।

(योगशास्त्र की टीका)

प्रश्न 356–छद्मस्थ मनुष्य पुद्गल परमाणुओं को जानता तथा देखता है, या नहीं ?

उत्तर—कतिपय अवधि ज्ञानी महात्मा पुद्गल परमाणुओं को श्रुत ज्ञान द्वारा जानते हैं, किन्तु देखते नहीं जवकि परमावधि ज्ञानी महात्मा पुद्गल परमाणुओं को जानते तथा देखते हैं।

(भगवती सूत्र शतक १८, उद्देशा ८)

प्रश्न 357–माला के मनके १०८ ही क्यों हैं, कम या अधिक क्यों नहीं हैं ?

उत्तर—अरिहन्त के वारह गुण, सिद्ध के आठ गुण, आचार्य के छत्तीस गुण, उपाध्याय के पच्चीस गुण तथा साधु के सत्ताईस गुण हैं।

इन सबको मिलाने से १०८ गुण हुए, इसी कारण इन गुणों के प्रतीक के रूप में माला के एक सौ आठ मनके रखे गए हैं।

प्रश्न 358–कुत्रिकापण, महावीर स्वामी के समय में किस किस नगर में थी ?

उत्तर—कुत्रिकापण का अर्थ है कु अर्थात् पृथ्वी, त्रिक अर्थात् तीनों लोक, आपण अर्थात् दुकान। तीनों लोक में विद्यमान प्रत्येक पदार्थ इन देवाधिष्ठित दुकानों, से उपलब्ध होते हैं। यह दुकानें महावीर स्वामी के समय में, उज्जयिनी में, राजगृही में, वीतभय पत्तन में क्षत्रिय कुण्ड ग्राम में, हस्तिशीर्षकादि नगरों में विद्यमान थीं।

(भगवती सूत्र शतक ९, उद्देशा ३३वां, वृहत्कल्प भाष्य)

प्रश्न 359–कुत्रिकापण पांचवें आरे में किस समय तक विद्यमान थी ?

उत्तर—महावीर निर्वाण के ५४४ वर्ष वाद अंतरंजिका नामक नगरी में गुप्त नामक आचार्य के रोहगुप्त नामक शिष्य का वल नामक राजा की सभा में पोट्टशाल नामक परिव्राजक के साथ विवाद हुआ, जिस में रोह गुप्त ने आगम विरुद्ध त्रिराशिकमत[1] की स्थापना की। वह पोट्टशाल परिव्राजक को पराजित कर गुरु महाराज के पास आया तथा उनको सभी बात सुनाई। आचार्य गुप्त सूरि महाराज ने कहा कि 'तुमने वादी को पराजित किया है, यह तो अच्छा किया, किन्तु तुम ने उत्सूत्र प्ररूपणा की है, उसकी तुम्हें मिच्छामि दुक्कड़ं देनी चाहिए।' किन्तु रोहगुप्त मुनि ने स्वीकार नहीं किया, प्रत्युत वह विवाद करने लगा। पश्चात वलराजा की सभा में छः माह तक गुरू शिष्य का विवाद होता रहा। राजा ने विवाद वन्द करने को कहा अतः विवाद

1. रोहगुप्त छठा निह्नव हुआ है। रोहगुप्त ने 'त्रिराशि' की प्ररूपणा की थी अर्थात् जगत में तीन द्रव्य हैं, जीव, अजीव तथा नोजीव। रोहगुप्त को तीर्थंकर प्रभु के वचन के विरुद्ध प्ररूपणा करने से निह्नव कहा गया है।

वन्द कर दिया गया। आचार्य महाराज ने राजा से कहा कि कुत्रिकापण से 'नोजीव' पदार्थ मंगवाओ, लेकिन नोजीव के वहाँ पर नहीं मिलने पर भी गुप्त मुनि ने अपने कदाग्रह को नहीं छोड़ा अन्त में गुरु ने उसे संघ से (जैन संघ से) वाहर कर दिया। रोहगुप्त ने द्रव्य-गुण कर्म सामान्य विशेष तथा समवाय की प्ररूपण की, वहां से वैशेषिक मत की उत्पत्ति हुई। महावीर निर्वाण से ५४४ वर्ष तक कुत्रिकापण विद्यमान थी। उसके पश्चात इसके होने का उल्लेख नहीं मिलता।

(विशेषावश्यक-गाथा २४५१)

प्रश्न 360—बारह चक्रवर्ती किस किस तीर्थंकर के समय में हुए हैं?

उत्तर—१-भरत चक्रवर्ती प्रथम तीर्थंकर ऋषभ देव जी के समय में हुए हैं। २-सगर चक्रवर्ती, अजित नाथ (दूसरे तीर्थंकर) के के समय में हुए हैं। ३-मघवा चक्रवर्ती। ४-सनत्कुमार चक्रवर्ती, धर्मनाथ स्वामी तथा शान्तिनाथ जी के अन्तर काल में हुए हैं। ५-शान्ति नाथ जी। ६-कुन्थनाथ जी। ७-तथा अरनाथ स्वामी, यह तीनों चक्रवर्ती, स्वयं तीर्थंकर भी थे। ८-संभूम चक्रवर्ती अरनाथ स्वामी तथा मल्लिनाथ जी के अन्तर काल में हुए हैं। ९-महापद्म चक्रवर्ती तथा १०-हरिषेण चक्रवर्ती, यह दोनों मुनि सुव्रत स्वामी तथा नेमिनाथ प्रभु के अन्तरकाल में हुए हैं। ११-जय चक्रवर्ती तथा १२-ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती, यह दोनों नेमिनाथ प्रभु तथा पार्श्वनाथ प्रभु के अन्तर काल में हुए हैं। (त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चारित्र पर्व १ सर्ग १)

प्रश्न 361—बारह चक्रवर्ती किस किस गति में गये हैं?

उत्तर—मघवा चक्रवर्ती तथा सनत्कुमार चक्रवर्ती, यह दोनों तीसरे (सनत्कुमार) देवलोक में गये हैं। सम्भूम चक्रवर्ती तथा ब्रह्मदत चक्रवर्ती, यह दोनों सातवीं नरक में गये हैं। शेष आठों चक्रवर्ती मोक्ष में गये हैं। (त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चारित्र. पर्व १ सर्ग ६)

प्रश्न 362—आयंबिल में काला नमक कल्पता है, या नहीं?

उत्तर—आयंविल में, सफेद नमक, काला नमक, सूंठ, कालीमिर्च, हींग तथा मेथे, यह सभी वस्तुएं कल्पती हैं।

(लघुप्रवचन सारोद्धार, चन्द्र सूरि कृत)

प्रश्न 363—जिस प्रकार भरत क्षेत्र में पांच खण्ड अनार्य हैं तथा मध्य खण्ड में आर्य देश हैं। तथैव क्या महाविदेह क्षेत्रों में भी यही नियम हैं ?

उत्तर—महाविदेह क्षेत्रों के विजयों में प्रथम आर्य खण्ड में मात्र साढ़े २५ देशों के आर्य होने का कहीं भी उल्लेख दृष्टिगोचर नहीं होता अतः उनमें आर्यदेश साढ़े २५ से अधिक हों यह सम्भावना है।

(प्रवचन सारोद्धार टीका)

प्रश्न 364—क्या श्री पुण्डरीक आदि गणधरों की प्रतिमाओं के सम्मुख, 'नमुत्थुणं' का पाठ बोलना योग्य है ?

उत्तर—सामान्य अर्थों की अपेक्षा गणधर[1] प्रभु की मूर्ति के सम्मुख भी 'नमुत्थुणं' बोलना अयोग्य नहीं है।

प्रश्न 365—समवसरण में तीर्थंकर देव के तीनों ओर प्रतिमाओं की स्थापना कौन करता है ?

उत्तर—समवसरण में तीनों ओर प्रतिमाओं की स्थापना व्यन्तर देव करते हैं। (बृहत्कल्प भाष्य टीका, समवायांग सूत्र अंग चौथा)

प्रश्न 366—स्थूलिभद्र स्वामी का नाम कितने समय तक रहेगा ?

उत्तर—स्थूलिभद्र स्वामी का नाम चौरासी चौवीसियों तक स्मरण किया जाता रहेगा। (उपदेश तरंगिणी)

प्रश्न 367—जिस घर में पुत्र अथवा पुत्री का जन्म हुआ हो उस घर के व्यक्ति कितने दिनों तक जिन पूजा आदि नहीं कर सकते ?

---

1. शत्रुंजय तीर्थ पर की जाने वाली ५ चैत्यवंदनों में से एक चैत्यवंदन पुण्डरीक स्वामी के आगे की जाती है। अतः वहां पर 'नमुत्थुणं' आदि स्तव बोलने की परंपरा है।

उत्तर—(१) प्रसूता स्त्री को तीस दिन तक प्रभु दर्शन नहीं करना चाहिए। वह चालीस दिन के पश्चात प्रभु पूजन कर सकती है तथा मुनियों को दान दे सकती है।

(२) पुत्र तथा पुत्री का सूतक बारह दिन का समझना चाहिए। उस घर में रहने वाले, भोजन करने वाले तथा सोने वाले व्यक्ति भी बारह दिन तक जिन पूजा नहीं कर सकते तथा साधु साध्वी को दान नहीं दे सकते।

(३) प्रसूता से सम्बन्ध रखने वाला उसे छूने वाला, उसके साथ से खाने वाला, तथा उसके साथ में रहने वाला व्यक्ति भी बारह दिन तक प्रभु दर्शनादि नहीं कर सकता।

(४) कुटुम्बियों (समानगोत्र वालों) को पांच दिन का सूतक लगता है।

(५) श्रावक के घर में यदि दासी को सन्तान उत्पन्न हो तो श्रावक को तीन दिन का सूतक लगता है। प्रसूता दासी आदि से बारह दिन तक झाड़ आदि तथा तीस दिन तक रसोई आदि का काम नहीं करवाना चाहिए।

(६) घर में भैंस आदि की प्रसूति हो तो दो दिन का सूतक होता है यदि घर से बाहर (जंगल) में प्रसूति हो तो एक दिन का सूतक लगता है। पशुओं की प्रसूति होने के पश्चात भैंस का दूध पन्द्रह दिन बाद, गाय का दूध दस दिन बाद तथा भेड़ एवं बकरी का दूध आठ दिन बाद कल्पता है।

प्रश्न 368—घर में मृत्यु हो जाये, तो कितने दिन का पातक लगता है?

उत्तर—(१) मृतक (मरने वाला व्यक्ति) के घर में रहने वाले एवं भोजन करने वालों को १२ दिन का पातक लगता है।

(२) गोत्रियों को पाँच दिन का पातक लगता है।

(३) मृतक के पास सोने वाले तथा अर्थी उठाने वाले को तीन दिन का पातक लगता है।

(४) मृतक के घर वालों से स्पर्श करने वाले तथा श्मशान तक

जाने वाले को एक दिन का पातक लगता है।

(५) यदि मृतक से स्पर्श न किया हो तथा मृतक के घर वालों से भी स्पर्श न हुआ हो, तो स्नान करने के पश्चात पातक नहीं रहता।

(६) मृतक का मुंह देखने वाले को भी स्नान के पश्चात पातक नहीं रहता।

(७) आठ वर्ष से छोटा वालक मृत्यु प्राप्त करे तो आठ दिन का पातक लगता है।

(८) जितने माह का गर्भ गिरा हो, उतने ही दिन का पातक लगता है।

(९) श्रावक के घर में दास दासी आदि का मरण हो जाये तो तीन दिन का पातक लगता है।

(१०) प्रदेश से पत्रादि के द्वारा समाचार आने पर, जन्म वाले दिन ही मृत्यु होने पर तथा अपने घर में साधु-साध्वी की मृत्यु होने पर एक दिन का पातक लगता है। साधु-साध्वी की पालकी उठाने तथा छूने में पातक नहीं है।

(११) बहिन अथवा पुत्री के घर पातक हुआ हो तो, पातक नहीं लगता।

(१२) घर में पशु आदि मरे तो जब तक वह मृत पशु घर में रहे उसी दिन तक पातक होता है।

(१३) जिस घर में मृत्यु हुई हो उस घर के लोग १२ दिन तक मुनि को दान नहीं दे सकते और न ही मन्दिर जी की किसी वस्तु को स्पर्श ही कर सकते हैं।

(१४) सूतक तथा पातक वाले घर में देवगुरु तथा ज्ञान आदि के धर्मोपकरण बारह दिन तक नहीं ले जाने चाहिएं तथा धर्म उत्सव भी नहीं करना चाहिए।

(१५) सूतक या पातक वाले घर के लोग दूर से ही जिन प्रतिमा तथा गुरु के दर्शन कर सकते हैं एवं मन में जापादि कर सकते हैं। वे जिन गुरु तथा धर्मोपकरण को बारह दिन तक स्पर्श नहीं कर सकते।

(१६) सूतक तथा पातक वाले घर का पानी एवं अग्नि बारह दिन तक जिन पूजा के काम में नहीं आ सकता।

प्रश्न 369–ऋतुवन्ती कितने दिन तक जिन दर्शनादि न करे ?

उत्तर—(१) ऋतुवन्ती स्त्री तीन दिन (२४ पहर) तक देव, गुरु, ज्ञान के उपकरण, अनाज, बर्तन तथा घर की वस्तुओं का स्पर्श न करे, जिनदर्शन भी न करे। वे मन में नमस्कार मन्त्र का जापादि कर सकती है।

(२) ऋतुवन्ती स्त्री तीन दिन के बाद, जिन दर्शन, अग्रपूजा, भावपूजा, गुरुवन्दन, व्याख्यान श्रवण, सामायिक तथा प्रतिक्रमण कर सकती है, किन्तु जिन प्रतिमा का स्पर्श नहीं कर सकती।

(३) ऋतुवन्ती स्त्री सात दिन तक प्रक्षाल तथा अंगपूजा न करे। वह आठवें दिन प्रक्षालादि सभी क्रियाएं कर सकती है।

प्रश्न 370–शाम को पौषध (रात्रि पौषध) लेने वाला श्रावक या श्राविका पौषध लेने के बाद पानी पी सकता है या नहीं ?

उत्तर—(शाम को) रात्रि पौषध करने वाला श्रावक तथा श्राविका पौषध लेने के बाद में पानी नहीं पी सकता।

(हीर प्रश्न उल्लास ४)

प्रश्न 371–पौषध में लघु नीति (पेशाब) करने के बाद इरियावहियं करनी आवश्यक है, या गमणागमण आलोयणा करनी ही पर्याप्त है ?

उत्तर—पौषध में लघु नीति (पेशाव) करने के बाद इरिया वहियं करके गमणा गमणे आलोयणा करनी चाहिए। (श्री आयारमयवीर, नामक प्राचीन समाचारी)

प्रश्न 372–तीर्थंकर प्रभु का जन्माभिषेक कितने कलशों द्वारा होता है। एवं कलशों की ऊंचाई कितनी होती है ?

उत्तर—तीर्थंकर प्रभु का जन्माभिषेक (देवताओं द्वारा) एक करोड़ साठ लाख कलशों से इन्द्र तथा इन्द्राणियाँ करवाती हैं। इन्द्र

इन्द्राणियों की संख्या अढ़ाई सौ है। एक एक देवता चौंसठ चौंसठ हज़ार कलशों से अभिषेक करवाता है। कलशों की ऊंचाई पच्चीस योजन, चौड़ाई बारह योजन तथा कलशों की नाल एक योजन होती है। (सेनप्रश्न-उल्लास २)

प्रश्न 373—चौदह पूर्वों का ज्ञानी, मुनि कौन से देवलोक में उत्पन्न होता है ?

उत्तर—चौदह पूर्वधारी मुनि जघन्य से (कम से कम) छट्ठे देवलोक में उत्पन्न होता है। (उववाई सूत्र ३८, संग्रहणी सूत्र)

प्रश्न 374—कार्तिक मुनि द्वादशांगी के ज्ञाता (चौदह पूर्वधारी) होने पर भी प्रथम देव लोक में कैसे गये ?

उत्तर—प्रमाद आदि वश ज्ञान का कुछ विस्मरण होने से प्रथम देव लोक में गये, ऐसी संभावना है।

प्रश्न 375—इस अवसर्पिणी काल में कुल कितने अच्छेरे हुए हैं ?

उत्तर—(१) उत्कृष्ट अवगाहणा वाले एक ही समय में एक सौ आठ सिद्ध हुए (२) असंयति की पूजा (३) स्त्री तीर्थंकर (४) कृष्ण वासुदेव का धातकी खंड की अपरकंका नामक नगरी में जाना एवं दोनों वासुदेवों के शंख की ध्वनि का मिलना (५) गर्भ परिवर्तन (६) अभावित परिषदा, (तीर्थंकर प्रभु की देशना से किसी भी व्यक्ति को सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति का अभाव) (७) केवली अवस्था में असाता वेदनीय का उदय (८) सूर्य, चन्द्र का मूल विमान से यहां पर आना (९) युगलिक का नरक में जाना, (हरिवंश कुलोत्पत्ति) (१०) चमरेन्द्र का ऊर्ध्वगमन। इस प्रकार यह दस अच्छेरे अवसर्पिणी काल में हुए हैं। (ठाणांग सूत्र, उ० १० सूत्र ३ गा ७७७)

प्रश्न 376—भगवान् महावीर प्रभु ने केवल ज्ञान होने के पश्चात् कितनी तपस्या की थी ?

उत्तर—केवल ज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् तपस्या करने का प्रयोजन ही सिद्ध नहीं होता। महावीर प्रभु ने अपनी आयुष्य के अंत में

केवल छट्ठ (दो उपवास) की तपस्या की थी।

(भगवती सूत्र शतक २ उद्देशा १)

प्रश्न 377–क्या समस्त केवली भगवान् समुद्घात (केवली समुद्घात) करते हैं ?

उत्तर—केवल ज्ञान होने के पश्चात् यदि आयुष्य छः माह से अधिक रहा हो तो केवली अवश्य ही समुद्घात करते हैं। यदि आयुष्य अंतर्मुहूर्त्त से लेकर छः माह तक हो, तो समुद्घात करते भी हैं, और नहीं भी करते। (गुणस्थान क्रमारोह)

प्रश्न 378–श्री शान्ति नाथ प्रभु की माता ने कितने स्वप्न देखे थे ?

उत्तर—शान्तिनाथ प्रभु की माता अचिरा देवी ने चौदह स्वप्न दो बार देखे थे। एक बार चक्रवर्ती पने के सूचक, दूसरी बार तीर्थंकर पने के सूचक। (शत्रुंजयमाहात्म्यग्रंथ सर्ग ८वां)

(गाथा ७३ से ७६ तक)

प्रश्न 379–तिविहार उपवास में पाणहार पौरिसि आदि करने में आती है, क्या पाणहार नवकारसी भी हो सकती है ?

उत्तर—तिविहार उपवास में पाणहार नवकारसी भी हो सकती है।

(प्रत्याख्यान भाष्य की अवचूरि)

प्रश्न 380–सिद्धात्मा की जघन्योत्कृष्ट अवगाहणा कितनी हो सकती है ?

उत्तर– सिद्धात्मा की उत्कृष्ट अवगाहणा ३३३⅓ धनुष तथा जघन्य अवगाहणा एक हाथ आठ अंगुल (बत्तीस अंगुल) हो सकती है।

(लोकप्रकाश सर्ग २)

प्रश्न 381–देवताओं के मुख्य लक्षण क्या क्या हैं ?

उत्तर– (१) देवताओं की आंखों की पलकें झपकती नहीं (२) देवताओं के पांव धरती से चार अंगुल ऊंचे रहते हैं (३) देवताओं का शरीर पसीने से रहित होता है (४) देवताओं के गले की पुष्पमाला

मुरझाती नहीं। यह चार लक्षण देवताओं के हैं।

(व्यवहार भाष्य-गाथा ३०२-३०४, अभिधान राजेन्द्र कोष)

प्रश्न 382—चौदह पूर्वों का ज्ञान कितना होता है ?

उत्तर—चौदह पूर्वों का ज्ञान इतना अधिक है कि कोई भी उसे लिपिबद्ध नहीं कर सकता। फिर भी यह बताया है कि सोलह हजार तीन सौ तिरासी (१६३८३) हाथी प्रमाण स्याही हो तो लिखे जा सकते हैं। बताइए इतनी स्याही, कागज, कलमआदि साधन कौन जुटा सकता है ? (कल्पसूत्र)

प्रश्न 383—श्री जम्बूस्वामी जी के निर्वाण के पश्चात् किस किस वस्तु का विच्छेद हुआ ?

उत्तर—(१) पुलाकलब्धि (२) आहारकलब्धि (३) परमावधिज्ञान (४) चारित्रत्रय[1] (५) मनः पर्यवज्ञान (६) क्षपकश्रेणी (७) जिनकल्प (८) केवलज्ञान (९) मोक्षमार्ग (१०) उपशम श्रेणि। इन दस वस्तुओं का जम्बूस्वामी जी के पश्चात् भरत क्षेत्र की अपेक्षा विच्छेद हो चुका है। (विशेषावश्यक भाष्य गाथा २५९३)

प्रश्न 384—किस २ व्यक्ति को वैरी देवता संहरण नहीं कर सकता ?

उत्तर—(१) विशुद्धब्रह्मचर्य के पालक साधु साध्वी को (२) परिहार-विशुद्धि चारित्र धारी को (३) पुलाक लब्धि धारक मुनि को (४) अप्रमत्त मुनि को (५) श्रुतकेवली को तथा (६) आहारक लब्धि धारक मुनि को कोई देवता या विद्याधर संहरण नहीं कर सकता। (प्रवचन सारोद्धार द्वार २६१वां)

प्रश्न 385—ग्रंथि देश में भव्यातमा आता है या अभव्यात्मा भी आ सकता है ?

1. चारित्रत्रय—तीन प्रकार का चारित्र - परिहारविशुद्धि चारित्र - सूक्ष्म संपरायन चारित्र, तथा यथा ख्यात चारित्र।

उत्तर—ग्रंथि देश की प्राप्ति भव्य जीव तथा अभव्य जीव दोनों कर सकते हैं। किन्तु भव्य जीव (निकट भव्य) अधिक कर्म राशि क्षय कर के सम्यक्त्व की प्राप्ति कर लेता है। किन्तु अभव्यात्मा संख्यातकाल[1] पर्यन्त ग्रंथि देश में ठहर कर पुनः वापिस लौट जाता है।

प्रश्न 386—चौदह पूर्वों के नाम क्या क्या हैं ?

उत्तर—(१) उत्पाद पूर्व (२) अग्रायणीय पूर्व (३) वीर्यप्रवाद पूर्व (४) अस्तिनास्ति प्रवाद पूर्व (५) ज्ञानप्रवाद पूर्व (६) सत्य प्रवाद पूर्व (७) आत्मप्रवाद पूर्व (८) कर्मप्रवाद पूर्व (९) प्रत्याख्यान प्रवाद पूर्व (१०) विद्यानुप्रवाद पूर्व (११) अवंध्य पूर्व (१२) प्राणवायुप्रवाद पूर्व (१३) क्रियाविशाल पूर्व (१४) लोकविन्दुसार पूर्व। इस प्रकार से चौदह पूर्वों के यह नाम हैं।

(नन्दीसूत्र ५७)

(समवायांग १४वां तथा १४७वां)

प्रश्न 387—भगवान् महावीर ने अपने २५वें भव में कितनी तपस्या की थी ?

उत्तर—पच्चीसवें भव में उनका नाम नन्दन ऋषि था। उन्होंने एक लाख वर्ष तक संयम का पालन किया था। ग्यारह लाख अस्सी हज़ार छः सौ पैंतालीस (११८०६४५) मासक्षमण किये थे। एवं तीर्थंकर गोत्र का बंध किया था।

प्रश्न 388—सूक्ष्म निगोद का जीव एक वर्ष में कितने भव करता है ?

उत्तर—सूक्ष्म निगोद का जीव एक वर्ष में सत्तर करोड़ सतत्तर लाख अट्ठासी हज़ार आठ सौ (७०७७८८८००) भव करता है।

प्रश्न 389—क्या लेश्याओं का रस गंध-स्पर्श भी होता है ?

उत्तर—लेश्याओं का रस, गंध, स्पर्श होता है। निम्न प्रकार से स्पष्टीकरण है :

1. अभव्यात्मा ग्रंथि देश में उत्कृष्ट संख्यात काल तक ठहर सकता है।

कृष्ण लेश्या का रस अत्यन्त कड़वा, नील लेश्या का तीखा, कापोत लेश्या का अति कसैला, पीत लेश्या का रस खट्टा मीठा, पद्म लेश्या का मीठा तथा शुक्ल लेश्या का रस अतिमधुर होता है। प्रथम की तीन लेश्याओं की गंध मरे हुए कुत्ते की गंध से भी बुरी होती है। अन्त की तीन लेश्याओं की गंध केवड़े जैसी होती है। प्रथम की तीन लेश्याओं का स्पर्श अत्यन्त कर्कश (खरंवा) होता है। अन्त की तीन लेश्याओं का स्पर्श अत्यन्त कोमल होता है। (उत्तराध्ययन सूत्र अ ३४, गाथा ५८-६०)

प्रश्न 390—भविष्य में होने वाले चौबीस तीर्थंकरों के नाम क्या क्या हैं?

उत्तर—(१) श्री पद्मनाभ जी (२) श्री सूरदेव जी (३) श्री सुपार्श्व जी (४) श्री स्वयंप्रभ जी (५) श्री सर्वानुभूति जी (६) श्री देव श्रुत जी (७) श्री उदय स्वामी जी (८) श्री पेढाल स्वामी जी (९) श्री पोट्टिल स्वामी जी (१०) श्री शतकीर्ति स्वामी जी (११) श्री मुनि सुव्रत स्वामी जी (१२) श्री अमम स्वामी जी (१३) श्री निष्कषाय स्वामी जी (१४) श्री निष्पुलाक स्वामी जी (१५) श्री निर्मम स्वामी जी (१६) श्री चित्र गुप्त स्वामी जी (१७) श्री समाधि स्वामी जी (१८) श्री संवरक स्वामी जी (१९) श्री यशोधर स्वामी जी (२०) श्री विजय स्वामी जी (२१) श्री मल्लजिन स्वामी जी (२२) श्री देवजिन स्वामी जी (२३) श्री अनन्तवीर्य स्वामी जी (२४) श्री भद्रजिन स्वामी जी। इस प्रकार से भविष्य में होने वाली चौवीसी के नाम होंगे।

(समवायांग सूत्र, समवाय १५८वां, तथा प्रवचन सारोद्धार, द्वार ७वां, गाथा २९३-२९५)

प्रश्न 391—तीर्थंकर देव के समवसरण में बारह पर्षदा कौन २ सी होती हैं?

उत्तर—चारों प्रकार के देवता, चारों प्रकार की देवियां, साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका यह बारह पर्षदा होती हैं। कई स्थानों पर अन्य प्रकार से भी पर्षदा गिनाई गई हैं।

प्रश्न 392–तीर्थंकर भगवन्तों के शरीर का वर्ण कैसा था ?

उत्तर–छठे पद्म प्रभु जी तथा बारहवें वासु पूज्य जी के शरीर का वर्ण लाल था, आठवें चन्द्र प्रभु तथा नवमें सुविधि नाथ जी के शरीर का वर्ण (सफेद) गौरवर्ण था, उन्नीसवें मल्लिनाथ जी एवं तेईसवें पार्श्वनाथ जी के शरीर का वर्ण नीला था बीसवें मुनि सुव्रत स्वामी जी, बाईसवें नेमिनाथ जी के शरीर का वर्ण श्याम (काला) था। तथा बाकी के सोलह तीर्थंकरों के शरीर का सुवर्ण (सोने) जैसा वर्ण था। (आ. गाथा ३७६, ३७७, प्रवचन द्वार ३०)

प्रश्न 393–संसार में पैंतालीस लाख योजन के कितने पदार्थ हैं ?

उत्तर–रत्न प्रभा नरक का प्रथम पाथड़ा, सिद्धशिला, अढ़ाई द्वीप, उड्डुकविमान, यह चारों पदार्थ पैंतालीस लाख योजन वाले हैं। (ठाणांग सूत्र स्थान ४)

प्रश्न 394–संसार में एक लाख योजन वाले कितने पदार्थ हैं ?

उत्तर–जम्बूद्वीप, स्वार्थसिद्धि विमान, सातवीं नरक का अप्रतिष्ठान नरकावास, पालक विमान, यह चारों पदार्थ एक एक लाख योजन के हैं। (ठाणांग सूत्र स्थान ४)

प्रश्न 395–भविष्य में होने वाले प्रथम तीर्थंकर पद्मनाभ जी के माता पिता का क्या नाम होगा तथा वे किस नगर में होंगे ?

उत्तर–श्री पद्मनाभ जी के पिता शतद्वार पुर नगर में समुचि नामक सातवें कुलकर होंगे तथा माता का नाम भद्रा देवी होगा। (तीर्थोद्गालियपयन्ना)

प्रश्न 896–चौबीस प्रकार का परिग्रह कौन २ सा है ?

उत्तर–क्षेत्र, सोना, चांदी, धन, धान्य, दास, दासी, वस्त्र, वर्तन तथा मकान। यह दस प्रकार का बाह्य परिग्रह है। मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, पुरुष वेद, स्त्री वेद, नपुंसक वेद। चौदह प्रकार का यह आभ्यन्तर परिग्रह है। इस प्रकार से परिग्रह के चौबीस भेद हैं। (नियमसार पृष्ठ ९५)

प्रश्न 397–श्री रामचन्द्र जी तथा लक्ष्मण जी की कितनी २ रानियां थीं ?

उत्तर—श्री रामचन्द्र जी की चार रानियां थीं। सीता, प्रभावती, रतिनिभा तथा श्रीदामा। लक्ष्मण जी की सोलह हज़ार रानियां थीं। (त्रिषष्टिशलाका पर्व ७ सर्ग ८)

प्रश्न 398–तिर्यग् जृम्भक देवताओं के दस भेद कौन २ से हैं ?

उत्तर—१-अन्नजृम्भक, २-पाणजृम्भक, ३-वस्त्रजृम्भक, ४-लयनजृम्भक, ५-फलजृम्भक, ६-पुष्पफलजृम्भक, ७-विद्याजृम्भक, ८-अव्यक्त जृम्भक, ९-शयनजृम्भक, १०-पुष्पजृम्भक। इस प्रकार से तिर्यग् जृम्भक देवताओं के दस भेद हैं। (आचारांग-उ-१, सूत्र १)

प्रश्न 399–क्या दान देने से पापों का क्षय होता है ?

उत्तर—दान देने से भी पाप कर्म क्षय होते हैं। जैसे पानी खून को धो डालता है, उसी प्रकार गृह त्यागी (अतिथि मुनि) महात्माओं को यथायोग्य चतुर्विध दान देने से गृहस्थी के कार्यों से संचित कठिन पाप भी अवश्य ही नष्ट हो जाते हैं।

(रत्नकरण्डक श्रावकाचार गाथा ११४)

प्रश्न 400–आचार्य कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर—किशमिश सदृश, बादाम सदृश, बेर सदृश, सुपारी सदृश।

किशमिश सदृश, ऊपर से भी नरम, अन्दर से भी नरम।

बादाम सदृश, ऊपर से कठोर, अन्दर से नरम।

बेर सदृश, ऊपर से नरम, अन्दर से कठोर।

सुपारी सदृश, ऊपर से भी कठोर, अन्दर से भी कठोर।

इस प्रकार से चार प्रकार के आचार्य समझने चाहिएं।

प्रश्न 401–श्रमण कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर—श्रमण चार प्रकार के हैं : ऋषि, मुनि, यति, अनगार।

ऋषि—ऋद्धि धारक श्रमण।

मुनि—अवधि ज्ञानी, मनः पर्यव ज्ञानी, केवल ज्ञानी श्रमण।

यति—उपशम अथवा क्षपक श्रेणि में आरूढ़ श्रमण।

अणगार—सामान्य श्रमण। (नियम सार-अ. १)

प्रश्न 402–संज्ञा के कुल कितने भेद हैं ?

उत्तर—आहार, भय, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, लोक, ओघ, सुख, दुःख, मोह, विचिकित्सा, शोक, धर्म। इस प्रकार से संज्ञा के सोलह भेद हैं। (आचारांग उ-१ टीका)

प्रश्न 403–सर्व विरतिसूत्र (करेमी भंते) के देशविरति सूत्र के एवं नमस्कारमन्त्र सूत्र के कितने २ अक्षर हैं ?

उत्तर—सर्वविरति सूत्र के ८६ अक्षर हैं। देशविरति सूत्र के ७६ अक्षर हैं। तथा नमस्कार मन्त्र सूत्र के ६८ अक्षर हैं।

प्रश्न 404–जिन प्रतिमा तथा जिन पूजा का वर्णन किस किस आगम में है ?

उत्तर—रायपसेणी सूत्र (सूर्याभ देव का अधिकार), जीवाभिगम सूत्र (विजयदेवता का अधिकार), ज्ञाता धर्म कथा सूत्र, उवाई सूत्र, भगवती सूत्र (द्रौपदी का एवं अम्बड़ अनगार का वर्णन है) इस प्रकार से और भी अनेक आगमों में प्रतिमा पूजन का वर्णन है।

प्रश्न 405–दान के पांच भूषण कौन २ से हैं ?

उत्तर—(१) पात्र (लेने वाले) को देख कर आनन्द के आँसू आ जाना।
(२) शरीर का रोमांच होना (रौंगटे खड़े हो जाना)।
(३) पात्र का बहुमान करना।
(४) प्रियवचन बोल कर दान देना।
(५) अनुमोदन करना।

प्रश्न 406–नवग्रैवेयक विमानों के क्या २ नाम हैं ?

उत्तर—सुदर्शन, सुप्रतिबद्ध, मनोरम, सर्वतोभद्र, विशाल सौम्य, सुमनस, प्रीतिकर, आदित्य। यह नव नाम ग्रैवेयक विमानों के हैं।

प्रश्न 407–दान के पांच दूषण कौन २ से हैं ?

उत्तर—अनादर से देना, विलम्ब से देना, मुंह विगाड़ कर देना, अप्रिय वचन वोल कर देना, देने के वाद पश्चात्ताप करना। यह दान के पांच दूषण माने गए हैं।

प्रश्न 408–देवेन्द्र (सौधर्मइन्द्र) अपने सिंहासन पर बैठते समय किस को नमस्कार करता है?

उत्तर—देवेन्द्र अपने सिंहासन पर बैठते समय ब्रह्मचारी को नमस्कार करता है, णमोबंभयारिस्स।

प्रश्न 409–अष्टांग योग का क्या अर्थ है?

उत्तर—अष्टांग योग का अर्थ - योग के आठ अंग, वह निम्न प्रकार से हैं:

(१) यम—अहिंसा आदि महाव्रतों का पालन।
(२) नियम—आत्म विकास में सहायक वनने वाले छोटे नियम।
(३) आसन—मन की चंचलता को रोकने वाले आसन।
(४) प्राणायाम—श्वासोच्छ्वास की साधना से पवन पर विजय प्राप्त करना।
(५) प्रत्याहार—मन पर तथा इन्द्रियों पर नियन्त्रण।
(६) धारणा—ध्येय की ओर निश्चलता पूर्वक मन को लगाना।
(७) ध्यान—आर्त्तध्यान तथा रौद्र ध्यान का त्याग करके धर्म ध्यान तथा शुक्ल ध्यान का अभ्यास करना।
(८) समाधि—संकल्प विकल्पों पर नियन्त्रण रखना।

(योगशास्त्र प्रकाश ४-५)

प्रश्न 410–जिनेश्वर भगवान की नवांगी (नव अंगों की) पूजा का विधान शास्त्रोक्त है, या नहीं?

उत्तर—(१) अंगूठे (२) ढींचने (गोडे) (३) हस्त (४) खम्भे (५) मस्तक (६) कपाल (७) कण्ठ (८) हृदय (९) उदर (पेट) इस प्रकार से नव अंगों पर तिलक लगाने का विधान शास्त्रोक्त है।

(प्रज्ञापनासूत्र-श्यामाचार्य कृत, तत्त्वार्थ सूत्र-उमास्वाति आचार्य-कृत, पूजा पंचाशिका-आचार्य भद्र वाहु स्वामी कृत)

प्रश्न 411–मुंहपत्ति पड़िलेहण करते समय किस बात का चिन्तन किया जाता है ?

उत्तर—मुंहपत्ति पड़िलेहण के समय पचास बोलों का चिन्तन किया जाता है। वे पचास बोल निम्न प्रकार से हैं :

(१) सूत्र अर्थ तत्त्वकरी सद्दहुं
(२) सम्यक्त्व मोहनीय
(३) मिश्र मोहनीय
(४) मिथ्यात्व मोहनीय परिहरूँ
(५) काम राग
(६) स्नेह राग
(७) दृष्टिराग परिहरूँ
(८) सुदेव
(९) सुगुरु
(१०) सुधर्म आदरूँ
(११) कुदेव
(१२) कुगुरू
(१३) कुधर्म परिहरूँ
(१४) दर्शन
(१५) ज्ञान
(१६) चारित्र आदरूँ
(१७) दर्शन विराधना
(१८) ज्ञानविराधना
(१९) चरित्र विराधना परिहरूँ
(२०) मनगुप्ति
(२१) वचन गुप्ति
(२२) कायगुप्ति आदरूँ
(२३) मनोदण्ड
(२४) वचन दण्ड
(२५) कायदण्ड परिहरूँ
(२६) हास्य

(२७) रति
(२८) अरति परिहरूँ
(२९) भय
(३०) शोक
(३१) जुगुप्सा परिहरूँ
(३२) कृष्ण लेश्या
(३३) नील लेश्या
(३४) कापोत लेश्या परिहरूँ
(३५) रस गारव
(३६) ऋद्धि गारव
(३७) साता गारव परिहरूँ
(३८) मायाशल्य
(३९) निदान शल्य
(४०) मिथ्यात्व शल्य परिहरूँ
(४१) क्रोध
(४२) मान
(४३) माया
(४४) लोभ परिहरूँ
(४५) पृथिवीकाय
(४६) अप्काय
(४७) तेउकाय की रक्षा करूँ
(४८) वाउकाय
(४९) वनस्पतिकाय
(५०) त्रसकाय की यत्ना करूँ ।

इन बोलों को मन में बोलते हुए इनके अर्थ का चिन्तन करना चाहिए ।

प्रश्न 412—बारह अंगों (द्वादशांगी) के नाम क्या क्या हैं ?

उत्तर—बारह अंगों के नाम निम्न प्रकार से हैं :

आचारांग, सूयगडांग, ठाणांग, समवायांग, विवाहपन्नत्ति(भगवती) नायाधम्मकहाओ, उवासगदसाओ, अंतगडदसाओ, अणुत्तरोववाइ-

अदसाओ, पराहवागरणाइं, विवागसुअं, दिट्ठिवाओ। (नन्दीसूत्र)

प्रश्न 413–विभंग ज्ञान वाला ऊर्ध्वलोक में तथा अधोलोक में कहां तक देख सकता है ?

उत्तर—विभंग ज्ञानी ऊर्ध्वलोक में प्रथम देवलोक तक देख सकता है तथा अधोलोक में विशेष नहीं देखता, अधोलोक में अवधि ज्ञानी को भी देखना दुर्लभ है तो फिर विभंग ज्ञानी कैसे देख सकता है। (ठाणांग सूत्र स्थान ३)

प्रश्न 414–भूमि कंपन (भूचाल) के क्या क्या कारण हैं ?

उत्तर—(१) पृथिवी पर बड़े भारी पर्वत आदि गिरे।
(२) वाणव्यन्तर देवता अपने भवन में रह कर उछल कूद करें।
(३) नागकुमार देवता तथा सुवर्ण कुमार देवताओं का परस्पर युद्ध हो, इन कारणों से तथा अन्य भी कारणों से भूमि कम्पन होता है। (ठाणांग सूत्र स्थान ३, उद्देशा ४)

प्रश्न 415–देवताओं की मृत्यु के समय क्या २ लक्षण प्रकट होते हैं ?

उत्तर-(१) पुष्पमाला मुरझा जाती है (२) लज्जा नहीं रहती (३) शरीर की शोभा मंद पड़ जाती है (४) विमान आभरण, कान्ति-रहित दिखते हैं (५) आलस्य आता है (६) निद्रा आती है (७) काम रंग भंग होता है (८) दृष्टि घूमती है (९) कल्पवृक्ष मुरझाया दिखता है (१०) शरीर में अरति (अस्नेह) पैदा होती है। इस प्रकार देवताओं की मृत्यु समय दस लक्षण प्रकट होते हैं। (ठाणांग सूत्र स्थान ३)

प्रश्न 416–छप्पन दिक्कुमारियां किस निकाय (जाति) की हैं ?

उत्तर—यह छप्पन दिक्कुमारियां भवनपति निकाय की होती हैं।

प्रश्न 417–सुधर्मावतंसक विमान तथा ईशानावतंसक विमान लम्बाई चौड़ाई में कितना है ?

उत्तर—यह विमान साढ़े बारह लाख योजन लम्बे तथा चौड़े हैं। (समवायांग सूत्र)

प्रश्न 418–बिना इच्छा के शील, पालने, क्षुधा, तृषा सहन करने से जीव मर कर कौन से देव लोक तक पैदा हो सकता है?

उत्तर—ऐसा व्यक्त वाणव्यन्तर देवता में उत्पन्न हो सकता है और उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम की एवं जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष को प्राप्त करता है। (भगवती सूत्र, श १, उ १)

प्रश्न 419–देव कुरु, उत्तार कुरु के युगलियों को आहार की इच्छा कब होती है?

उत्तर—देवकुरु, उत्तर कुरु के युगलियों को तीन दिन बाद आहार की इच्छा होती है तथा युगलिक तिर्यञ्चों को दो दिन के बाद आहार की इच्छा होती है। (भगवती सूत्र श १, उ २)

प्रश्न 420–केवली भगवन्त आहार करते हैं, ऐसा किस आगम में वर्णन है?

उत्तर—केवली प्रभु के आहार का वर्णन कई आगमों में हैं। भगवती सूत्र श २, उ १ स्कंधक जी के अधिकार में भगवान् महावीर के आहार का वर्णन है तथा ज्ञाता धर्म कथा सूत्र में भगवान् मल्लि नाथ जी के आहार करने का वर्णन है।

प्रश्न 421–तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय एक गर्भ में उत्कृष्ट कितने काल तक रह सकता है?

उत्तर—तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय एक ही गर्भ में उत्कृष्ट आठ वर्ष तक रह सकता है, जघन्य अंतर्मुहूर्त्त तक। (भगवती सूत्र उ-५)

प्रश्न 422–चन्द्र का विमान बड़ा है, या राहु का विमान बड़ा है?

उत्तर—चन्द्र के विमान को (१६०००) सोलह हजार देवता उठाते हैं, राहु के विमान को (८०००) आठ हजार देवता उठाते हैं। चन्द्र का विमान बड़ा है तथा राहु का विमान छोटा है। राहु का विमान चन्द्र के विमान से चार अंगुल नीचा है, तथा पांच वर्ण का है।

(जीवाभिगम सूत्र तथा भगवती शतक १२, उ ६)

प्रश्न 423–देवताओं के (९९) नवानु भेदों में से जीव किस किस भेद में से आकर चक्रवर्ती बन सकता है ?

उत्तर—पन्द्रह (१५) परमाधार्मिक के भेद तथा तीन किल्विषक के भेद इन अट्ठारह (१८) भेदों में से आकर चक्रवर्ती नहीं वन सकता। शेष इक्यासी (८१) भेदों में से आकर चक्रवर्ती जीव बन सकता है। (भगवती श १२, उ ९)

प्रश्न 424–देवलोक में देवता शय्या में उत्पन्न होते हैं, तो क्या एक ही शय्या है या अलग २ शय्याएँ हैं ?

उत्तर—देवताओं के उत्पन्न होने की तथा विश्राम करने की शय्याएँ अलग २ हैं। एक ही शय्या नहीं है। जैसे सूर्य विमान में संख्यात देवता हैं तथा शय्याएँ भी संख्यात ही हैं।

(भगवती श १३, उ २)

प्रश्न 425–नव (९) वर्ष से अधिक आयुष्य वाला मनुष्य मर कर कौन से देव लोक तक जा सकता है ?

उत्तर–नव वर्ष की आयुष्य वाला मनुष्य मर कर अनुत्तर विमान में तथा मोक्ष में भी जा सकता हैं।

प्रश्न 426–वज्रऋषभ नाराच संघयण वाला जीव ही सातवीं नरक में जाता है, ऐसी मान्यता है। तो क्या तन्दुलिया मत्स्य वज्रऋषभ नाराच संघयण वाला है, जो कि सातवीं नरक में ही जाता है ?

उत्तर—तिर्यञ्चों के छः संघयण कहे हैं। तन्दुल मत्स्य वज्रऋषभ नाराच संघयण वाला ही हैं।

(भगवती सूत्र, शतक २४)

प्रश्न 427–पार्श्वनाथ परम्परा के केशीकुमार श्रमण को कोई तो तीन ज्ञान का धारक मानते हैं, तथा कोई चार ज्ञान के धारक थे, ऐसा कहते हैं, तो वास्तविकता क्या है ?

उत्तर—पार्श्वनाथ परम्परा के केशीकुमार श्रमण जिन्होंने प्रदेशी राजा को प्रतिबोध दिया था, वह तो चार ज्ञान के धारक थे तथा जो केशी कुमार श्रमण श्रावस्ती नगरी के तिन्दुक उद्यान में गौतम स्वामी से मिले थे वह तीन ज्ञान के धारक थे। तो सिद्ध हुआ कि यह दोनों केशी कुमार अलग २ थे।

(उत्तराध्ययन सूत्र, अ २३)

प्रश्न 428–तन्दुल मत्स्य की आयु एक मुहूर्त्त कही गई है, तो क्या वह सम्पूर्ण एक मुहूर्त्त की आयु वाला है या न्यूनाधिक आयुष्य वाला है ?

उत्तर—तन्दुल मत्स्य ११ लव पर्यन्त गर्भ में रहता है, तथा जन्म होने के पश्चात् छियासठ (६६) लव का आयुष्य भोग कर महारौद्र ध्यान करने से सातवीं नरक में उत्पन्न होता है।

(पन्नवणा जी सूत्र १ पद)

प्रश्न 429–संसार चक्र में भटकता हुआ जीव, उत्कृष्ट कितनी बार अनुत्तर विमानों में पैदा हो सकता है ?

उत्तर—जीव प्रथम के चार अनुत्तर विमानों में उत्कृष्ट दो बार उत्पन्न हो सकता है, तथा अन्तिम अनुत्तर विमान (सर्वार्थसिद्धि विमान) में उत्कृष्ट एक भव ही कर सकता है। अर्थात् सर्वार्थसिद्धि विमान से निकलकर जीव अवश्य ही अगले जन्म में मोक्ष प्राप्त करता है।

(पन्नवणा जी सूत्र पद १५)

प्रश्न 430–संज्ञी तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय के अवधि ज्ञान का क्षेत्र कितना है ?

उत्तर—जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग तथा उत्कृष्ट असंख्यात द्वीप समुद्र प्रमाण अवधि ज्ञान तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय जीव प्राप्त कर सकता है।

(पन्नवणा जी सूत्र पद ३३)

प्रश्न 431–संज्ञी मनुष्य अवधि ज्ञान से कितने क्षेत्र तथा काल को देखता जानता है ?

उत्तर—अंगुल का असंख्यातवां भाग क्षेत्र देखने वाला अवधि ज्ञानी आवलिका के असंख्यातवें काल (की बात) को जानते हैं। एक अंगुल क्षेत्र देखने वाला कुछ न्यून आवलिका की बात जानता है। ९ अगुल क्षेत्रदर्शी पूरी आवलिका को, एक हाथ क्षेत्रदर्शी अन्तर्मुहूर्त्त को, धनुष क्षेत्र दृष्टा ९ मुहूर्त्त को तथा एक कोश, एक योजन, २५ योजन, भरतक्षेत्र, जम्बू द्वीप, ढ़ाई द्वीप, १५ द्वीप, संख्यातद्वीप व असंख्यात द्वीप समुद्र देखने वाला क्रमशः एक दिन, ९ दिन, कुछ कम एक पक्ष, पूर्ण पक्ष, एक मास, एक वर्ष, ९ वर्ष संख्यातकाल व असंख्यातकाल की बात को जानता है। परम अवधि ज्ञानी लोकालोक देखता है तथा अन्तर्मुहूर्त्त में केवलज्ञान को प्राप्त कर लेता है। अलोक में द्रष्टव्य कुछ भी नहीं है अतः वह वहां पर कुछ भी नहीं देखता, परन्तु यहां परमावधि की उत्कृष्ट शक्ति बताई है।

प्रश्न 432–तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन करने के क्या २ उपाय हैं ?

उत्तर—तीर्थंकर गोत्र का बंध २० कारणों से होता है। इन में से किसी एक स्थानक की उपासना करने से ही तीर्थंकर गोत्र का बन्ध हो सकता है। तीर्थंकर गोत्र का बंध करने वाला व्यक्ति नरक या देवलोक का एक भव प्राप्त करके मानव जन्म लेकर (तीसरे भव में) मोक्ष प्राप्त करता है।

२० स्थानक निम्नलिखित हैं :—

१. सम्यग्दर्शन की विशुद्धता। २. मोक्ष के साधनों (ज्ञानादि) के ऊपर विनय। ३. व्रत और शील के पालन में अप्रमाद। ४. सतत ज्ञानाभ्यास। ५. सांसारिक सुखों में अनासक्ति ६-७ यथाशक्ति त्याग एवं तप। ८. संघ और साधु को समाधि (स्वस्थता) देना। ९. उनकी सेवा करना। १०-१३. अरिहंत, आचार्य, विद्वान् और शास्त्र की सच्ची भक्ति। १४. सामायिकादि आवश्यक क्रिया निरंतर करना। १५. उपदेशादि से शासन प्रभावना

करना। १६. शासन या सार्धमिक पर निष्काम स्नेह रखना अथवा धर्म श्रवण। १७-१९. सिद्ध, गुरू और स्थविर की भक्ति तथा २०. ज्ञान का चिन्तन। (तत्त्वार्थसूत्र ६/२३)

प्रश्न 433–अरिहंत का शारीरिक बल कितना होता है?

उत्तर—१२ योद्धाओं का बल १ बैल में होता है, १० बैलों का बल एक घोड़े में, १२ घोड़ों का बल एक भैंसे में, १५ भैंसे का वल १ हाथी में, ५०० हाथी का बल एक सिंह में होता है।

२००० सिंहों का बल एक अष्टापद प्राणी में, १० लाख अष्टापद का वल १ बलदेव में। २ बलदेव का बल १ वासुदेव में। २ वासुदेव का बल एक चक्रवर्ती में। १ क्रोड़ चक्री का वल १ देवता में। १ क्रोड़ देवों का वल एक इन्द्र में होता है। जबकि अरिहंत इतने बली होते हैं कि अनंत इन्द्र मिलकर भी अरिहंत की कनिष्ठा अंगुली को भी नहीं हिला सकते हैं।

प्रश्न 434–एक समय में कितने तीर्थंकर हो सकते हैं?

उत्तर—ढाई द्वीप में एक ही समय में कम से कम २० तीर्थंकर अवश्य ही (महाविदेह में) होते हैं। जव ढाई द्वीप के ५ भरत, ५ ऐरावत तथा ५ महाविदेह के १६० विजयों में तीर्थंकर विचर रहे होते हैं तो वे उत्कृष्ट १७० होते हैं। लेकिन एक अन्य गणित या अपेक्षा से ढाई द्वीप में कम से कम १६८० तीर्थंकर अवश्य होते हैं।

—तथाहि—

महाविदेह क्षेत्र में प्रत्येक एक लाख पूर्व के पश्चात् कम से कम २० तीर्थंकरात्माओं का जन्म होता है। इस तरह से ८४ लाख पूर्व वर्षों में (२० × ८४) = १६८० तीर्थंकरों का जन्म होता है। जब २० तीर्थंकरों (वर्तमान) का निर्वाण होता है तो उसी समय साधक अवस्था में विचरते हुए २० तीर्थंकरों को केवलज्ञान प्राप्त होता है तब नवीन तीर्थंकरों की आयु ८३ लाख पूर्व होती है। एक लाख पूर्व के बाद जब वे २० तीर्थंकर भी मोक्ष चले जाते हैं तो अन्य २० को केवल ज्ञान हो जाता है। प्रत्येक १ लाख पूर्व के अन्तर से जन्म लेने वाले तीर्थंकर इसी क्रम से केवल ज्ञान प्राप्त करते जाते हैं। अर्थात् यद्यपि तीर्थंकर

अवस्था को प्राप्त तीर्थंकर तो जघन्यतः २० ही होते हैं लेकिन गृहस्थावस्था की अपेक्षा से वे (२०×८४)=१६८० एक ही समय में अवश्य होते हैं। लेकिन वे जीवन काल में परस्पर कभी नहीं मिलते। यह अनादि नियम है।

प्रश्न 435–जैन शास्त्रों के अनुसार भूत प्रेत व्यंतर आदि हैं या नहीं ? यदि हैं तो वे कहां रहते हैं ?

उत्तर– जैन शास्त्रों में भूत प्रेत आदि के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। जैन ग्रन्थों में इनको व्यंतर और वाणव्यंतर शब्दों से अभिहित किया गया है तथा उनके स्वरूप, आयु, शरीरमान, स्वभाव तथा स्थान आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है।

इस पृथ्वी के नीचे जहाँ रत्नप्रभा नाम की पहली नरक है उस से ऊपर १००० योजन का पृथ्वी पिंड है उसमें भी १००-१०० योजन नीचे ऊपर का भाग छोड़कर शेष ८०० योजन के ८ भागों में ८ प्रकार के व्यंतर हज़ारों लाखों मील लम्बे असंख्य नगरों में रहते हैं। ऊपर के छोड़े हुए १०० योजन में से भी १०-१० योजन ऊपर नीचे का भाग छोड़कर शेष ८० योजन के ८ भागों में ८ प्रकार के वाणव्यंतर रहते हैं।

इन देवों का उत्पत्ति स्थान तो यही है लेकिन कई वार ये व्यंतर भूत-प्रेत आदि अपने ज्ञान से अपने पूर्व जन्म के शत्रु या सम्बन्धी को दुःख सुख देने के लिए यहां आते हैं तो वापिस स्व-स्थान पर पहुंचने का मार्ग भूल जाते हैं। तदुपरांत वे इसी पृथ्वी पर घूमते हुए, वन, श्मशान जीर्ण मकान, गुफा, निर्जनस्थान, वटवृक्ष आदि के आश्रित होकर आयु व्यतीत करते हैं।

प्रश्न 436–पृथ्वी पर एक समय में कितने मनुष्य रह सकते हैं ?

उत्तर—ढाई द्वीप में मनुष्यों का वास है। इतने क्षेत्र में मनुष्यों की अधिकतम संख्या २९ आंकड़ों जितनी होती है। यह संख्या निम्नलिखित है :—

७९२२८१६२, ५१४२६४३, ३७५९३५४, ३९५०३३६

भगवान् अजित नाथ के समय यह संख्या हुई थी। यह कुछ आचार्यों का मत है। यदि कभी कम से कम मनुष्य भी हों तो वो २९ एकों से कम नहीं हो सकते। मनुष्यों की संख्या सदा ही २९ आंकड़ों जितनी रहती है।

प्रश्न 437–मनुष्य लोक में कितने ज्योतिष देवता हैं ?

उत्तर—ढाई द्वीप तथा २ समुद्रों में १३२ सूर्य तथा १३२ चन्द्र हैं। प्रत्येक चन्द्रमा के साथ ८८ ग्रह, २८ नक्षत्र तथा ६६९७५००००० ००००००००० तारे होते हैं।

आधुनिक विज्ञान आज तक ११ ग्रहों को देख सका है जबकि अति तीव्र या अतिमंद गति के शेष ग्रहों को देखना विज्ञान के बश की बात नहीं है। एक समय में मानव अपने चारों ओर मात्र ३००० तारे ही देख सकता है। दूरस्थ तारों व ग्रहों को दूरबीन आदि की सहायता से ही देखा जा सकता है। ढाई द्वीप के बाहर असंख्य ज्योतिष विमान हैं।

प्रश्न 438–सिद्धों के कितने भेद हैं ?

उत्तर—सिद्धों के १५ भेद हैं, जिनके नाम तथा उदाहरण निम्नलिखित हैं :—१. जिन सिद्ध (महावीर आदि)। २. अजिन सिद्ध (गौतम आदि)। ३. तीर्थसिद्ध (गणधर आदि। ४. अतीर्थसिद्ध (मरूदेवी)। ५. स्वयंबुद्ध[1] सिद्ध (कपिल आदि)। ६. प्रत्येक बुद्ध सिद्ध[2] (करकंडु आदि)। ७. बुद्धबोधित सिद्ध[3]। ८. स्त्री लिंग सिद्ध (चंदना)। ९. पुरुषलिंग सिद्ध (गौतम आदि)। १०. नपुंसक लिंग सिद्ध (गांगेय आदि)। ११. स्वलिंगसिद्ध (साधु)। १२. अन्य लिंग सिद्ध (वल्कलचीरी)। १३. गृहिलिंगसिद्ध (भरत)। १४. एक सिद्ध[4]। १५. अनेक सिद्ध[5]। (नवतत्त्व प्र. ५५-५९)

1. ये जाति स्मरण ज्ञान के द्वारा पूर्व जन्म जानकर स्वयं दीक्षा लेते हैं।
2. ये किसी का मरण आदि देखकर अनित्य भावना से प्रेरित होकर स्वयं दीक्षा लेते हैं।
3. ये आचार्यादि के उपदेश से दीक्षा लेते हैं।
4. एक समय में अकेले ही सिद्ध होने वाले।
5. एक समय में अनेक सिद्ध होने वाले।

प्रश्न 439–असज्झाय क्या है तथा कितने प्रकार की है ?

उत्तर—जिस समय में सूत्र पढ़ने की जिनाज्ञा न हो उसे असज्झाय (अस्वाध्याय) काल कहते हैं—यह ३४ प्रकार का है। इस समय में स्वाध्याय करने से जिनाज्ञा भंग का दोष लगता है तथा मानसिक विकृतियां भी उत्पन्न होती है। ३४ असज्झाय ये हैं— १. तारा टूटे तो एक मुहूर्त्त तक असज्झाय। २. सुबह शाम लाल रंग के बादल जब तक रहें। ३-४. बिजली चमके या बादल गर्जे तो एक मुहूर्त्त तक (आर्द्रा से स्वाति सौर नक्षत्र तक बादल बिजली की असज्झाय नहीं होती)। ५. बिजली कड़के तो ८ प्रहर। ६. शुक्ल पक्ष के प्रथम तीन दिन में जब तक चन्द्र दिखे। ७. बादलों में जब तक मनुष्य पिशाचादि के चिन्ह दिखें। ८-१०. काली सफेद धूंवर पड़े व आकाश में धूल का गोटा दिखे। ११-१४. जब तक मांस, रक्त, हड्डी, विष्ठा दृष्टिगोचर हो। १५. श्मशान से १०० हाथ तक। १६. राजा की मृत्यु के बाद हड़ताल रहने तक। १७. राजा का युद्ध हो तब तक। १८-१९. सूर्य-चन्द्र ग्रहण (खग्रास हो तो १२ प्रहर, अन्यथा कम)। २०. पंचेंद्रिय मुर्दे से १०० हाथ तक। २१-३०. चैत्र, आषाढ़, भाद्रपद, आश्विन एवं कार्तिक की पूर्णिमाएं तथा उनसे अगले प्रतिपदा (एकम) के दिन (इन दिनों में देवता अधिक गमनागमन करते हैं वे अशुद्ध अर्धमागधी (देव भाषा) का उच्चारण करने से विघ्न कर सकते हैं)। ३१-३४. प्रातः, मध्याह्न, संध्या व अर्धरात्रि का समय।

प्रश्न 440–गुरु की टालने योग्य ३३ आशातनाएं कौन २ सी हैं ? तथा उनसे कैसे बचना चाहिए ?

उत्तर—१-९. गुरु के आगे पीछे व समान न बैठे, न चले, न खड़ा हो (=३×३)। १०. गुरु से पहले शुचि (कुल्ला) न करे। ११. गुरु से पहले इरियावहियं न करे। १२. सोए हुए शिष्य को गुरु बुलावे तो जागृत हो तो तुरंत उठ कर उत्तर दे। १३. गुरु के बदले खुद न बोले। १४. बीती बात गुरु को कह दे। १५. मांगी हुई वस्तु पहले गुरु को दिखावे। १६. पहले गुरु को दे। १७. गुरु

से पूछ कर दूसरों को दे। १८. अच्छी वस्तु गुरु को दे। १९. गुरु वचन को अनसुना न करे। २०. तू आदि न कहे। २१. आप आदि सम्मानजनक शब्दों से बुलावे। २२ आसन पर बैठा उत्तर न दे। २३. गुरु शिक्षा माने। २४ गुरु की आज्ञा से रोगी, तपस्वी, वृद्ध व नवदीक्षित की भक्ति करे। २५. गुरु की भूल-चूक किसी के आगे न कहे। २६. आज्ञा के विना प्रश्न का उत्तर स्वयं न दे। २७. गुरु की महिमा सुन के खुश हो। २८. यह मेरी परिषदा और यह गुरु की परिषदा-ऐसा भेद न करे। २९. गुरु के लम्बे व्याख्यान में अंतराय न करे। ३० गुरु की कही व्याख्या को स्वयं विस्तृत न करे। ३१. बिना आज्ञा गुरु के वस्त्रादि काम में न लेवे। ३२. गुरु के वस्त्रादि को पैर न लगाए। ३३. द्रव्य (आसन) तथा भाव (नम्रता) से गुरु से नीचे रहे। गुरु से ऐसा व्यवहार ही करना चाहिए जिससे कि गुरु की मान मर्यादा सुरक्षित रहे।

प्रश्न 441—आचार्य के कितने गुण होते हैं, तथा वे कौन २ से हैं?

उत्तर—आचार्य महाराज ३६ गणों से सम्पन्न होते हैं। ये गुण निम्नलिखित हैं।

१. निर्मल जाति (मातृ पक्ष), २. निर्मल कुल (पितृ पक्ष), ३. उत्तम वल (तथा शरीर), ४. उत्तम रूप (तथा आकार), ५. नम्र स्वभाव (विनय), ६. ज्ञान संपन्नता, ७. शुद्ध श्रद्धा, ८. निर्मल चारित्र, ९. निंदा से डरना (लोक लाज), १०. द्रव्य (उपाधि) से तथा भाव (कषाय) से लघु, ११. धैर्य (ओजस्विता), १२. तेजस्विता, १३. वाक्पटुता, १४. किसी के वहकावे में न आना, १५-१९. क्रोध मान, माया, लोभ व इन्द्रियों को जीतना, २०. पाप की निंदा करे, निंदकों की परवाह न करे, कम निद्रा लें, २१. क्षुधा तृषा को जीतना, २२. दीर्घायु की आशा व मृत्यु के भय का न होना, २३-२४. महाव्रत तथा क्षमा में प्रधानता, २५, उचित काल में क्रिया करना, २६. चारित्र के ७० गणों में प्रधानता, २७. अनाचीर्ण कार्यों में स्वपर निग्रह, २८. राजा आदि से अक्षोभ, २९. रोहिणी आदि विद्या, ३०.

व्याधि तथा व्यंतरोपद्रव के नाशक मन्त्रों का ज्ञान, ३१. चतुर्वेद ज्ञान, ३२. ब्रह्म-(आत्म)-ज्ञान, ३३. नयादि ज्ञान, ३४. अभिग्रह व प्रायश्चित्त का ज्ञान, ३५. सत्य वचन, ३६. मलीन वस्त्र तथा पाप के मैल से दूर रहना।

प्रश्न 442–उपाध्याय के २५ गुण कौन कौन से हैं ?

उत्तर—१-१२. बारह अंगों का पठन पाठन करना, १३-१४. चरण सित्तारी एवं करण सित्तारी से युक्त होना, १५-२२ आठ प्रकार से शासन की प्रभावना करना, २३-२५. मन वचन काया के योगों को वश में करना। उपाध्याय इन गुणों से युक्त होते हैं।

प्रश्न 443–साधु कितने गुणों से युक्त होते हैं ?

उत्तर—साधु २७ गुणों से युक्त होते हैं। वह निम्न प्रकार से हैं—

१-५. पंचमहाव्रत का निर्दोष पालन करने वाले, ६-१०. पांच इन्द्रियों के विषयों को रोकने वाले, ११-१४. चार कषायों को जीतने वाले, १५. पाप से हट कर मन में समाधि रखने वाले, १६. हित मित पथ्य सत्य बोलने वाले, १७. अचपल होकर धैर्य पूर्वक काया की प्रवृत्ति करने वाले, १८. धर्म ध्यान व शुक्ल ध्यान में रमने वाले, १९ यथोक्त क्रिया करने वाले, २०. मन वचन काया के योगों को सरल रखे व योगाभ्यास से आत्मसाधना करे, २१ वांचना, पृच्छना, परावर्त्तना, अनुप्रेक्षा तथा धर्म कथा रूप पंचविध स्वाध्याय में लगा रहे, २२. दर्शन मोहनीय का क्षयोपशम या क्षय करके शंका रहित होकर निर्मल सम्यक्त्व पाले, २३. चारित्र सम्पन्न हो, २४. क्षमावान्, २५. वैराग्यवान्, २६. परिषहों को निर्जरा का कारण मानकर उन्हें समभाव से सहे, २७. आयु की पूर्णता या मरणान्तिक कष्ट आने पर समाधि मरण करे।

प्रश्न 444–२२ परिषह कौन २ से हैं ?

उत्तर—१. क्षुधा, २. तृषा, ३. शीत, ४. ऊष्णता, ५ मच्छर दंश, ६. अचेल (जीर्ण वस्त्र, वस्त्राप्राप्ति, वस्त्र हरण), ७. अरति (वस्त्रादि न मिलने पर चिंता), ८. स्त्री, ९. नवकल्प विहार

(चौमासे का एक तथा शेष ८ मास के ८), १०. निषद्या (ऊंचे नीचे कंकर वाले स्थान में बैठना पड़े), ११. शय्या (आसाताकारी स्थान मिले), १२. आक्रोश (कोई गाली,कलंक दे या क्रोधादि करे), १३. वध (कोई साधु का तर्जन प्रहार या छेदन भेदन यावत् हत्या करदे), १४. याचना, ८५. अलाभ (इच्छित वस्तु की अप्राप्ति), १६. रोग परिषह, १७. तृणपरिषह, १८. मलीनता परिषह, १९. सत्कार परिषह (कोई सत्कार न करे), २०. प्रज्ञा परिषह (ज्ञान चर्चा से कभी निद्रा आदि का सुख, आराम खोना पड़े), २१. अज्ञान परिषह (कम ज्ञान का खेद न करे), २२. सम्यक्त्व (शंकादि होने पर संकल्प-विकल्प न करे), ये २२ परिषह साधु के जीवन में आते ही रहते हैं। इन परिषहों को निर्जरा का उपाय मानकर खुश होकर सहन करे तथा विचार करे कि नरक तिर्यंच में जीव इससे भी अधिक कष्ट भोगता है। इस कष्ट को सहन करने से तो सकाम निर्जरा होगी। यह सोचकर मन से दुःखी न हो।

(उत्तराध्ययन सूत्र-अ० २, तथा नवतत्त्व)

प्रश्न 445—साधु के लिए अनाचीर्ण बातें कौन सी हैं ?

उत्तर—साधुओं के लिए ५२ अनाचीर्ण बताए गए हैं जिनका त्याग करना चाहिए। अनाचीर्ण का अर्थ है—आचरण न करने योग्य बातें। ये निम्नलिखित हैं—

१. स्वयं के लिए बनाया हुआ आहार, वस्त्र स्थान आदि ग्रहण करना, २. स्वयं के लिए खरीदी हुई वस्तु लेना, ३. विना कारण के प्रतिदिन एक ही घर से आहार लेना, ४. उपाश्रयादि में सन्मुख लाई वस्तु लेना, ५. रात्रि को अन्न जल या सूंघने की तम्वाकू (नसवार) आदि लेना, ६. देश स्नान तथा सर्व स्नान, ७. सुगंधी पदार्थ शरीर को लगाना, ८. पुष्प या मोती आदि की माला पहनना, ९. वस्त्र आदि से हवा लेना, १०. रात्रि को घृत शर्करा आदि पास में रखना, ११. थाली आदि में भोजन करना, १२. राजा का भोजन या मांस मदिरादि लेना, १३. दान शाला या लंगर में से भोजनादि लेना, १४-१५. विना कारण

तैल मर्दन तथा दंतमंजन करना, १६. गृहस्थ को सुख शाता पूछना, १७. दर्पण आदि में प्रतिविम्व देखना, १८. जूआ खेलना या ज्योतिष वताना, १९. शतरंज खेलना, २०. छत्री धारण करना, २. बिना कारग वल वर्द्धक औषधि लेना, २२. जूता पहनना, २३. दीप आदि जलाना, २४. शय्यातर (जहां रात रहे उस स्थान के मालिक) का आहार पानी लेना, २५. पलंग कुर्सी आदि (वुने हुए) पर बैठना, २६. रोग तपस्या या वृद्धावस्था आदि के बिना गृहस्थ के घर बैठना, २७. शरीर का मल उतारना, २८. गृहस्थ की सेवा करना या उससे सेवा कराना, २९. किसी को सम्वन्धी वनाकर आहार लेना, ३०. अर्धतप्त पानी लेना, ३१. रोगादि से घवराकर सम्वन्धियों का स्मरण करना, ३२-४५. मूली, अदरक, गन्ना, सूरज कंद, मूल जड़ी, फल, वीज, संचल, सैंधव, सादा, रोमदेशीय तथा समुद्रीय नमक, पांशु क्षार, काला नमक लेना, ४६- वस्त्रादि को धूप देना, ४७. विना कारण वमन, ४८. वस्ति कर्म (एनीमा लेना), ४९. जुलाव लेना, ५०. आंखों पर अंजन लगाना, ५१. दांतों पर रंग लगाना, ५२. व्यायाम करना। (दशवैकालिक-अध्याय ३)

प्रश्न 446—प्रमाण किसे कहते हैं तथा इसके कितने भेद हैं ?

उत्तर—जिस से प्रमाज्ञान (यथावस्थित सत्यज्ञान) हो सके उसे प्रमाण कहते हैं। विभिन। दर्शनकारों ने प्रमाणों की संख्या भिन्न-भिन्न मानी है। न्याय दर्शन ४ प्रमाण मानता है—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान तथा आगम। सांख्य दर्शन में उपमान को छोड़ कर शेष ३ प्रमाण माने गए है। बौद्ध और वैशेषिकों ने पहले २ प्रमाण ही माने हैं। लेकिन मीमांसा दर्शन में अर्थापत्ति तथा अभाव सहित ६ प्रमाण माने गए हैं। चार्वाक मत मात्र एक ही प्रमाण प्रत्यक्ष मानता है। कुछ दर्शन प्रत्यभिज्ञान तथा योगी ज्ञान को भी प्रमाणभूत मानते हैं।

लेकिन जैन दर्शन दो ही प्रमाण मानता है-प्रत्यक्ष तथा परोक्ष। शेष सभी प्रमाणों का इन्हीं २ प्रमाणों में अन्तर्भाव हो जाता है। इनके

इनके भेद प्रभेदों का कोष्ठक नीचे दिया जाता है।

- प्रमाण
  - प्रत्यक्ष
    - सांव्यहारिक
      - इन्द्रिय निबंधन
      - अनिंद्रिय निबंधन
      - दोनों के ४-४ प्रकार (अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा)
    - पारमार्थिक
      - विकल
        - अवधि ज्ञान
        - मनःपर्यव ज्ञान
      - सकल (केवल ज्ञान)
  - परोक्ष
    - स्मरण
    - प्रत्यभिज्ञान
    - तर्क
    - अनुमान
    - आगम

(इस विषय को विस्तार पूर्वक जानने के इच्छुक प्रमाण नये तत्त्वालोक प्रमेय कमल मार्तण्ड षड्दर्शन समुच्चयादि ग्रन्थ देखें)।

प्रश्न 447–संवत्सरी महापर्व भाद्रपद शुक्ला पंचमी को ही क्यों मनाया जाता है?

उत्तर—इस वर्तमान पंचम आरे के वाद छठा आरा तथा तत्पश्चात् उत्सर्पिणी काल का प्रथम आरा आता है। इस प्रथम आरे के पश्चात् दूसरा आरा प्रारम्भ होता है उसी दिन श्रावण कृष्ण प्रतिपदा होती है। उसी दिन से वर्षा के सात सप्ताह प्रारम्भ होते हैं, उनमें निरंतर क्रमशः पुष्करवर्षा, क्षीर वर्षा, घृत वर्षा, अमृतवर्षा तथा रस वर्षा–ये ५ वर्षा होती है। इन में से तीसरे

तथा छठे सप्ताह में वर्षा नहीं होती। जब ये ७ सप्ताह पूर्ण हो जाते हैं तो अगले दिन ५०वां दिन होता है। अब लोग बिलों में से निकलकर नवोत्पन्न फलादि का भक्षण करते हुए खुश होते हैं। व्यवहार से इसी दिन वर्षारम्भ होता है। अतः यही भाद्रपद शुक्ला पंचमी का दिन संवत्सरी के रूप में मनाया जाता है। श्री कालिक सूरि जी महाराज के आदेश से आजकल संवत्सरी भादों शुदि ४ को मनाई जाती है।

प्रश्न 448—नरक में क्षेत्र वेदना कितने प्रकार की है ?

उत्तर—नरक में १० प्रकार की क्षेत्राश्रित वेदना होती है। जो कि निम्न प्रकार से है :—

१. अनंत क्षुधा—संसार के समस्त खाद्य पदार्थ एक ही नारकी को दे दिये जाएं तो भी उसकी क्षुधा शांत नहीं होती।

२. अनन्त तृषा—समस्त समुद्रों का पानी एक ही नारकी को दे दिया जाए तो भी उसकी प्यास शांत नहीं होती।

३. अनंतशीत—नरक में इतनी शीत है कि यदि लाख मन लोहे का गोला नरक में डाल दिया जाए तो वह शीत से टुकड़े टुकड़े हो जाए। यदि नारकी को उठाकर हिमालय पर्वत को वर्फ में सुला दिया जाए तो नारकी वहां बहुत आराम समझेगा। अर्थात् नरक की शीत के आगे हिमालय की शीत कुछ महत्व नहीं रखती।

४. अनन्त ताप—नरक में लाख मन लोहे का गोला रखे तो वह तुरन्त ही गल जाए, इतनी वहां गर्मी है। यदि नारकी को यहां लेकर जलती भट्ठी में सुला दिया जाए तो वह वहां अत्यन्त आराम मानेगा।

५. अनंत ज्वर—नरक में, सतत बुखार रहने से नारकी को सदैव जलन होती रहती है।

६. अनंत खुजली—नारकी हमेशा खुजलाते रहते हैं।

७. अनंत रोग—नारकी के शरीर में १६ बड़े रोग तथा ५६८९९५८५ छोटे रोग सदैव रहते हैं।

८. अनंत अनाश्रय—नारकी को कहीं से भी साहाय्य या सांत्वना नहीं मिलती।

९. अनंत शोक—नारकी सदा अनंत चिन्ता में डूबे रहते हैं।

१०. अनंत भय—नरक में इतना अन्धकार है कि क्रोड़ों सूर्य भी मिलकर प्रकाश नहीं कर सकते। इस अन्धकार के कारण वे सदा भयभीत रहते हैं।

प्रश्न 449—१२ चक्रवर्तियों के नाम, आयु, शरीरमान आदि कितना है तथा वे कब हुए?

उत्तर—निम्न कोष्ठक देखें—

संख्या	नाम	नगर	आयु	देहमान	गति	समय
१.	भरत	अयोध्या	८४लाखपूर्व	५००धनुष्य	मोक्ष	भ० ऋषभ देव समय
२.	सगर	,,	७२ ,,	४५० ,,	,,	भ० अजितनाथ ,,
३.	मघवा	श्रावस्ती	५ लाखवर्ष	४२ ,,	,,	भ० धर्मनाथ के बाद
४.	सनत्कुमार	हस्तिनापुर	३ ,,	४१ ,,	,,	,, ,, ,,
५.	शांतिनाथ	,,	१ ,,	४० ,,	,,	,, स्वयं
६.	कुंथुनाथ	,,	९५०००,,	३५ ,,	,,	,, स्वयं
७.	अरनाथ	,,	८४०००,,	३० ,,	,,	,, स्वयं
८.	संभूम	,,	६००००,,	२८ ,,	नरक	अरनाथ के बाद
९.	महा पद्म	वाराणसी	३००००,,	२० ,,	मोक्ष	मुनिसुव्रत के समय
१०.	हरिषेण	कंपिलपुर	१००००,,	१५ ,,	,,	नेमिनाथ ,,
११.	जयसेन	राजगृही	३००० ,,	१२ ,,	,,	नेमिनाथ के बाद
१२.	ब्रह्मदत्त	कंपिलपुर	७०० ,,	७ ,,	नरक	,, ,,

प्रश्न 450–बलदेव, वासुदेव तथा प्रतिवासुदेव का नाम, देहमान, आदि क्या थे ?

उत्तर—प्रत्येक अवसर्पिणी एवं उत्सर्पिणी काल में भी ९ बलदेव, ९ वासुदेव तथा ९ प्रतिवासुदेव होते हैं। बलदेव तथा वासुदेव की माताएं अलग अलग होती हैं जबकि इनका पिता एक ही होता है। यह शाश्वत नियम है कि प्रति वासुदेव तीन खण्ड भूमि को साधता है तथा वासुदेव प्रति वासुदेव को मार कर यह राज्य प्राप्त कर लेता है। वासुदेव तथा प्रति वासुदेव मर के नरक में जाते हैं जबकि बलदेव बासुदेव की मृत्यु के पश्चात् दीक्षा लेकर स्वर्ग या मोक्ष में जाता है। वासुदेव एवं बलदेव का भ्रातृ प्रेम अजोड़ होता है। इनके कुछ बोल निम्नलिखित कोष्ठक में दिए गए हैं :–

संख्या	बलदेव	वासुदेव	दोनों का देहमान	बलदेव व प्रतिवासुदेव आयु	वासुदेव आयु	प्रति वासुदेव	समय तीर्थंकर का
१.	अचल	त्रिपृष्ट	८० धनुष्य	८५ लाख वर्ष	८४ लाख वर्ष	सुग्रीव	श्रेयांसजी
२.	विजय	द्विपृष्ट	७० ,,	७५ ,,	७२ ,,	तारक	[illegible]
३.	भद्र	स्वयंभू	६० ,,	६५ ,,	६० ,,	मेरक	[illegible]नाथ
४.	सुप्रभ	पुरुषोत्तम	५० ,,	५५ ,,	३० ,,	[illegible]	अनंत नाथ
५.	सुदर्शन	पुरुषसिंह	४५ ,,	१७ ,,	१० ,,	[illegible]	धर्म नाथ
५.	आनंद	पु० पुंडरीक	२९ ,,	८५००० वर्ष	६५००० [illegible]	[illegible]	अरनाथ
६.	नंदन	दत्त	२६ ,,	६५०००,,	५६००० [illegible]	[illegible]	के बाद
७.	पद्मरथ	लक्ष्मण	१६ ,,	१५०००,,	१२००० [illegible]	[illegible]	[illegible]
९.	बलभद्र	कृष्ण	१० ,,	१२०० वर्ष	[illegible]	[illegible]	[illegible]

८ बलदेव मोक्ष में गए हैं तथा [illegible] में गए हैं। प्रथम वासुदेव [illegible] क्रमशः पांचवीं, चौथी, [illegible] नरक में गए हैं।

प्रश्न 451—तीर्थंकरों का आयुष्य, शरीरमान आदि कितना था ?

उत्तर—२४ तीर्थंकरों के कुछ बोल निम्नलिखित कोष्ठक में दिए गए हैं:—

तीर्थंकर	आयु	लांछन	देहमान	यक्षिणी	यक्ष
ऋषभ	८४ लाख पूर्व	वृषभ	५०० धनुष	चक्रेश्वरी	गोमुख
अजित	७२ ,,	हस्ती	४५० ,,	अजितबला	महायक्ष
संभव	६० ,,	घोड़ा	४०० ,,	दुरितारि	त्रिमुख
अभिनंदन	५० ,,	बंदर	३५० ,,	कालिका	यक्षनायक
सुमति	४० ,,	क्रौंच	३०० ,,	महाकाली	तुंबरू
पद्मप्रभ	३० ,,	पद्म	२५० ,,	श्यामा	कुसुम
सुपार्श्व	२० ,,	स्वस्तिक	२०० ,,	शांता	मातंग
चंद्रप्रभ	१० ,,	चन्द्र	१५० ,,	भृकुटि	विजय
सुविधि	१ ,,	मकर	१०० ,,	सुतारका	अजित
शीतल	८४ लाख वर्ष	श्रीवत्स	९० ,,	अशोका	ब्रह्मा
श्रेयांस	७२ ,,	गेंडा	८० ,,	मानवी	यक्षेश
वासुपूज्य	६० ,,	महिष	७० ,,	चंडा	कुमार
विमल	६० ,,	सूअर	६० ,,	विदिता	षण्मुख
अनंत	३० ,,	बाज	५० ,,	अंकुशा	पाताल
धर्म	१० ,,	वज्र	४५ ,,	कंदर्पी	किन्नर
शांति	१ ,,	मृग	४० ,,	निर्वाणी	गरूड़
कुंथु	९५००० वर्ष	हिरण	३५ ,,	बला	गन्धर्व
अर	८४००० ,,	नंदा वर्त्त	३० ,,	धारिणी	यक्षेंद्र
मल्लि	५५००० ,,	कुम्भ	२५ ,,	धरणप्रिया	कुबेर
मुनिसुव्रत	३०००० ,,	कच्छप	२० ,,	नरदत्ता	वरुण
नमि	१०००० ,,	नीलकमल	१५ ,,	गांधारी	भृकुटि
नेमि	१००० ,,	शंख	१० ,,	अंबिका	गोमेध
पार्श्व	१०० ,,	सर्प	९ हाथ	पद्मावती	पार्श्व
महावीर	७२ ,,	सिंह	७ हाथ	सिद्धायिका	मातंग

छद्मस्थ	गणधर	साधु	साध्वी	श्रविक	श्राविका
१०००वर्ष	८४	८४०००	३ लाख	३०५०००	५५४०००
१२ ,,	९५	१ लाख	३३००००	२९८०००	५४५०००
१४ ,,	१०२	२ लाख	३३६०००	२९३०००	६३६०००
१८ ,,	११६	३ लाख	६३००००	२८८०००	५२७०००
२० ,,	१००	३२००००	५३००००	२८००००	५१६०००
६ मास	१०७	३३००००	४२००००	२७६०००	५०५०००
९ ,,	९५	३ लाख	४३००००	२५७०००	४९३०००
३ ,,	९३	ढाई लाख	३८००००	२५००००	४९१०००
४ ,,	८८	२ लाख	१२००००	२२९०००	४७१०००
३ ,,	८१	१ लाख	१०६०००	२८००००	४५८०००
२ ,,	७६	८४०००	१०३०००	२८१०००	४४८०००
१ ,,	६६	७२०००	१ लाख	२१५०००	४३६०००
२ ,,	५७	६८०००	१००८००	२०८०००	४२४०००
३ वर्ष	५०	६६०००	६२०००	२०६०००	४१४०००
२ ,,	४३	६४०००	६२४००	२०४०००	४१३०००
१ ,,	३६	६२०००	६१६००	२९००००	३९३०००
१६ ,,	३५	६००००	६०६००	१८१०००	३८१०००
३ ,,	३३	५५०००	६००००	१८४०००	३७२०००
अहोरात्रि	२८	४००००	५५०००	१८००००	३७००००
११ मास	१८	३००००	५००००	१७२०००	३५००००
९ ,,	१७	२००००	४१०००	१७००००	३४८०००
५४ दिन	११	१८०००	४००००	१६९०००	३३६०००
८४ ,,	१०	१६०००	३८०००	१६४०००	३३२०००
१२ वर्ष	११	१४०००	३६०००	१५९०००	३१८०००
६½ मास					

पीछे दिए हुए कोष्ठक में तीर्थंकरों के १२ बोल दिए हैं। कुछ बोल निम्नलिखित हैं :—

१३. सम्यक्त्व प्राप्ति के पश्चात् भव-ऋषभ देव के १३, चन्द्रप्रभु प्रभु के ७, शांति नाथ के १२, मुनिसुव्रत व मल्लिनाथ के ९, पार्श्वनाथ के १०, महावीर के २७, शेष तीर्थंकरों के ३-३ भव हुए थे।

१४. सभी तीर्थंकर वैमानिक देवलोकों से आकर तीर्थंकर वने थे।

१५. वर्ण : पद्मप्रभु व वासुपूज्य का रक्तवर्ण, चन्द्रप्रभु व सुविधिनाथ का श्वेत, मुनिसुव्रत व नेमिनाथ का श्याम, मल्लिनाथ एवं पार्श्वनाथ का नीला, तथा शेष तीर्थंकरों का सुवर्ण वर्ण था।

१६. १ से ८ तीर्थंकरों की माताएं मोक्ष में गईं, ९ से १६ तीर्थंकरों के माता पिता सनत्कुमार देवलोक में तथा ९ से २४ तीर्थंकरों के माता पिता महेंद्र देवलोक में गए। भगवान ऋषभ देव के पिता भवनपति में तथा २ से ८ तीर्थंकरों के पिता ईशान देवलोक में गए।

१७. विवाह—श्री मल्लिनाथ एव नेमिनाथ भगवान् अविवाहित रहे जबकि अन्य तीर्थंकरों का युवावस्था में विवाह हुआ था।

१८ निर्वाण : भ० ऋषभ देव अष्टापद पर्वत पर, वासुपूज्य चम्पापुरी पर, नेमिनाथ गिरनार पर्वत पर, भ० महावीर पावापुरी में तथा अन्य तीर्थंकर सम्मेदशिखर पर्वत पर मोक्ष गए।

प्रश्न 452—चक्रवर्ती की कितनी ऋद्धि होती है ?

उत्तर—चक्रवर्ती के पास १४ रत्न होते हैं, जो ये हैं :—

१. चक्र रत्न, २. छत्र रत्न (जो १२ यो० लम्वा और ९ यो० चौड़ा वनकर सेना की रक्षा करता है), ३. दण्डरत्न (जो सड़कें बनाता है तथा वेताढ्य पर्वत की गुफाएं खोलता है), ४. खड्ग-रत्न (जो हज़ारों कोश से शत्रु का नाश करता है)। ये ४ रत्न आयुध शाला में उत्पन्न होते हैं। ५. मणिरत्न (जो १२ यो० तक प्रकाश करता है), ६. काकिणी रत्न (जो वैताढ्य पर्वत की

गुफाओं को प्रकाशित करता है), ७. चर्मरत्न (जो १२ यो० लम्बी और ९ यो० चौड़ी नाव वनकर सेना को समुद्र या नदी से पार ले जाता है) ये तीन रत्न लक्ष्मी भण्डार में उत्पन्न होते हैं, ८. (आगे के ७ रत्न पंचेंद्रिय प्राणी होते हैं) सेनापति रत्न (जो २ से ५ इन चार खण्डों पर विजय प्राप्त करता है तथा वैताढ्य गुफा के द्वार खोलता है), ९, गाथापति (जो चर्म रत्न को पृथ्वीवत् वनाकर उस पर धान्य वोता है। यह धान्य दूसरे प्रहर में पक जाता है तथा तीसरे प्रहर में सेना को खिलाया जाता है), १०. वढ़ई रत्न (जो एक मुहूर्त्त में १२ यो० लम्बा तथा ९ यो० चौड़ा नगर वनाता है), ११. पुरोहित रत्न (जो ज्योतिष का कार्य भी करता है), १२. स्त्रीरत्न (जो विश्व में सर्वाधिक रूपवती होती है तथा सदैव ही १६ वर्ष की कन्या के समान सुकुमाल रहती है यह पुत्र प्रसव नहीं करती तथा मर के अवश्य ही नरक में जाती है), १३. अश्वरत्न तथा १४. गज रत्न।

इसके अतिरिक्त चक्रवर्ती ९ निधियों का भी स्वामी होता है। इन रत्नों व निधियों की रक्षा व कार्य २००० देवता करते हैं। चक्री की अन्य ऋद्धिः—२००० आत्म रक्षक देव, ६ खण्ड के ३२००० देश, ३२००० मुकुट वंध राजा सेवक, ६४००० रानियां ८४ लाख हाथी, ८४ लाख घोड़े, ८४ लाख रथ, ९६ करोड़ पैदल सेना, ३२००० नर्तक, १६००० राजधानियां, १६००० द्वीप, ९६ क्रोड़ गांव, ४९००० वगीचे, १४००० मंत्री, १६००० मलेच्छ राजा सेवक, १६००० रत्न भंडार, २०००० स्वर्ण रजत भंडार, ३ क्रोड़ गोकुल (एक गोकुल में १०००० गाय), ३६० रसोइए, २६ लाख मालिश वाले, ९९ क्रोड़ दास दासी, ९९ लाख अंगरक्षक, ३ क्रोड़ शस्त्रागार, ३ क्रोड़ वैद्य, ८००० पंडित, ६४००० महल (४२ मंजिल के)। प्रतिदिन ४ क्रोड़ मन अन्न पकता जिसमें १० लाख मन नमक तथा ७२ मन हींग लगती है।

यदि चक्री यह ऋद्धि छोड़ कर दीक्षा लेता है तो स्वर्ग या मोक्ष में जाता है अन्यथा नर्क में जाता है।

प्रश्न 453—जीव ज्ञानावरणीय कर्म किन कारणों से बांधता है ?

उत्तर—ज्ञानवरणीय कर्म का बंधन ७ कारणों से होता है :

ये कारण निम्नलिखित हैं :

१. शास्त्रों को बेच कर आजीविका चलाना। २. कर्म सहित तथा दोषयुक्त अन्यदर्शन-सम्मत परमात्मा (कुदेव) की प्रशंसा करना। ३. सद्ज्ञान में संशय करना। ४. गीत गान या कुशास्त्र की प्रशंसा करना। ५. जैन शास्त्र के मूलपाठ को उत्थापित करना या कम तथा अधिक करना। ६. अन्यों के दूषण प्रकट करना तथा ७. मिथ्या शास्त्र का उपदेश करना। इन कारणों का त्याग करना ही हितकर है। (आचार रत्नाकर)

प्रश्न 454—कर्म सम्राट् मोहनीय कर्म का बन्ध किस प्रकार होता है ?

उत्तर—जीव निम्नलिखित ६ कारणों से मोहनीय कर्म का बंधन करता है :

१. अरिहंत की निंदा करना। २. तीर्थंकर प्रणीत आगम शास्त्र की निंदा करना। ३. जैन धर्म की निंदा करना। ४. सद्गुरु की निंदा करना। ५. उत्सूत्र प्ररूपणा करना[1]। ६. तथा कुपंथ चलाना (जिनाज्ञा व जिनागम का विरोधी बन कर ईर्ष्या द्वेष से नया संप्रदाय खड़ा करना)। इन कारणों से मानव को दर्शनज्ञान चारित्र की प्राप्ति नहीं हो पाती अतः स्व श्रेयः के इच्छुक प्राणी को इन कारणों का त्याग करना चाहिए। (आचार रत्नाकर)

प्रश्न 455—तीर्थंकर के ३४ अतिशय कौन कौन से हैं ?

उत्तर—तीर्थंकर के ३४ अतिशयों में से ४ अतिशय जन्म लेते ही साथ

1. जैन शास्त्र के किसी भी शब्द का विपरीत अर्थ करना या शास्त्र की किसी बात को अज्ञानता वश गलत कह देना तथा अपने मन्तव्य पर अड़े रहना उत्सूत्र प्ररूपणा कहलाती है। आगमों में उत्सूत्र प्ररूपणा करने वाले को 'निह्नव' की संज्ञा दी गई है। ये निह्नव सात हुए हैं।
(इनका विस्तृत वर्णन उपदेश प्रासाद ग्रंथ में से देखना चाहिए)

होते हैं, ११ अतिशय ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय से उत्पन्न होते हैं तथा शेष १९ अतिशय देवता लोग भक्ति से करते हैं। इन का वर्णन क्रमशः इस प्रकार से है :—

१. तीर्थंकरों का रूप तथा गंध अद्भुत होता है तथा उन के शरीर में रोग, पसीना या मैल नहीं होती। २. उनका श्वास कमल के समान सुगंधि वाला होता है। ३. उनका रक्त गाय के दूध के समान सफेद तथा मांस भी स्वच्छ होता है। ४. उनका आहार तथा शौच मानव के लिए अदृश्य होता है। ५. समवसरण की मात्र एक योजन भूमि में कोटा कोटि मनुष्य देवादि आराम से बैठ सकते हैं। ६. उनका अर्ध-मागधी भाषा का उपदेश प्रत्येक मानव या तिर्यंच की अपनी भाषा में बदल जाता है तथा यह वाणी एक योजन तक सुनाई देती है। ७. उनके सिर के पीछे सूर्य से १२ गुणा तेजस्वी भामंडल होता है, ८—१५ उनके चारों ओर १२५ यो० तक ज्वरादि रोग, विरोध, ईतियां, मारी, अतिवृष्टि, अवृष्टि, दुर्भिक्ष तथा स्वपर राष्ट्र का भय समाप्त हो जाते हैं। १६. आकाश में धर्मचक्र चलता है। १७. आकाश में चंवर चलते हैं। १८. आकाश में पादपीठ सहित सिंहासन होता है। १९—२० आकाश में तीन छत्र व रत्नमय ध्वज होता है। २१. पैर रखने के लिए स्वर्ण के ९ कमल होते हैं। २२.समवसरण में रत्न,सुवर्ण एवं चांदी के ३ गढ़ होते हैं, २३. समोसरण में भगवान् के ४ मुख होते हैं। २४ प्रभु के पीछे अशोक वृक्ष होता है जो प्रभु के देह से १२ गुणा अधिक ऊंचा होता हैं। २५. मार्ग में कांटों का मुंह नीचे हो जाता है। २६. मार्ग में पेड़ झुक जाते हैं। २७. दुंदुभि का उच्च स्वर होता है। २८. अनुकूल वायु वहती है। २९. पक्षी प्रदक्षिणा क्रम से उड़ान भरते हैं। ३०. सुगंधित जल की वृष्टि होती है। ३१. घुटनों पर्यंत पंचवर्ण के पुष्पों की वृष्टि होती है। ३२. उनके दाढ़ी मूंछ केश नख नहीं बढ़ते। ३३. उनके समीप में कम से कम एक कोटी देवता रहते हैं। ३४. ऋतु सर्वदा अनुकूल रहते हैं।

(अभिधान चितामणि १/५७-६४)

प्रश्न 456–तीर्थंकर (या केवल ज्ञानी) कितने दोषों से मुक्त होते हैं ?

उत्तर—केवल ज्ञानी १८ दोषों से मुक्त होते हैं, यथा :

१. दानांतराय । २. लाभांतराय । ३. वीर्यांतराय । ४. भोगांतराय। ५. उपभोगांतराय । ६. हास्य । ७. प्रीति । ८. अप्रीति । ९. भय । १०. शोक । ११. घृणा । १२. काम । १३. मिथ्यात्व । १४. अज्ञान । १५. निद्रा । १६. अविरति । १७. राग । १८. द्वेष ।

(अभिधान १/७२-७३)

प्रश्न 457–'जिन' शब्द की व्युत्पत्ति क्या है ? तथा जिन एवं जैन कौन हो सकता है ?

उत्तर—'जिन' शब्द संस्कृत भाषा की 'जि' धातु (Verb) से बना है। 'जि' धातु का अर्थ है 'जीतना' । अतः 'जिन' का अर्थ है—'जीतने वाला' । 'जितः विजितः आभ्यंतर शत्रुरूपाष्टकर्मसमुदयोऽनेनेति जिनः' अर्थात्—जो व्यक्ति अपने राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि आभ्यंतर (अन्दर के) शत्रुओं को जीतता है, वह जिन है (जब राग द्वेषादि समाप्त हो जाते हैं तो व्यक्ति पूर्ण शाँत हो जाता है, अतएव जिन मन्दिर में विराजमान प्रभु की प्रतिमा पूर्ण शांत अवस्था में होती है) जिन भगवान् को तीर्थंकर या अरिहंत भी कहते हैं।

जो मानव जिन भगवान् को अपना आराध्य, ईश्वर या परमात्मा मान कर उनकी भक्ति उपासना करता है तथा उनके द्वारा बताए हुए मार्ग पर चलता है, उसे जैन कहते हैं।

प्रश्न 458–ॐ क्या है ? ॐ में पंचपरमेष्टी का समावेश कैसे होता है।

उत्तर—'ॐ' यह एक बीजमन्त्र है। (बीजमन्त्र अर्थात् अनेक मन्त्रों का मूल आधार) ॐ को सभी धर्मों में स्थान दिया गया है। अरिहंत सिद्ध आदि पांच पदों को परमेष्ठी कहा गया है। 'परमे श्रेष्ठपदे स्थितः योऽसौ परमेष्ठी' अर्थात् जो संसार में श्रेष्ठ पद पर

विराजमान हो वह परमेष्ठी है। जैन शास्त्रों के अनुसार ॐ में पंच परमेष्ठी का समावेश इस प्रकार होता है :—

अरिहंत का प्रथम अक्षर —अ
अशरीरी (सिद्ध भगवान्) का प्रथम अक्षर—अ
आचार्य का प्रथम अक्षर —आ
उपाध्याय का प्रथम अक्षर —उ
मुनि (साधु) का प्रथम अक्षर —म

=अ+अ = आ
आ+आ=आ
आ+उ=ओ
ओ+म्=ओम्
=ॐ

इससे सिद्ध होता है कि ॐ में पंच परमेष्ठी का समावेश हो जाता है। वैदिक धर्म में ॐ में ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश का समावेश किया गया है।

प्रश्न 459—'अरिहंत' शब्द की परिभाषा क्या है? अरिहंत के १२ गुण कौन कौन से हैं?

उत्तर—अरिहंत शब्द दो शब्दों के मिश्रण से वना है। अरि+हंत। अरि का अर्थ है शत्रु। हंत का अर्थ है हनन करने वाला। अर्थात् जो अपने अष्ट कर्म रूपी शत्रुओं को अथवा क्रोध, काम, मद, लोभ आदि शत्रुओं को समाप्त कर देता है, उसे अरिहंत कहते हैं। अरिहंत के १२ गुण हैं, यथा—

१-८ आठ प्रातिहार्य रूप ८ गुण (देखें प्रश्न नं. ९२)

९-अपायापगमातिशय—भगवान् की विचरण स्थली से २५ योजन पर्यंत दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि अवृष्टि, मारी आदि सभी उपद्रव नष्ट हो जाते हैं।

१०-ज्ञानातिशय—भगवान् स्वज्ञान से त्रिकालवर्ती तथा त्रिलोकवर्ती समस्त पदार्थों को हस्तामलकवत् प्रतिक्षण जानते और देखते हैं।

११-पूजातिशय—भगवान् इन्द्र, चक्रवर्ती, सम्राट्, मन्त्री तथा समस्त विश्व एवं प्रकृति के द्वारा पूज्य है।

१२-वचनातिशय—भगवान् की वाणी देव, मानव तथा तिर्यंच सभी प्राणियों को अपनी अपनी भाषा में समझ आती है।

प्रश्न 460—क्या जैन धर्म सब से प्राचीन धर्म है ?

उत्तर—जैन धर्म के अनुसार प्रत्येक अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी काल में २४ तीर्थंकर होते हैं, जो कि उपदेश देकर अन्त में मोक्ष में चले जाते हैं। आज से साढ़े १८ हज़ार वर्ष पश्चात् पंचम आरे के अन्त में जब प्रलय आएगी तथा सभी धर्म समाप्त हो जाएंगे, तत्पश्चात् उत्सर्पिणी के तीसरे आरे में पुनः जैन धर्म का प्रकाश करने के लिए प्रथम तीर्थंकर श्री पद्मनाभ जन्म लेंगे।

आधुनिक इतिहासकार अन्तिम २ तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ एवं श्री महावीर स्वामी को ऐतिहासिक महापुरुष मानते हैं। लेकिन इससे पूर्ववर्ती काल को वे प्रागैतिहासिक काल कह कर चुप्पी साध लेते हैं। अन्वेषण के अभाव में तत्पूर्ववर्ती महापुरुषों के अस्तित्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। कुछ ऐसे प्रमाण प्रस्तुत हैं, जिन से यह निश्चित प्रमाणित होता है कि जैन धर्म सब से प्राचीन धर्म है।

(१) संसार के सबसे प्राचीन माने जाने वाले ग्रन्थ वेदों में भी भ० ऋषभदेव व अरिष्टनेमि को नमस्कार किया गया है। व्यास रचित महाभारतकालीन ग्रन्थ भागवत पुराण में भी ऋषभदेव का जीवन वृत्तान्त मिलता है जिससे यह सिद्ध होता है कि जैन धर्म के २२ तीर्थंकर वेदों से तथा वैदिक धर्म से भी बहुत पहले हुए हैं तथा जैन धर्म वेदों के निर्माण काल से भी अत्यन्त प्राचीन तथा सनातन धर्म है। श्रीरामचन्द्र जी २०वें तीर्थंकर मुनिसुव्रत स्वामी के शासनकाल में हुए तथा श्री कृष्ण २२वें भ० नेमि नाथ जी के शासन काल में हुए।

(२) हस्तिनापुर श्री नेमिनाथ व कृष्ण के समय में अत्यन्त समृद्धिशाली नगर था। यह नगर अनेक राजाओं व चक्रवर्तियों की राजधानी भी रहा है। श्री कृष्ण के बाद हस्तिनापुर के विकास

का इतिहास नहीं मिलता। आज भी हस्तिनापुर की खुदाई में जैन प्रतिमाएं प्राप्त हो रही हैं। जो कि जैन धर्म के श्री कृष्ण से भी पूर्ववर्तित्व को सिद्ध करती हैं। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई में भी जैन धर्म सम्बन्धी मूर्तियां व प्राचीन अवशेष मिले हैं। जिससे सिद्ध होता है कि जैन सभ्यता भारत की प्राचीनतम सभ्यता है।

(३) विश्व में जैनधर्म के सिद्धांत अत्यंत गंभीर हैं तथा इसके नियम अति कठोर हैं। युग के अनुसार पैदा हुए धर्मों तथा सरल नियमों वाले सम्प्रदायों का प्रचार शीघ्र तथा प्रबल होता है लेकिन वे धर्म सम्प्रदाय सिद्धान्तों की नींव कच्ची होने के कारण शीघ्र ही समाप्त हो जाते हैं। अपने सिद्धान्तों व नियमों के कारण आज भी जैन धर्म समस्त भारतवर्ष में फैला हुआ है। भारतीय दर्शनों में जैन दर्शन की जड़ें बहुत गहरी हैं। यद्यपि जैन धर्म का अनुयायी वर्ग आज कम है क्योंकि इस के नियमों का पालन करना मानव के लिए अति कठिन है। तथापि इसके साहित्य कला, शिल्प तथा कथाओं से हमें यह मानने को बाध्य होना पड़ता है कि हजारों वर्ष पूर्व जैन धर्म का प्रचार प्रसार अत्यधिक था। सम्राट् संप्रति जैसे जैन राजाओं ने विदेशों में भी जैन धर्म के प्रचार हेतु प्रचारक भेजे थे। अद्यावधि प्रचलित जैन धर्म के कठोर नियम भी जैन धर्म की प्राचीनता के प्रमाण है।

(४) जैन धर्म का साहित्य अत्यन्त विस्तृत है। आत्मा परमात्मा या द्रव्य पदार्थों का जो दार्शनिक विवेचन जैन दर्शन में व्यवस्थित रूप में उपलब्ध होता है, वह अन्य दर्शनों में नहीं। इस बात को जैन धर्म के अध्येता ही जान सकते हैं। विशाल साहित्य भी जैन धर्म की प्राचीनता का ही द्योतक है। यदि भारतीय साहित्य में से जैन साहित्य निकाल दिया जाए तो शेष शून्य ही बचता है।

(५) जिन २ विषयों पर अन्य धर्मों में संक्षिप्त या विस्तृत वर्णन मिलता है,वे सभी विषय जैन ग्रथों में सविवेचन सांगोपांग उपलब्ध होते हैं। जबकि जैन धर्म की ऐसी अनेक दार्शनिक चर्चाएं हैं जो अन्य दर्शनों में नहीं मिलती हैं, मिलती भी हैं तो अति संक्षिप्त व

में। जैसे—६ द्रव्य, ९ तत्त्व, ८ कर्म, १४ गुण-स्थान, सागरोपम, पल्योपम, रज्जू,लोक, स्वर्ग नरक का स्थान,अहिंसा, अनेकांतवाद, जीवों के भेद, साधु एवं गृहस्थ धर्म की व्यस्थित परम्परा, भूगोल आदि। यदि जैन धर्म अन्य दर्शनों में से निकला होता तो ये सभी विवेचन तथा मूल पदार्थ इसमें कहां से आते ? अन्य दर्शनों ने इन्हीं तत्त्वों को तोड़ मरोड़ कर अपने ग्रन्थों में प्रस्तुत कर दिया है तभी तो अन्य दर्शनों की व्याख्याएं तर्कसंगत नहीं हैं। जैसे परमात्मा का व्यवस्थित स्वरूप अन्य दर्शनों में न होने के कारण उनके भिन्न २ पुराणों में भिन्न २ देवताओं को (ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश, दुर्गा, काली आदि को) परम शक्ति माना गया है। कई पुराणों में तो इन्हें परस्पर नमस्कार पूजन करते चित्रित किया गया है। इनमें सर्वोच्च परमात्मा कौन है—इस बात का उत्तर भी भिन्न २ विद्वान् पृथक पृथक ही देते हैं। तब असली परमात्मा कौन है ? इस प्रश्न का समाधान खोजने पर भी नहीं मिल पाता है। जबकि जैन दर्शन तो परमात्मा के सम्बन्ध में अत्यन्त स्पष्ट स्वरूप विवेचन प्रस्तुत करता है। यही स्थिति अन्य विषयों के सम्बन्ध में भी है।

(६) इसके अतिरिक्त अनेक इतिहासकारों व दार्शनिकों ने भी जैन धर्म को सबसे प्राचीन बताते हुए इसकी महत्ता का गुणगान किया है। कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं :—

१—'जैन धर्म तब से प्रारम्भ हुआ है, जब से संसार में सृष्टि का आरम्भ हुआ है। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वह वेदांत आदि दर्शनों से पूर्व का है।' (महामहोपाध्याय डा० सतीश चन्द्र विद्याभूषण, प्रिंसीपल संस्कृत कालेज, कलकत्ता)

२—'जैन धर्म सर्वथा स्वतन्त्र धर्म है। मेरा विश्वास है कि वह किसी का अनुकरण नहीं है और इसीलिए प्राचीन भारतवर्ष के तत्त्वज्ञान और धर्म पद्धति के अध्ययन के लिए वह बड़े महत्त्व की चीज़ है।' (इतिहासज्ञ, जर्मन विद्वान् डा० हर्मन जेकोबी)

३—'इसमें कोई सन्देह नहीं कि जैन धर्म वर्धमान तथा पार्श्वनाथ

से भी पहले फैला हुआ था। भागवत पुराण में ऋषभ को जैन धर्म के संस्थापक कहा गया है। यजुर्वेद में भी ऋषभ, अजित तथा अरिष्टनेमि तीर्थंकरों का नामोल्लेख है।'

(भारत के राष्ट्रपति, प्रख्यात दार्शनिक श्री राधाकृष्णन्)

४—'निःसन्देह जैन धर्म ही पृथ्वी का एक सच्चा धर्म है और यह ही मनुष्य मात्र का आदिधर्म है।'

(मि० आवे जे०ए० डवाई मिशनरी)

५—जैनी अवैदिक भारतीय आर्यों का एक विभाग हैं।'

(टी०पी० कुप्पु स्वामी, एम०ए०)

६—'ऋषभदेव का नाती मरीची प्रकृतिवादी था। वेद उसके तत्वानुसार होने के कारण ही ऋग्वेद आदि ग्रन्थों की ख्याति उसी के ज्ञान द्वारा हुई है।फलतः मरीची ऋषि के स्तोत्र तथा जैन तीर्थंकरों का उल्लेख वेद पुराण आदि में है। अतः कोई कारण नहीं कि हम वैदिक काल में जैन धर्म का अस्तित्व न मानें।'

(श्री स्वामी विरूपाक्ष, धर्मभूषण, पंडित वेदतीर्थ, विद्यानिधि, एम०ए०)

७—'जब से ब्राह्मणों ने 'मा हिंस्यात सर्वभूतानि' इस वेदवाक्य पर हर ताल फेर दी अतः जैनियों ने हिंसामय यज्ञों का उच्छेद करना प्रारम्भ किया, तभी से ब्राह्मणों के चित्त में जैनों के प्रति द्वेष बढ़ने लगा। फिर भी भागवतादि में ऋषभदेव के विषय में गौरव-युक्त उल्लेख मिल रहा है।' (श्री स्वामी विरूपाक्ष)

८—'भारत में पहले ४० करोड़ जैन थे। बहुत लोग दूसरे धर्मों में जाने से इसकी संख्या घट गई। यह धर्म बहुत प्राचीन है।'

(प० राजेन्द्र नाथ)

९—'दो अढ़ाई हज़ार वर्ष पहले दुनिया का अधिक भाग जैन धर्म का उपासक था।' (राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द)

१०—सभी लोग जानते हैं कि जैन धर्म के आदि तीर्थंकर श्री ऋभ देव स्वामी हैं। जिनका काल इतिहास परिधि से बाहर

परे है। ...ऐतिहासिक गवेषण से मालूम हुआ है कि जैन धर्म की उत्पत्ति का कोई काल निश्चित नहीं है। प्राचीन से प्राचीन ग्रन्थों में जैन धर्म का हवाला मिलता है।

(श्री कन्नोमल जी एम०ए० साहित्यरत्न, सेशन जज, धौलपुर)

११—'पार्श्वनाथ ईसा से १२०० वर्ष पूर्व हुए हैं तो पाठक विचार करें कि ऋषभ देव का कितना प्राचीन काल होगा। कोई समय ऐसा नहीं है जिसमें इस (जैन धर्म) का अस्तित्व न हो।'

(पूर्वोक्त)

१२—'जब हिन्दु लोगों ने देखा कि जैन धर्म के उपदेश का असर जैन मत को प्रवल कर रहा है तब सब हिन्दु लोगों ने विचार करके जैसे जैन लोगों में २४ तीर्थंकर माने गए हैं वैसे उन्होंने २४ अवतार अपने यहां बनाए।'

(आर्य धर्म मासिक में शाम राव कृष्ण)

१३—'जैनियों के बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ ऐतिहासिक महापुरुप माने गए हैं।' (डा० फूहरर)

१४—नेमिनाथ कृष्ण के भाई थे। जबकि जैनियों के बाईसवें तीर्थंकर श्री कृष्ण के समकालीन थे तो शेष २१ तीर्थंकर श्री कृष्ण से कितने वर्ष पहले होने चाहिएं। यह पाठक स्वयं अनुमान लगा सकते हैं।' (भग्वद्गीता के परिशिष्ट में श्रीयुत वरवे)

१५—'इतिहासकार तो यह भी मानते हैं कि गौतम बुद्ध को महावीर स्वामी से ही ज्ञान प्राप्त हुआ था। जो कुछ भी हो, यह तो निर्विवाद स्वीकार ही है कि गौतम बुद्ध ने महावीर स्वामी के बाद शरीर त्याग किया। यह भी निर्विवाद सिद्ध है कि बौद्ध धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध के पहले जैनियों के २३ तीर्थंकर और हो चुके थे।' (इम्पोरियल ग्रेजोटियर आफ इण्डिया। पृ. ५४)

१६—'जैन धर्म की स्थापना, प्रारम्भ, जन्म कब से हुआ, यह जानना लगभग असंभवित है। हिन्दुस्तान के धर्मों में जैन धर्म सब से प्राचीन है।' (जी०जे०आर० फरलांग)

प्रश्न 461—काल चक्र किसे कहते हैं? इसके सभी आरों का क्या स्वरूप है?

उत्तर—समय के परिवर्तन चक्र को कालचक्र कहते हैं। इसके २ भाग हैं-उत्सर्पिणी काल एवं अवसर्पिणी काल। पूर्ण काल चक्र २० कोटा कोटि सागरोपम समय का होता है। एक काल चक्र के समाप्त होने पर द्वितीय काल चक्र प्रारम्भ होता है। इस प्रकार अनन्त काल चक्र बीत चुके हैं तथा अनन्त काल चक्र भविष्य में भी होंगे। इस क्रम का कभी भी अन्त नहीं होगा। वर्तमान में अवसर्पिणी काल का पंचम आरा चल रहा है, इसके लगभग २५०० वर्ष बीत चुके हैं तथा १८५०० वर्ष शेष हैं। प्रत्येक काल के ६-६ आरों का स्वरूप आगे पृष्ठ १५६ के कोष्ठक में देखें :—

समझने की रीति—अवसर्पिणी के प्रथम आरे का नाम सुषम सुषम है। जिसका अर्थ है—जिसमें सुख ही सुख हो। दूसरे का नाम है—सुखम अर्थात् जिसमें सुख हो। तीसरे का नाम है सुषम दु.खम, अर्थात् जिसमें सुख अधिक, दुख कम हो। चौथे का नाम है–दुःषम सुषम अर्थात् जिसमें दुःख अधिक, सुख कम हो। पांचवां है दुःखम अर्थात् जिसमें दुःख ही हो। छठे का नाम है दुःखम दुःखम अर्थात् जिसमें दुःख ही दुःख हो। शेष कोष्ठक भी इसी प्रकार से ज्ञातव्य हैं।

अवसर्पिणी में जो स्वरूप पहले आरे का है, उत्सर्पिणी में वही स्वरूप छटे आरे का है। जब अवसर्पिणी के आरे बीत जाते हैं तब उत्सर्पिणी का पहला आरा प्रारम्भ होता है। (प्रश्न ७३ से ७५ भी देखें)।

प्रश्न 462—लोक किसे कहते हैं? इसका स्वरूप तथा आकार क्या है?

उत्तर—'लोक्यंते. दृश्यंते धर्माधर्मादिपदार्थाः यस्मिन् सःलोकः' अर्थात् जिसमें धर्मास्तिकाय आदि ६ पदार्थ विद्यमान हों अथवा देखे जा

(आगे पृ. १५७ पर)

(प्रश्न ४६१ का शेष)

अवसर्पिणी का आरा नं०	उत्सर्पिणी का आरा नं०	नाम	समय	शरीर मान	आयु	पसलियां	संतति पालन	आहार
१	६	सुषम-सुषम	४ कोटा कोटि सागरोपम	३ कोस	३ पल्योपम	२५६	४९ दिन	३ दिन बाद तुअर प्रमाण
२	५	सुषम	३ कोटा कोटि सागरोपम	२ कोस	२ पल्योपम	१२८	६४ दिन	२ दिन बाद बेर प्रमाण
३	४	सुषम दु:षम	२ कोटा कोटि सागरोपम	१ कोस	१ पल्योपम	६४	७९ दिन	१ दिन बाद आंवला प्रमाण
४	३	दु:षम सुषम	१ कोटा कोटि सागरोपम (४२०००वर्षकम)	५०० धनुष[1]	पूर्व क्रोड़ वर्ष	३२	अनियत	अनियत
५	२	दु:षम	२१००० वर्ष	७ हाथ[2]	१२० वर्ष	१६	"	"
६	१	दु:षम दु:षम	२१००० वर्ष	२ हाथ	२० वर्ष	अनियत	"	"

सकते हों, उसे लोक कहते हैं। लोक अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड[1]।

लोक १४ रज्जु प्रमाण ऊंचा है। इसे ३ भागों में विभाजित किया गया है। ऊर्ध्व लोक, मध्यलोक तथा अधोलोक। इन्हें क्रमशः स्वर्गलोक, तिर्यक् (तिरछा) लोक तथा पाताल लोक भी कहते हैं ऊर्ध्व लोक में १२ देवलोक, ९ ग्रैवेयक, ५ अनुत्तर विमान, ज्योतिषी देव तथा मोक्ष हैं। मध्यलोक बिल्कुल मध्य में है। इसमें मनुष्य तथा तिर्यंच (पशु-पक्षी) निवास करते हैं। अधोलोक में नरक के जीव तथा भवनपति देव वास करते हैं।

लोक का आकार खुले पैरों से खड़े तथा हाथों को कमर पर रखे एक आदमी के सदृश है। मध्य लोक में गोलाकार असंख्य द्वीप तथा समुद्र है। वे सभी पूर्व पूर्व से दुगने दुगने माप वाले हैं। प्रथम जम्बूद्वीप है, जिसके दक्षिण क्षेत्र (भरत) के दक्षिणार्ध में हमारा भारत वर्ष है। जम्बू द्वीप थाली के आकार का हैं, इसके चारों ओर वलयाकार (चूढ़ी के आकार का) लवण समुद्र है। फिर दूसरा धातकी खण्ड द्वीप है फिर कालोदधि समुद्र है, तत्पश्चात् पुष्करवर द्वीप है जिसे मानुषोत्तर पर्वत दो भागों में विभक्त कर देता है। अढ़ाई द्वीप में ही मनुष्य रहते हैं। आठवां द्वीप नंदीश्वर है जिसमें ५२ जिनमन्दिर हैं जहां पर देवता तीर्थंकरों के कल्याणकादि अवसरों पर अष्टाह्निका महोत्सव करते हैं। अन्तिम समुद्र स्वयंभूरमण है जो लम्बाई चौड़ाई में एक रज्जू प्रमाण है।

अधोलोक में मुख्यत. ७ नरक भूमियां हैं जहां नारकी अनेकविध दुःख भोगते हैं। ये नरक भूमियां ७ रज्जू प्रमाण ऊंची हैं। ऊर्ध्व

1 आधुनिक विज्ञान ने जिस ब्रह्माण्ड की रूप रेखा तैयार की है वह तो इस लोक का ही एक भाग है। विज्ञान के अनुसार हम कश्यपी नीहारिका के एक सौरमंडल में पृथ्वी ग्रह पर रहते हैं। कश्यपी नीहारिका में एक लाख सौर मंडल हैं। ब्रह्मांड में असंख्य नीहारिकाएं हैं। ये सब नीहारिकाएं तथा तदन्तर्वर्ती आकाश गंगाएं (*Milky Ways*) इसी लोक के अन्तर्गत समझनी चाहिएं।

लोक भी ७ रज्जू प्रमाण ऊंचा है। मध्य लोक से लाखों योजन ऊपर जाने पर प्रथम सौधर्म देवलोक आता है। लोक के अंत में (ऊपर) सिद्धशिला पर मोक्ष के जीव विराजमान हैं। अढ़ाई द्वीप से ही मनुष्य का मोक्ष हो सकता है अतः सिद्धशिला भी अढाई द्वीप की ही तरह ४५ लाख योजन[1] लम्बी चौड़ी है। लोक के आगे चारों तरफ अलोक ही अलोक है, जिसका कहीं भी अंत नहीं है। वर्तमान विश्व प्रथम द्वीप जम्बूद्वीप का ही छोटा सा टुकड़ा है।

प्रश्न 463–स्वस्तिक रचना का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर—



(यह स्वस्तिक का आकार है।)

स्वस्तिक में ४ कोष्ठक हैं, जिनका अर्थ है ४ गतियां। स्वस्तिक में खुले कोष्ठकों का अर्थ है कि हम चारों गतियों में अबाध रूप से भ्रमण कर रहे हैं। ऊपर के ३ बिन्दु रत्नत्रय (ज्ञानदर्शन चारित्र) के प्रतीक हैं। इसके ऊपर सिद्ध शिला हैं, उसमें बिन्दु के स्थान पर मुक्त आतमाएं विराजमान हैं।

---

1. अढ़ाई द्वीप का 45 लाख यो० मान इस प्रकार है :—

पूर्वी जंबूद्वीप	—आध लाख योजन
पूर्वी लवणसमुद्र	—2 लाख योजन
पूर्वी धातकी खंड	—4 लाख योजन
पूर्वी कालेदधि समुद्र	—8 लाख योजन
पूर्वी अर्ध पुष्करवर द्वीप	—8 लाख योजन
	$22\frac{1}{2}$ लाख योजन
पश्चिम का भाग	$22\frac{1}{2}$ लाख योजन
	45 लाख योजन

स्वस्तिक बनाने का तात्पर्य यह है कि हम चारों गतियों में से निकल कर ज्ञान, दर्शन और चारित्र को प्राप्त करके सिद्धशिला पर विराजमान हो जाएँ।

प्रश्न 464–कंदमूल का त्याग क्यों आवश्यक है ?

उत्तर—जो सब्जियां ज़मीन के अन्दर ही फलती फूलती हैं उन्हें कंदमूल कहा जाता है। जैसे आलू-कचालू, शकरकन्दी, मूली-गाजर, लहसुन, प्याज, अदरक कन्द आदि। जैन शास्त्रों में इन्हें अनन्त काय कहा गया है, क्योंकि इन के छोटे से छोटे कण में भी अनन्त जीव होते हैं। इन सब्ज़ियों को खाने से अनन्त जीवों की हत्या का पाप लगता है। इसलिए इनका त्याग आवश्यक है।

कन्दमूल में अनन्त जीवों का अस्तित्व वैज्ञानिक तर्क से भी सिद्ध है। कन्दमूल सब्जियों को हवा तथा सूर्य की किरणें नहीं मिल पातीं। अतः वे २-४ मास तक निरन्तर नमी से युक्त रहती हैं। जहां निरन्तर नमी रहती है, वहां जीव भी अधिक पैदा होते हैं, इस प्रकार ये जीव बढ़ते बढ़ते अनन्त हो जाते हैं। जहां हवा तथा सूर्य का प्रकाश पहुंचता है वहां जीवोत्पत्ति विशेष नहीं होती, यह एक सर्वमान्य तथ्य है। अतः सतत नमी युक्त यह अनन्तकाय स्पर्शमात्र से ही पाप का कारण है। इसका भक्षण तो सर्वथा हर परिस्थिति में त्याज्य है।

प्रश्न 465–जिन पूजा कितने प्रकार से की जाती है ? पूजा करते समय मन में क्या भावना होनी चाहिए ?

उत्तर—जिना पूजा के २ भेद हैं—द्रव्य पूजा एवं भावपूजा। भावपूजा अर्थात् चैत्यवंदनादि करते समय मन की एकाग्रता होनी चाहिए तथा पाठों के अर्थ का चिंतन होना चाहिए। द्रव्य पूजा ८ प्रकार की है—इनमें से जल, चन्दन तथा पुष्प पूजा को अंग पूजा नाम से अभिहित किया जाता है जबकि शेष ५ पूजाओं को अग्र पूजा कहा जाता है। द्रव्य पूजा के समय निम्न प्रकार से भावना होनी चाहिए।

१—जल पूजा—जैसे जल से वाह्य मल का नाश होता है, उसी प्रकार मेरे कर्म रूपी मल का नाश हो।

२—चंदन पूजा—जैसे चन्दन की शीतलता वाह्य ताप का नाश करती है। तथैव मेरे अन्दर के क्रोध के ताप का नाश हो।

३—पुष्प पूजा—जैसे पुष्प में सुगन्धि होती है, वैसे ही मेरी आत्मा भी भाव सुगन्धि (भावों की निर्मलता) से सुरभित हो तथा हम अच्छे कर्मों की सुगन्धि फैलाएं।

४—धूपपूजा—जैसे धूप जलाने से धुआं ऊपर जाता है तथा सुगन्धि फैलती है, उसी प्रकार कर्मों का धूप जलाते हुए हमारी आत्मा ऊपर (मोक्ष) की ओर जाए तथा शुभ भावनाओं से हमारी आत्मा में शुभ भावों की सुगन्धि उत्पन्न हो। जैसे धूप राख बन जाती है, वैसे ही मेरे दुःख रूप कर्म नष्ट हों।

५—दीपपूजा—जैसे दीपक वाह्य अंधकार को दूर करता है वैसे ही हमारी आत्मा का मोह व अज्ञान रूपी अंधकार दूर हो।

६—अक्षत पूजा—जैसे चावल का छिलका उतारने से वे उज्ज्वल व अखण्ड होते हैं तथैव हमें भी कर्म छिलका दूर होकर उज्ज्वल अक्षय व अखण्ड सिद्धि प्राप्त हो।

७—नैवेद्य पूजा—जिनेश्वर देव ने आहार का त्याग करके निराहार पदवी को पाया है वैसे ही हम भी मिठाई आदि सभी प्रकार के आहार का त्याग करके निराहार पदवी (मोक्ष) को प्राप्त करें।

८—फल पूजा—हे प्रभो! जैसे यह फल रस वाला है, वैसे ही हमें भी ज्ञान व सुख रूपी रसवाला मोक्ष फल प्राप्त हो।

प्रश्न 466—१० त्रिकों का स्वरूप क्या है?

उत्तर—तीन तीन पदार्थों के समुदाय को त्रिक कहते हैं। जिन मन्दिर में जा कर इस प्रकार के १० त्रिक किए जाते हैं जिनका स्वरूप यह है—

१—निसीहि त्रिक—मन्दिर में प्रवेश करते समय पहली निसीहि प्रवेश द्वार पर कहना। दूसरी निसीहि द्रव्य पूजा के प्रारम्भ के

समय कहना तथा तीसरी निसीहि भाव पूजा के प्रारम्भ के समय कहना। इन तीनों निसीहि का अर्थ क्रमशः यह है :—

(१) घर वार व्यापार सम्वन्धी सभी वातों व कार्यों का त्याग तथा मन्दिर सम्वन्धी देख भाल का प्रारंभ। (२) मन्दिर की देखभाल का त्याग तथा द्रव्यपूजा का प्रारम्भ। (३) द्रव्यपूर्ण का त्याग तथा भावपूजा का प्रारम्भ। जो लोग द्रव्यपूजा नहीं कर सकते उन्हें दूसरी निसीहि भगवान के सम्मुख जाने से पहले कहनी चाहिए।

२—प्रदक्षिणा त्रिक—भगवान के मूलगभारे की तीन प्रदक्षिणा।

३—प्रणाम त्रिक—(क) अंजलिवद्ध प्रणाम (हाथ जोड़ कर मस्तक झुकाना)। (ख) अर्धावनत प्रणाम (आधा शरीर झुका कर प्रणाम करना—यह प्रणाम मूलगभारा में प्रवेश करते समय किया जाता है)। (ग) पंचांग प्रणाम (दो जानु, दो हाथ तथा मस्तक को झुकाना—यह प्रणाम चैत्यवंदन के समय खमासमण देते समय किया जाता है।

४—पूजात्रिक—अंग पूजा, अग्रपूजा, भाव पूजा।

५—अवस्थात्रिक—भगवान् की तीन अवस्थाओं का ध्यान—

(१) पिंडस्थ अवस्था (दीक्षावस्था) (२) पदस्थ अवस्था (सर्वज्ञ-अवस्था) (३) रूपातीत अवस्था (मुक्तावस्था)।

६—दिशा त्रिक—तीनों दिशाओं को छोड़ कर भगवान् की दिशा में ही देखना।

७—भूमि प्रमार्जन त्रिक—बैठने से पहले उत्तरीय वस्त्र से भूमि को तीन वार साफ करना।

८—आलंबन त्रिक—तीन प्रकार का आलंबन लेना—(१) प्रतिमा का आलंबन (२) शब्द का आलंबन (३) अर्थ का आलंवन।

९—मुद्रात्रिक—हाथों की तीन प्रकार की मुद्रा (आकार)।

(१) योग मुद्रा (चैत्यवंदन करते समय वायां घुटना उठा कर तथा कुहनी को नाभि के आगे रख के हाथ जोड़ के बैठना)। (२)

जिन मुद्रा (काउसग्ग करते समय ध्यान की मुद्रा में खड़े होना)। (३) मुक्ताशुक्ति मुद्रा (जावंति, जावंत तथा जयवीयराय सूत्र पढ़ते समय दोनों हाथों को सीप के समान जोड़ना)।

१०—एकाग्रता त्रिक—मन वचन एवं काया की एकाग्रता रखना।
(चैत्यवंदन भाष्य)

प्रश्न 467—नव तत्त्वों के कितने भेद हैं? तथा उनका स्वरूप क्या है?

उत्तर—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, बंध, निर्जरा और मोक्ष इन ९ तत्त्वों के क्रमशः १४, १४, ४२, ८२, ४२, ५७, ४, १२ तथा ९ भेद हैं। ये भेद कुल मिला कर २७६ हैं। ९ तत्वों का स्वरूप निम्नलिखित है :—

(१) जीव—चैतन्य-ज्ञान, एवं दर्शन जीव का लक्षण है। जानना देखना तथा सुख दुःख का अनुभव आत्मा में ही होता है। शरीर की समस्त क्रियाएं भी आत्मा के द्वारा ही होती हैं। जीवात्मा ही कर्म बन्धन करता है तथा उसका फल भोगता है जबकि मुक्तात्मा कर्मों से मुक्त है। जीव जैसे मनुष्य, घोड़ा आदि।

(२) अजीव—जीव का विपरीत तत्व अजीव है। यह जड़ है तथा इसमें ज्ञान चेतना आदि का सर्वथा अभाव होता है। जैसे—पत्थर, कुर्सी, मकान आदि।

(३) पुण्य—जिससे इन्द्रिय जन्य सुखों की प्राप्ति होती है, उसे पुण्य कहते हैं। अच्छे (शुभ) विचारों व कार्यों से पुण्योपार्जन होता है। जैसे—पुण्य के प्रभाव से जीव स्वर्ग में जाता है।

(४) पाप—जिसके कारण जीव शारीरिक व मानसिक दुःख पाता है, उसे पाप तत्त्व कहते हैं। अशुभ भावों एवं कार्यों से पापोपार्जन होता है। जैसे—पाप के कारण जीव नरक या तिर्यंच गति में जाता है।

(५) आश्रव—पाप एवं पुण्य रूपी कर्मों के आने का द्वार आश्रव है। जैसे नहर के बांध को उठाने से पानी आना प्रारम्भ हो जाता

है या द्वार खोलने से हवा आती है। वैसे ही आश्रव रूपी द्वार खुला रहने से आत्मा में कर्म आते रहते हैं। प्रमाद, कषाय, अविरति, निद्रा और योग ये पांच कारण आश्रव के हैं।

(६) संवर—आते हुए कर्मों को रोकने का नाम संवर है। जैसे बांध लगाने से पानी तथा द्वार बन्द करने से हवा रुक जाती है, वैसे ही आत्मा पर संवर रूपी बन्ध लग जाने से कर्मों का आना बन्द हो जाता है।

(७) बंध—कर्मों का आत्मा के साथ नीर क्षीरवत् मिल जाने का नाम बन्ध है। जैसे गीली मिट्टी को वस्त्र आत्मसात् कर लेता है।

(८) निर्जरा—आत्मा से कर्मों के झड़ जाने का नाम निर्जरा है। तप तथा ज्ञानाभ्यास आदि से कर्मों की निर्जरा होती है। कतिपय कर्म तेलवाली चादर पर लगी मिट्टी के समान जल्दी से निर्जरित नहीं होते। कुछ कर्म गीली चादर पर लगी मिट्टी के समान समय से झड़ जाते हैं तथा कुछ कर्म सूखी चादर पर लगी मिट्टी के समान शीघ्र ही झड़ जाते हैं।

(९) मोक्ष—आत्मा का ८ कर्मों से मुक्त हो कर परमात्मस्वरूप की प्राप्ति कर लेना—मोक्ष (मुक्ति) है। जैसे स्वर्ण को भट्टी में तपा कर अनेकविध रसायनों के द्वारा उसकी खोट दूर करके उसे शुद्ध किया जाता है। उसी प्रकार आत्मा को तप, संयम, ध्यान की भट्टी में तपा कर, ज्ञान दर्शन चारित्र के रसायनों के द्वारा आत्मा की कर्म रूपी खोट को दूर किया जा सकता है। आत्मा की पूर्ण सिद्धि तथा शुद्धता का नाम मोक्ष है।

इन ९ तत्त्वों में से जीव तथा अजीव ज्ञेय, पाप, आश्रव तथा बंध-हेय तथा शेष तत्त्व उपादेय हैं।

प्रश्न 468–जम्बू द्वीप का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—जम्बूद्वीप मध्यलोक का प्रथम द्वीप है। यह द्वीप एक लाख योजन लम्बा एवं चौड़ा है। इसकी परिधि साधिक ३१६२२७ योजन है। इस द्वीप के दक्षिण में भरत क्षेत्र, उत्तर में ऐरावत क्षेत्र एवं मध्य में महाविदेह क्षेत्र है। इस द्वीप के बिल्कुल मध्य में ए

लाख योजन की ऊंचाई वाला मेरु पर्वत है, जो कि मध्य लोक का सब से बड़ा पर्वत है। भरत क्षेत्र समस्त जम्बूद्वीप का १९०वां भाग है जो कि चौड़ाई में ५२६,६/१९ योजन तथा लम्बाई में १४४७१,५/१९ योजन है। इस भरत क्षेत्र के मध्य में पूर्व से पश्चिम तक विस्तृत वैताढ्य पर्वत है जो कि २५ योजन ऊंचा है। भरत क्षेत्र के पूर्व में गंगा तथा उत्तर में सिंधु नदियाँ हैं, इन नदियों व वैताढ्य पर्वत ने भरत क्षेत्र को ६ खण्डों में विभाजित कर दिया है। इसका प्रथम मध्य खण्ड जिसे आर्य खण्ड भी कहा जाता है। २३८,३/१९ योजन चौड़ा तथा २००० योजन लम्बा है। मध्य खण्ड में मात्र साढ़े २५ देश आर्य हैं शेष अनार्य देश हैं। वैताढ्य पर्वत ५० योजन चौड़ा और ९७४८,११/१९ योजन लम्बा है। गंगा तथा सिन्धु नदियां अपने उत्पत्ति स्थान पद्म द्रह के पास सवा ६ योजन चौड़ी है जो कि समुद्र में मिलने के स्थान पर क्रमशः बढ़ती हुई साढ़े ६२ योजन चौड़ी हो जाती है। भरत के ६ खण्डों में ३२००० देश हैं जिन पर चक्रवर्ती विजय प्राप्त करता है। आज का दृश्यमान विश्व इन्हीं ६ खण्डों का ही एक भाग है।

भरत क्षेत्र के पश्चात् १०० योजन ऊंचा स्वर्णमय हिमवन्त पर्वत है। तदनु हैमवत क्षेत्र है। तत्पश्चात् २०० योजन ऊंचा महाहिमवंत पर्वत है। तत्पश्चात् हरिवर्ष क्षेत्र है। तदनु ४०० योजन ऊंचा निषध पर्वत है। उसके पश्चात् देवकुरू क्षेत्र है। फिर मेरु पर्वत की दूसरी ओर उत्तर कुरू क्षेत्र है, इसी क्षेत्र में जम्बू नाम का एक वृक्ष है जिसके कारण जम्बूद्वीप को इस नाम से अभिहित किया गया है। महाविदेह क्षेत्र देवकुरू व उत्तरकुरू के पूर्व पश्चिम में फैले हुए हैं। उत्तर कुरू के पश्चात् नील पर्वत है जो कि ४०० योजन ऊंचा है। तदनु रम्यक वर्ष क्षेत्र है। तत्पश्चात् २०० योजन ऊंचा रूक्मि पर्वत है। तत्पश्चात् हैरण्यवत क्षेत्र है। इसके बाद १०० योजन ऊंचा शिखरी पर्वत है। उसके बाद जंबूद्वीप के उत्तर में ही ऐरावत क्षेत्र है जो कि भरत क्षेत्र के ही समान है। तद्वर्ती नदियों के नाम रक्ता तथा रक्तवती हैं।

हैमवत हैरण्यवत क्षेत्रों में सदैव अवसर्पिणी का तीसरा आरा रहता है, इस क्षेत्र में मनुष्यों की आयु एक पल्योपम तथा शरीरमान एक कोस होता है। हरिवर्ष तथा रम्यक्वर्ष क्षेत्रों में सदैव अवसर्पिणी का दूसरा आरा वर्तता है तथा इस क्षेत्र में मनुष्यों की आयु २ पल्योपम एवं शरीरमान २ कोस होता है। देवकुरू व उत्तरकुरू में सदैव अवसर्पिणी का पहला आरा वर्तता है, इस क्षेत्र में मनुष्यों का आयु ३ पल्योपम व शरीरमान ३ कोस होता है। महाविदेह क्षेत्र में सदैव अवसर्पिणी का चौथा आरा रहता है तथा वहां मनुष्यों की आयु पूर्व करोड़ वर्ष तथा शरीरमान ५०० धनुष होता है। महाविदेह में पूर्व में सीता नदी है जिसके दोनों ओर ८-८ विजय (क्षेत्र) हैं। इसके पश्चिम में सीतोदा नदी है जिसके भी दोनों ओर ८-८ विजय हैं। इस प्रकार महाविदेह में ३२ विजय हैं। प्रत्येक विजय भरत क्षेत्र से दुगना है। इन ३२ विजयों में सदैव कम से कम ४ तीर्थंकर अवश्य होते हैं। तथा अधिकतम ३२ तीर्थंकर हो सकते हैं। जम्बूद्वीप में भरत, ऐरावत तथा महाविदेह ये तीन कर्मभूमियां हैं यहां कर्म (असि मसी तथा कृषि रूप) तथा धर्म होता है तथा हैमवत हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यक् वर्ष, देवकुरू तथा उत्तरकुरू— ये ६ क्षेत्र अकर्म भूमियां हैं, यहाँ कभी भी धर्म कर्म नहीं होता।

दूसरे द्वीप धातकी खण्ड तथा तीसरे द्वीप अर्धपुष्कर वर द्वीप में भी ६-६ कर्मभूमियां तथा १२-१२ अकर्म भूमियां हैं। इस प्रकार अढ़ाई द्वीप में १५ कर्मभूमियां तथा ३० अकर्मभूमियां हैं।
हेमवत तथा शिखरी पर्वतों से पूर्व तथा पश्चिम से २-२ दाढ़ाएं समुद्र में गई हुई हैं इनमें ५६ अन्तर्द्वीप हैं। मनुष्य केवल इन्हीं १०१ क्षेत्रों (१५ कर्मभूमि, ३० अकर्मभूमि, ५६ अन्तर्द्वीप) में ही उत्पन्न होते हैं। भगवान् ऋषभदेव की निर्वाण स्थली अष्टापद पर्वत भरत क्षेत्र के प्रथम खण्ड में है (यह हिमालय पर्वत या मानसरोवर का कोई निकटवर्ती पर्वत होना सम्भव है)।

यहां उल्लिखित पर्वत एवं क्षेत्रों का माप २००० मील प्रति

योजन परिगणित करना चाहिए। (बृहत्संग्रहणी, क्षेत्र समास)

प्रश्न 469–मेरू पर्वत का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—जम्बूद्वीप के मध्य में स्थित एवं एक लाख योजन ऊंचे मेरू पर्वत का एक हज़ार योजन धरती के अन्दर है, जिसकी चौड़ाई १००९०,१०/११ योजन है। पृथ्वी तक का यह भाग मिट्टी, पत्थर, कंकर एवं वज्र रत्न का है। पृथ्वी के ऊपर पूर्व से पश्चिम २२०० योजन लम्बा तथा २५० योजन चौड़ा भद्रशाल नाम का वन है। यहां मेरू पर्वत १०००० योजन चौड़ा है। यहाँ से ५०० योजन ऊपर मेरू के चारों ओर गोलाकार ५०० योजन चौड़ा नन्दन वन है। यहां मेरू पर्वत ९९५,४६/११ योजन चौड़ा है। यहां से ६२५०० योजन ऊपर ५०० योजन चौड़ा सोमनस वन है। यहां मेरू पर्वत ४२७२ योजन चौड़ा है। यहां से ३६००० योजन ऊपर ४९४ योजन चौड़ा पांडुक वन है। इसकी चारों दिशाओं में श्वेत स्वर्णमय अर्ध चंद्राकार ४ शिलाएं हैं। इनमें से पूर्व पश्चिम की पांडुक शिला व रक्त शिला पर महाविदेह के तीर्थंकरों का जन्माभिषेक होता है। दक्षिण की पांडुकंवल शिला तथा उत्तर की रक्त पांडुकंवल शिला पर क्रमशः भरत ऐरावत क्षेत्रों के तीर्थंकरों का जन्माभिषेक होता है। पांडुकवन पर मेरू पर्वत १००० योजन चौड़ा है। (बृहत्संग्रहणी)

पांडुक वन में मध्य में ४० योजन ऊंची, प्रारम्भ में १२ योजन चौड़ी, मध्य में ८ योजन चौड़ी एवं अन्त में ४ योजन चौड़ी एक चूलिका (शिखा) है, जो कि वैडूर्य रत्न की बनी हुई है। मेरू पर्वत का चित्र अगले पृष्ठ पर देखें।

प्रश्न 470–कषाय किसे कहते हैं ? इसका क्या स्वरूप है ?

उत्तर—कषायमोहनीय कर्म के उदय से होने वाले क्रोध, मान, माया तथा लोभ रूपी आत्मा के परिणाम विशेष को कषाय कहते हैं। इसके ४ भेद हैं। क्रोध, मान, माया तथा लोभ। इनका स्वरूप इस प्रकार है—

१. क्रोध—यह जीव के कृत्य अकृत्य के विवेक को हटाता है।

(प्रश्न ४६९ का शेष)

चूलिका

पांडुक वन

३६००० योजन

सोमनस वन

६२५०० योज

नंदन वन

५०० योजन

भद्रशाल वन

पृथ्वी पर १०००० योजन चौड़ा

भूमि के अन्दर १००९० योजन चौड़ा

१००० योजन

क्रोधावेश में मानव असहिष्णु बनकर मन ही मन जलता रहता है।

२. मान—मान के कारण प्राणी में अहंबुद्धि की अधिकता रहती है तथा वह स्वयं तो सम्मान चाहता है लेकिन दूसरों का सम्मान नहीं करता। दूसरे के गुणों पर भी वह मात्सर्य रखता है।

३. माया—माया के कारण प्राणी मन, वचन तथा कर्म में भिन्नता का व्यवहार करता है। मायावी व्यक्ति कपट, धोखा व बेईमानी करता रहता है।

४. लोभ—लोभ से मानव धन, भूमि आदि पर ममत्व बुद्धि रखता है तथा लाभ होने पर भी असन्तोषी ही बना रहता है।

इन चारों कषायों के चार चार भेद हैं। निम्नलिखित रूप से :—

१. अनंतानुबंधी—इस कषाय वाला जीव नरक गति के कर्मों का बन्धन करता है। यह कषाय जीवन पर्यंत रहता है तथा सम्यक्त्व प्राप्ति होने में बाधक है। इस कषाय के कारण प्राणी अनंत काल तक भव भ्रमण करता है।

२. अप्रत्याख्यान—इस कषाय के उदय से प्राणी देशवरति धर्म (श्रावक धर्म) या पच्चक्खान आदि स्वीकार नहीं कर सकता। यह कषाय १ वर्ष तक रहता है तथा इस कषाय वाला जीव तिर्यंच गति योग्य कर्म बांधता है।

३. प्रत्याख्यान—इस कषाय के कारण सर्वविरति (साधुधर्म) की प्राप्ति नहीं होती। चार मास तक रहने वाला यह कषाय मनुष्य-गतिक कर्मों के उपार्जन में हेतुभूत है।

४. संज्वलन—यह कषाय उपसर्ग या परिषह आदि आने पर साधुओं को भी थोड़ा सा जलाता है या असर दिखाता है। यह कषाय यथाख्यात चारित्र (तथा मोक्ष प्राप्ति) में बाधक है। १५ दिन तक रहने वाला यह कषाय देवगति के कर्मों का बन्धन कराता है।

४ प्रकार के क्रोध की उपमाएं :—

१. अनंतानुबंधी—जैसे पर्वत की दरार किसी भी उपाय से मिल नहीं सकती, उसी प्रकार अनंतानुबन्धी क्रोध सभी उपाय करने पर भी शांत नहीं होता।

२. अप्रत्याख्यान—तालाब में मिट्टी की दरार जैसे वर्षादि से मिल जाती है, तथैव यह क्रोध भी अतिपरिश्रम से शांत होता है।

३. प्रत्याख्यान—जैसे वालू में खींची हुई लकीर हवा चलने पर जल्दी भर जाती है वैसे ही यह क्रोध भी कुछ उपाय से शांत हो जाता है।

४. संज्वलन—यह क्रोध पानी की लकीर के समान शीघ्र ही शांत हो जाता है।

४ प्रकार के मान की उपमाएं :—

१. अनंतानुवन्धी—पत्थर का स्तम्भ जैसे कभी भी नहीं नमता, वैसे ही यह मान किसी भी उपाय से दूर नहीं होता।

२. अप्रत्याख्यान—जैसे हड्डी अनेक उपाय करने से ही नमती है वैसे ही यह मान भी अनेक उपायों से ही दूर होता है।

३. प्रत्याख्यान—जैसे काष्ठ तेल आदि मलने से नम जाता है, वैसे ही यह मान भी कुछ उपाय से दूर हो जाता है।

४. संज्वलन—तृण जैसे सहज ही नम जाता है, वैसे ही यह मान शीघ्र ही छूट जाता है।

४ प्रकार की माया की उपमाएं :—

१. अनंतानुवन्धी—वांस की जड़ के टेढ़ेपन की तरह यह माया कभी दूर नहीं होती।

२. अप्रत्याख्यान –मेंढे के सींग के टेढ़ेपन की तरह यह माया बहुत उपाय करने से ठीक होती हैं।

३. प्रत्याख्यान—जैसे चलते हुए बैल के मूत्र की टेढ़ी लकीर हवा आदि से सूख जाने पर मिट जाती है वैसे ही यह माया भी कुछ प्रयत्नों से दूर होती हैं।

४. संज्वलन—छीले जाते हुए वांस के छिलके के टेढ़ेपन के समान यह माया सहज ही दूर हो जाती है।

४ प्रकार के लोभ की उपमाएं :—

१. अनन्तानुवन्धी—यह लोभ किरमची के रंग की तरह किसी भी उपाय से नहीं छूटता।

२. अप्रत्याख्यान—यह लोभ पहिए की कीच के समान अति-परिश्रम से छूटता है।

३. प्रत्याख्यान—यह लोभ दीप के कज्जल के समान कुछ प्रयत्न से ही छूट जाता है।

४. संज्वलन—यह लोभ हल्दी के रंग के समान शीघ्र ही छूट जाता है। क्रोध, मान, माया, लोभ, क्रमशः नरक, मनुष्य, तिर्यंच तथा देवगति में अधिक होते हैं।

(पन्नवणा पद १४, सूत्र १८८,ठाणांग ४ उ० १ सू० २४९टीका तथा उ० ४, सू० २९३ टीका, कर्मग्रन्थ-१, गाथा १९-२०)

प्रश्न 471—क्या केवली भगवान अपने मन का उपयोग करते हैं ?

उत्तर—सामान्यरूप से केवली भगवान् अपने मन का कुछ भी प्रयोग नहीं करते। केवली का उपदेश देने का परिश्रम भी मन के उपयोग के बिना ही होता है। वे वचन का प्रयोग करने से पहले यह विचार नहीं करते कि 'अमुक विषय इस प्रकार से कहना है'। उनकी उपदेश प्रवृत्ति भी अनायास ही होती है।

जब अनुत्तर विमान वासी देवता के मन में शब्द, अर्थ, व्याकरण या तर्क विषयक कोई संशय होता है तो वे, क्योंकि अपने विमान को छोड़ कर कहीं भी नहीं जाते, वहां बैठे २ ही केवली भगवान् से अपने प्रश्न का समाधान चाहते हैं। तब केवली भगवान् मनो-वर्गणा के पुद्गलों के द्वारा उनका संशय दूर करते हैं। वे देवता स्वशक्ति से उन पुद्गलों को ग्रहण कर लेते हैं। केवली भगवान् मात्र इसी प्रयोजन से अपने मन का उपयोग करते हैं।

प्रश्न 472—तीर्थंकरों के कल्याणकों के समय नरक में किस प्रकार का प्रकाश होता है ?

उत्तर—तीर्थंकर भगवंतों के जन्म के समय तथा अन्य कल्याणक अवसरों पर नारकी जीव को क्षणिक सुख की अनुभूति होती है तथा नरक में चारों ओर प्रकाश हो जाता है। यह प्रकाश प्रथम नरक में सूर्य के समान, द्वितीय नरक में मेघाच्छादित सूर्य के समान,

तृतीय नरक में चन्द्र के समान, चतुर्थ नरक में मेघाच्छादित चन्द्र के समान, पंचम नरक में ग्रहों के प्रकाशतुल्य, षष्ठ नरक में नक्षत्र ज्योति समान तथा सप्तम नरक भूमि में तारों के समान होता है।

प्रश्न 473–गृहस्थ के दैनिक कर्म कितने और कौन कौन से हैं ?

उत्तर—गृहस्थ को प्रतिदिन ६ प्रकार के कृत्यों का आचरण करना चाहिए। ये षट् कर्म निम्नलिखित हैं :—

देव पूजा गुरूपास्तिः, स्वाध्यायस्संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां, षट्कर्माणि दिने दिने ॥१॥

अर्थात्—जिनेश्वर भगवान् की द्रव्य तथा भाव पूजा, गुरू महाराज की गौचरी, औषधि, वस्त्रादि द्वारा सेवा उपासना; अच्छे अच्छे धर्म शास्त्रों का पठन पाठन, संयम का पालन, कम से कम नवकारसी की तपस्या, पांच प्रकार के दान में से कोई भी दान।

प्रश्न 474–मन्दिर जी में जाकर कौन कौन सी आशातनाएं टालनी चाहिए।

उत्तर—श्री मंदिर जी में आकर ८४ आशातनाएं टालनी चाहिएं। मंदिर में जाकर पहली निसीहि कहने का प्रयोजन भी यही है कि सांसारिक वातों तथा आचरणों का त्याग। ये ८४ आचरण गृहस्थ की ऐसी प्रवृत्तियां हैं जो कि मंदिर जी की पवित्र भूमि में वर्जित हैं। यदि भगवान् के जिनालय में जाकर भी विवेक-हीनता से कार्य किया जाता है तथा आशातना के कार्य किए जाते हैं तो मंदिर में जाने का प्रयोजन-पुण्य लाभ तथा कर्मों की निर्जरा-अर्थहीन हो जाती है। मन्दिर में किए हुए पाप कर्म का फल भी अत्यधिक होता है। कहा भी है—

अन्यस्थाने कृतं पापं, तीर्थ स्थाने विनश्यति।
तीर्थस्थाने कृतं पापं, वज्रलेपो भविष्यति॥

भगवान् के दर्शन, वंदन, पूजन से सम्यक्त्व शुद्धि होती है तथा मानव चारित्र की ओर अग्रसर होता है, लेकिन मंदिर में अविवेक तथा आशातना से परमात्मा का अपमान होता है, फलतः मानव

श्रद्धा-भ्रष्ट बनकर अपने उद्देश्य को पूर्ण करने में विफल रहता है।

इन ८४ आशातनाओं में १० आशातनाएं प्रमुख हैं जो कि निम्न-लिखित हैं—१ पान सुपारी खाना २. भोजन करना ३. पानी पीना ४. जूते पहनना ५. मैथुन सेवन करना ६. बिस्तर लगा कर सोना ७. थूकना ८. विष्ठा करना ९. पेशाब करना, १०. जूआ खेलना।

प्रश्न 475—जाप कितने प्रकार का है ?

उत्तर—जैन शास्त्रों के अनुसार जाप ३ प्रकार का है :—

१. मानस जाप, २. उपांशु जाप, ३. भाष्य जाप।

१. मानस जाप—जो जाप मात्र मन में ही हो। जाप करते समय होंठ व जीभ न हिले तथा शब्दोच्चारण भी न हो—वह मानस जाप हैं। इस जाप से आत्मा का शीघ्र ही शुद्धिकरण होता है। नवकार मंत्र का जाप तो इसी विधि से करना चाहिए जिससे कि मानव को भवसागर से तिरने के लिए आध्यात्मिक बल प्राप्त हो।

२. उपांशु जाप - जिस जाप में शब्दोच्चारण न हो, होंठ न हिलें परन्तु जीभ चलती रहे वह जाप उपांशु जाप है। यह जाप मध्यम श्रेणी का है।

३. भाष्य जाप—जिस जाप में जीभ व होंठ हिलें तथा शब्दोच्चारण भी हो उसे भाष्य जाप कहते हैं। इस जाप का फल अल्प है तथा देर से मिल पाता है।

प्रश्न 476—चतुर्दश गुणस्थानों का स्वरूप क्या है ?

उत्तर—चतुर्दश गुणस्थानों का स्वरूप निम्न प्रकार से है।

(१) मिथ्यात्वगुणस्थान—मिथ्यात्व में रहने वाली आत्मा की अवस्था विशेष को मिथ्यात्व गुणस्थान कहा है। यहां मिथ्यात्व शब्द से व्यक्त मिथ्यात्व समझना चाहिए। इस गुणस्थान में रहने वाली आत्मा रागद्वेष के गाढ़ परिणाम वाली होती है,

और भौतिक उन्नति में ही लिप्त रहने वाली होती है। तात्पर्य यह है, कि उसकी सब प्रवृतियों का लक्ष्य साँसारिक सुखों का उपभोग और उसी के आवश्यक साधनों का संग्रह होता है। ऐसी आत्माएं आध्यात्मिक विकास से पराङ्मुख होती हैं, इसलिए उन्हें मोक्ष की बात अच्छी नहीं लगती, और उस के साधनों के प्रति उन में एक प्रकार का तिरस्कार भाव होता है। काल की अपेक्षा से मिथ्यात्व तीन प्रकार का है: (१) अनादि अनंत (२) अनादि सांत और (३) सादिसाँत। तीनों का विश्लेषण इस प्रकार से है।

अनादि अनन्त—अभव्यात्मा का मिथ्यात्व अनादि काल से है, अनंत काल तक रहेगा, इसलिए इसे अनादि अनन्त कहा गया है। अनादिसांत—जाति भव्यात्मा के अतिरिक्त भव्यात्माओं को मिथ्यात्व अनादिकाल से होता है, पर उस का अन्त हो जाता है इसलिए वह अनादि सांत है।

सादिसांत—जो भव्यात्माएं सम्यक्त्व प्राप्त करने के पश्चात् पुनः मिथ्यात्व में चली गई हैं, उनके मिथ्यात्व का भी अन्त अवश्य होता है, इसलिए उनको मिथ्यात्व सादिसांत कहा गया है।

(२) सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान—जब जीव को मिथ्यात्व भी नहीं होता और सम्यक्त्व भी नहीं होता, पर सम्यक्त्व का कुछ स्वाद होता है; तब उसे सास्वादनसम्यग्दृष्टि नामक दूसरा गुणस्थान माना जाता है। सास्वादन में तीन पद हैं—स+आ+स्वादन। इन में 'स' का अर्थ 'सहित' है; 'आ' का अर्थ 'किंचित्' है और स्वादन का अर्थ 'स्वाद' है। इस प्रकार से सास्वादन का अर्थ कुछ स्वाद सहित होता है। जब कोई भव्यात्मा सम्यक्त्व प्राप्ति के पश्चात्, अनन्तानुबंधी कषाय का उदय होने से सम्यक्त्व को छोड़कर मिथ्यात्व की ओर चल पड़ता है; उस समय उसे सम्यक्त्व का कुछ स्वाद होता है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति खीर का भोजन करे और पश्चात्

किसी कारण वश वमन हो जाय, तो वमन के पश्चात् भी उस व्यक्ति को खाई हुई खीर का किंचित् स्वाद रहता है, उसी के समान इस गुणस्थान की स्थिति समझनी चाहिए। इसकी जघन्य स्थिति एक समय है तथा उत्कृष्ट स्थिति ६ आवलिका है।

(३) सम्यग्-मिथ्यादृष्टि-गुणस्थान—दर्शन मोहनीय कर्म की दूसरी प्रकृति मिश्र मोहनीय है। उस के उदय से जीव को एक साथ समान परिणाम में सम्यक्त्व और मिथ्यात्व का मिश्र भाव होता है। इसलिए उसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान या मिश्र गुणस्थान कहा जाता है। जो जीव सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्व इन दो में से किसी एक भाव में वर्तता हो; वह जीव मिश्र गुणस्थान वाला नहीं कहा जा सकता। कारण कि यहां मिश्र भाव एक नये जाति के तीसरे भाव के समान है। जैसे घोड़ी और गधे के संयोग से उत्पन्न जीव खच्चर कहलाता है; गुड़ और दहीं के संयोग से एक तीसरा हीं स्वाद आता आता है, उसी प्रकार जिस जीव की बुद्धि सर्वज्ञभाषित और असर्वज्ञ भाषित में समान श्रद्धा वाली हो जाती है, उस जीव को एक नई जाति का परिणाम उत्पन्न होता है। उसे मिश्र गुण स्थान अथवा सम्यग्-मिथ्या-दृष्टि गुणस्थान कहा है। इस की स्थिति अंतर्मुहूर्त्त काल है।

(४) अविरति सम्यग्दृष्टिगुणस्थान—अध्यात्मविकास का सच्चा प्रारंभ इस गुणस्थान से होता है; इसलिए उसका स्वरूप भली-भांति समझने योग्य है। इस गुणस्थान में प्रथम अविरति शब्द क्यों लगाया है, इसका स्पष्टीकरण भी समझ लें। इस गुणस्थान पर आने वाली आत्माओं के अनन्तानुबंधी कषायों का उदय नहीं होता, प्रत्याख्यानी आदि कषायों का उदय होता है; इसी कारण चारित्र अर्थात् विरति नहीं होती। इसी कारण प्रथम अविरति शब्द लगाया गया है। यद्यपि सम्यक्त्व के कितने ही भेदों का वर्णन शास्त्रों में उपलब्ध होता है, तथापि तीन भेद मुख्य रूप से अधिक महत्त्व पूर्ण हैं। उपशम, क्षयोपशम तथा क्षायिक। इन तीनों का कुछ वर्णन पूर्व के प्रश्नों में आ चुका है। जिज्ञासुओं को वहां से जान लेना चाहिए।

(५) देशविरति गुणस्थान—इस गुणस्थान को विरताविति, संयतासंयत, व्रताव्रत रूप में भी पहचाना जाता है। कारण कि इस में कुछ विरति कुछ अविरति, कुछ संयम कुछ असंयम, कुछ व्रतीपना कुछ अव्रतीपना है। इस गुणस्थान में चारित्र मोहनीय कर्म का वल एक निश्चित प्रमाण में घट जाता है, इस लिए आत्मा जानी समझी वात को क्रिया रूप में लाने का प्रयत्न करता है। इस गुणस्थान में जीव समस्त पाप प्रवृत्तियों को नहीं छोड़ सकता, किन्तु चेष्टा अवश्य करता है, और किन्हीं पाप प्रवृतियों को छोड़ देता है। शास्त्रीय भाषा में उसे देशविरति कहते हैं। देश विरति में प्रथम सम्यक्त्व ग्रहण वाद में श्रावक के वारह व्रत अंगीकार किये जाते हैं। जो व्यक्ति वारह व्रत अंगीकार न कर सके वह थोड़े व्रत ग्रहण करे, शेष की भावना रखे। वाद में ज्यों ज्यों संयोग अनुकूल होते जाएं, त्यों त्यों शेष व्रतों को भी अंगीकार करता जाये। यह अविरति और सर्वविरति के वीच की स्थिति है इस लिए इसे 'मध्यम मार्ग' भी कह सकते हैं। इसे अत्यन्त व्यवहारिक माना जाता है। इसका अनुसरण करने से आत्मा क्रमशः आगे उन्नति कर सकती है और अन्ततः अभीष्ट सिद्धि प्राप्त कर सकती है। इसकी जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त तथा उत्कृष्टस्थिति देशोन एक करोड़ पूर्व है।

(६) प्रमत्त संयत गुणस्थान—छठे गुणस्थान में साधुता है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'प्रमत्त' संयत की अवस्था विशेष 'प्रमत्त संयत' गुणस्थान है। यहां संयत मूल शब्द है और प्रमत्त उसका विशेषण है। जो आत्मा नवकोटी से जावज्जीव सामायिक का 'पच्चक्खाण' करे और पांच महाव्रत धारण करे, वह सर्वविरति में मानी जायेगी और उसे सयंत कहा जायेगा। साधु, मुनि, अनागार आदि उसके पर्यायवाची शब्द हैं।

तीन योग और तीन करण से पच्चक्खाण करे तो नव कोटी 'पच्चक्खाण' होता है। तीन योग अर्थात् मन, वचन एवं काया। तीन करण अर्थात् करना, कराना, अनुमोदना। इन दोनों के योग से नव कोटी सामायिक का पच्चक्खाण होता है। साधु

के पांच महाव्रत यह हैं—(१) प्राणातिपात-विरमण-व्रत (२) मृषा वाद विरमणव्रत (३) अदत्तादान विरमण व्रत (४) मैथुन विरमण व्रत (५) परिग्रह विरमण व्रत, इन महाव्रतों के कारण ही साधु अहिंसा, सत्य अचौर्य, ब्रह्मचर्य और निष्परिग्रहिता का उत्कृष्ट पालन करता है और दूसरों को भी उस मार्ग पर लगाने में प्रयत्नशील रहता है। इसकी स्थिति अंतर्मुहुर्त्त काल है।

(७) अप्रमत्तसंयत गुणस्थान—संज्वलन कषायों का उदय मंद होने से साधु प्रमाद रहित होकर अप्रमत्त हो जाता है। उसकी अवस्था विशेष को अप्रमत्त संयत गुणस्थान कहा जाता है। इस अवस्था में स्थित आत्मा किंचिन्मात्र भी प्रमाद करते ही छठे प्रमत्त गुणस्थान में आ जाता है। और प्रमाद रहित होने पर पुनः सातवें गुणस्थान में आ जाता है। इस प्रकार छठे और सातवें गुणस्थान का परिवर्तन सामान्यतः दीर्घ काल तक चलता रहता है। इस गुणस्थान की जघन्य स्थिति एक समय और उत्कृष्ट स्थिति अंतर्मुहूर्त्त होती है। छठे, सातवें दोनों गुणस्थानों को मिलाकर इस की जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट स्थिति देशोन (आठ वर्ष कम) एक करोड़ पूर्व हो सकती है।

(८) अपूर्व करण गुणस्थान—यद्यपि सम्यक्त्व प्राप्त करते समय रागद्वेष की तीव्र ग्रन्थि का भेदन करते हुये जीव के परिणाम विशेष को भी अपूर्वकरण कहा गया है, तथादि यह अपूर्व करण उस से भिन्न ही है। जैसे एक नाम वाले दो शहर या गांव भी होते हैं। इस अपूर्व करण में मुख्यतः पांच बातें होती हैं—स्थितिघात, रसघात, गुणश्रेणि, गुणसंक्रमण और अपूर्व स्थितिबंध। इन पांचों वस्तुओं को जीव ने पहले कभी नहीं किया, इसी लिए इसे अपूर्व करण कहा गया है। इन पांच वस्तुओं का निम्न प्रकार से वर्णन है :—

स्थितिघात—कर्म की दीर्घ, लम्वी स्थिति को अपवर्तनाकरण द्वारा न्यून, न्यूनतर, न्यूनतम करना स्थितिघात है।

रसघात—कर्म के तीव्र रस को अपवर्तनाकरण द्वारा मंद, मदंतर, मंदतम वनाना रसघात कहलाता है।

गुणश्रेणि—कम समय में अधिक कर्म-प्रदेशों को भोगना, ऐसी स्थिति उत्पन्न करना गुणश्रेणि कहलाता है।

गुणसंक्रमण—बंधी हुई शुभ प्रकृति में अशुभप्रकृति का दलिया विशुद्धता पूर्वक बहुत बड़ी सख्या में डालना, गुणसंक्रमण है। यह बात स्मरणीय है कि संक्रमण सजातीय प्रकृतियों का ही होता है। विजातीय प्रकृतियों का नहीं होता।

अपूर्व स्थिति बंध—बाद के गुणस्थानों में मात्र जघन्य स्थिति का कर्मबंध करने की योग्यता प्राप्त करना अपूर्व स्थिति बंध है।

(९) अनिवृत्तिबादरगुणस्थान—इस गुणस्थान में उपशम श्रेणी क्षपक श्रेणी का काम आगे बढ़ता है—इस लिए मोहनीय कर्म की बीस प्रकृतियों का उपशम या क्षय तथा उदय होता है और पहले दूसरी सात प्रकृतियों का उपशम या क्षय हो चुका होता है—इस लिए यहां एक संज्वलन लोभ ही शेष रहता है।

(१०) सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान—इस में आत्मा स्थूल कषायों से सर्वथा निवृत्त हो जाता है, किन्तु सूक्ष्मसंपराय अर्थात् संज्वलन लोभ सूक्ष्म कषाय से उदय युक्त रहता है स्मरण रहे कि, कषाय दसवें गुणस्थान तक भी आत्मा में रहते हैं। उसे नष्ट करने के लिए भारी पुरुषार्थ करना पड़ता है।

(११) उपशान्तमोहगुणस्थान—उपशम श्रेणी द्वारा जीव दसवें गुण स्थान से ग्यारहवें गुणस्थान में आता है। किन्तु क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ जीव इस गुणस्थान में नहीं आकर सीधा बारहवें गुणस्थान में पहुंच जाता है। जैसे धीरे चलने वाली गाड़ी (पैसंजर गाड़ी) हर एक स्टेशन पर खड़ी होती है किन्तु तेज़ चलने वाली गाड़ी (एक्सप्रैस) कई स्टेशनों को छोड़ती हुई आगे निकल जाती है। यहां क्षपक श्रेणी को तेज़ गाड़ी तथा उपशम श्रेणी को धीरे चलने वाली गाड़ी समझना चाहिए। जहां पर मोहनीय कर्म सर्वथा अमुक समय तक उपशान्त हो जायें, आत्मा की ऐसी स्थिति विशेष को उपशान्त मोह गुणस्थान कहा जाता है। इस गुणस्थान पर आया हुआ जीव जघन्य रूप से एक समय, उत्कृष्ट रूप से एक अंतर्मुहूर्त पर्यन्त वीतराग दशा का अनुभव करता है, उस के पश्चात् उपशान्त की हुई कषाय मोहनीय कर्म प्रकृति का उदय होने

पर जीव निश्चित ही नीचे गिरता है, तथा यहां से गिरने वाला जीव सातवें, छठे, पांचवें, चौथे, अथवा पहले गुणस्थान में भी पहुंच जाता है।

(१२) क्षीण मोहगुणस्थान—मोहनीय कर्म के सर्वथा क्षय हो जाने की अवस्था विशेष को क्षीण मोह गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थान पर संज्वलन लोभ का क्षय हो जाने से समस्त मोहनीय कर्म का क्षय हो जाता हैं। अनन्तानन्त काल से जिन कर्मों का आत्मा पर अधिकार था उन के क्षय हो जाने से आत्मा को कितनी आनन्दानुभूति होती होगी, इस का अनुमान भी लगाना कठिन हैं। इस गुणस्थान को प्राप्त करने वाला आत्मा वीतरागी, कहलाता है। इस गुणस्थान के अन्तिम समय में शुक्ल ध्यान के दूसरे पाये का ध्यान लगाते हुए शेष तीनों घाती कर्मों का क्षय हो जाता हैं। इस की स्थिति एक अंतर्मुहूर्त की हैं।

(१३) सयोगी केवली गुणस्थान—शुक्लध्यान की दूसरी मंजिल पूरी होते ही जीव, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय कर्मों का क्षय कर देता है। अर्थात् चार घाती कर्मों का क्षय हो जाता हैं और उस से केवल ज्ञान केवल दर्शन की प्राप्ति हो जाती है और सयोगी केवली नामक तेरहवें गुणस्थान की प्राप्ति हो जाती है। शेष चार अघाती कर्म—वेदनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र कर्म का क्षय करना शेष रह जाता है। इस गुणस्थान पर आत्मा पूर्ण वीतरागता प्राप्त कर लेता है और अघाती कर्मों के फल को सहज समभाव से भोगता है,इस केवल ज्ञानी परमात्मा को भी मन, वचन और काया की प्रवृत्ति रूप योग होते हैं। इस लिए केवली सयोग केवली कहलाता है। सयोग केवली आत्मा की अवस्था विशेष ही सयोगी केवली गुणस्थान है। इस गुणस्थान पर वर्तते जीवात्मा को किसी प्रकार का ध्यान नहीं होता, किन्तु ध्यानासंरिका जीवन्मुक्त दशा होती है। इस गुणस्थान पर रहने वाली आत्मा जीवन्मुक्त परमात्मा, अर्हन्त कहलाता है, इस गुणस्थान की स्थिति जघन्य एक अंतर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट देशोन करोड़ पूर्व है।

(१४) अयोगी केवली गुणस्थान—सयोगी केवली मन, वचन, काया

के योगों का निरोध करके अयोगी केवली अर्थात् योग रहित बनते हैं। सयोगी केवली योग निरोध जिस क्रम से करते हैं, वह क्रम निम्न प्रकार से हैं :

त्रिविध योग बादर और सूक्ष्म दोनों प्रकार के होते हैं। केवली उन में प्रथम बादर काययोग द्वारा बादर मनोयोग का निरोध करते हैं, पश्चात् बादर वचनयोग का निरोध करते हैं। इस प्रकार तीन प्रकार के बादर योगों में से दो बादर योग चले जाने पर एक बादर काययोग शेष रहता है। फिर सूक्ष्म काय योग से उस बादर काययोग का निरोध करते हैं, सूक्ष्म मनोयोग का निरोध करते हैं और सूक्ष्म वचनयोग का निरोध करते हैं। तब केवल सूक्ष्म काययोग शेष रह जाता है। तब तीसरा "सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाती'—नामक शुक्लध्यान प्राप्त करके सूक्ष्म काययोग का भी निरोध करते हैं। उस समय जीव के समस्त आत्मप्रदेश मेरू शैल के समान निष्प्रकंप हो जाते हैं। उसे ही शैलेशीकरण कहते हैं। इस गुणस्थान का काल—अ, इ, उ, ऋ, लृ इन पांच ह्रस्व अक्षरों के उच्चारण करने जितना है। यहां समुच्छिन्न क्रियाऽ निवृत्ति नामक चौथा शुक्लध्यान का भेद होता है। इस ध्यान के अन्त में जीव सकल अघाती कर्मों को क्षय करके अपनी स्वभाविक ऊर्ध्वगति द्वारा लोकाग्र भाग पर पहुंच कर सर्वदा के लिए वहां स्थिर हो जाता है। उस समय उस सिद्धात्मा की अवगाहणा अन्तिम शरीर की अवगाहणा से $\frac{2}{3}$ होती है। तथा वह आत्मा अनन्त दर्शन ज्ञान का धारक होकर परमानन्द में सर्वदा लीन रहता है।

प्रश्न 477–आठों कर्मों का स्वरूप क्या है ?

उत्तर—आठों कर्मों का स्वरूप निम्न प्रकार से है :

(१) ज्ञानावरणीय कर्म—जो कर्म ज्ञान को ढकता है, ज्ञान का प्रकाश कम करता है उसे ज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं। जैसे आंखों में देखने की शक्ति है। किन्तु आंखों पर पट्टी बांधी जाए तो मनुष्य देख नहीं सकता, उसी प्रकार आत्मा में सब कुछ जानने की शक्ति होते हुए भी वह ज्ञानावरणीय कर्म के कारण नहीं

जान सकता। ज्ञान के पांच भेद हैं—(१) मतिज्ञान (२) श्रुतज्ञान (३) अवधिज्ञान (४) मनः पर्यवज्ञान (५) केवलज्ञान। इसी कारण ज्ञानावरणीय की उत्तर प्रकृतियां भी पाँच प्रकार की हैं, जैसे (१) मतिज्ञानावरणीय (२) श्रुतज्ञानावरणीय (३) अविधज्ञानावरणीय (४) मनः पर्यज्ञानावरणीय और केवल ज्ञानावरणीय। जीव छः कारणों से ज्ञानावरणीय कर्म उपार्जन करता है। (१) ज्ञान ज्ञानी तथा ज्ञान के साधनों के प्रति शत्रुता रखना, विरोध भाव रखना (२) ज्ञान दाता गुरु का नाम छिपाना (३) ज्ञान ज्ञानी या ज्ञान के साधनों का नाश करना (४) ज्ञान, ज्ञानी या ज्ञान के साधनों के प्रति द्वेष करना (५) ज्ञान, ज्ञानी या ज्ञान के साधनों की आशातना करनी। कोई व्यक्ति ज्ञान प्राप्त करता हो उस में अन्तराय डालना। शास्त्रकारों ने कहा है कि—

विराधयन्ति ये ज्ञानं, मनसा ते भवान्तरे।
स्युः शून्यमनसो मर्त्या, विवेकपरिवर्जिताः॥

अर्थात्—जो मन के द्वारा ज्ञान की विराधना करता है। वह परभव में शून्य मन वाला और विवेक रहित होता है, वरदत्त और गुण मंजरी का दृष्टांत तो प्रसिद्ध ही है। गुण मंजरी ने पूर्व जन्म के अन्दर ज्ञान की विराधना की थी, इसीलिए वह जन्म से ही रोगी और गुंगी थी।

(२) दर्शनावरणीय कर्म—जो कर्म आत्मा के दर्शन गुण को ढकता है, उसे दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं। दर्शन अर्थात् वस्तु का समान्य बोध। जैसे राजा से भेंट करनी हो तो द्वारपाल अन्दर नहीं जाने देता उसी प्रकार ये कर्म वस्तु का सामान्यबोध नहीं होने देता।

दर्शनावरणीय कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ नव हैं :

(१) चक्षुःदर्शनावरणीय—जो कर्म चक्षु इन्द्रिय द्वारा होने वाले वस्तु के समान्य बोध को रोकता है उसे चक्षुदर्शनावरणीय कर्म कहते हैं।
(२) अचक्षुःदर्शनावरणीय—जो चक्षु को छोड़ कर शेष चार इन्द्रियों तथा पांचवें मन के द्वारा होने वाले सामान्य बोध को

रोकता है उसे अचक्षु दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं।

(३) अवधि दर्शना वरणीय—जो आत्मा को होने वाले रूपी द्रव्य के सामान्य बोध को रोके उसे अवधिदर्शनावरणीय कर्म कहते हैं।

(४) केवल दर्शनावरणीय जो केवल दर्शन द्वारा होने वाले वस्तु-मात्र के सामान्य बोध रूप के केवल दर्शन को रोके उसे केवल दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं। निद्रा में जीव उपयोग लगाने की स्थिति में नहीं होता इसलिए निद्रा के पांच प्रकार दर्शनावरणीय कर्म की उत्तर-प्रकृतियाँ मानी गई हैं।

(५) निद्रा--जिस नींद में आसानी से जगाया जा सके उसे निद्रा कहते हैं।

(६) निद्रा-निद्रा—जिस नींद में कठिनाई से जगाया जा सके उसे निद्रा-निद्रा कहते हैं।

(७) प्रचला—बैठे बैठे या खड़े खड़े आने वाली नींद में आसानी से जगाया जा सके उसे प्रचला कहते हैं।

(८) प्रचला प्रचला—जिस नींद में बैठे बैठे या खड़े खड़े कठिनाई से जगाया जा सके उसे प्रचला-प्रचला कहते हैं।

(९) स्त्यानर्द्धि—जिस नींद में दिन में सोचा हुआ कार्य मनुष्य रात में उठ के कर डाले और जागने पर उसे याद नहीं आए उसे स्त्यानर्द्धि कहते हैं।

(३) वेदनीय कर्म :—जो कर्म आत्मा को दुःख सुख का अनुभव कराता है, उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। आत्मा अपने स्वरूप से आनंदघन है फिर भी इस कर्म के कारण वह काल्पनिक सुख दुःख का अनुभव करता है। जिस प्रकार शहद से लिपटी हुई तलवार की धार को चाटने से सुख का अनुभव होता है और जीभ कटने से दुःख का अनुभव होता है। इस कर्म की उत्तर प्रकृतियां दो हैं—शातावेदनीय और अशातावेदनीय।

(४) मोहनीयकर्म—जिस कर्म के कारण जीव मोहग्रस्त हो कर संसार में फंसता है, उसे मोहनीय कर्म कहते हैं। यह कर्म मदिरा पान के समान है जैसे मदिरापान से व्यक्ति को अपना भान नहीं रहता इसी प्रकार इस कर्म के कारण मनुष्य की विवेक बुद्धि तथा वर्तन ठीक नहीं रहता। मोहनीय कर्म को समस्त कर्मों का राजा कहा है। जब तक राजा बलवान रहता है, तो सेना भी टिकी रहती है। राजा के भाग जाने पर सेना नहीं टिकती, ठीक इसी प्रकार मोह राजा के नाश हो जाने पर सभी कर्म ढीले पड़ जाते हैं। मोहनीय कर्म के दो भेद हैं—दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय। दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतियां हैं और चारित्र मोहनीय की पच्चीस प्रकृतियाँ हैं। मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोटा कोटि सागर है।

(५) आयुष्यकर्म—जिस कर्म के कारण आत्मा को एक शरीर में निश्चित समय तक रहना पड़ता है उसे आयुष्य कर्म कहते हैं। यह कर्म कारावास (बन्दीगृह) के समान है, जैसे अपराधी को निश्चित काल पूरा होने तक कारावास में रहना पड़ता है उसी प्रकार आत्मा को आयुष्य पूरा होने तक एक शरीर में रहना पड़ता है। आयुष्य कर्म की उत्तर प्रकृतियां चार हैं—

(१) देवता का आयुष्य (२) मनुष्य का आयुष्य (३) तिर्यंच का आयुष्य (४) नरक का आयुष्य।

(६) नाम कर्म—जिस कर्म के कारण आत्मा शुभ अशुभ शरीर धारण करती है उसे नाम कर्म कहते हैं। यह कर्म चित्रकार के समान है। जैसे चित्रकार कई प्रकार के रंग-बिरंगे चित्र बनाता है। उसी प्रकार इस कर्म के कारण अच्छा रूप, बुरा रूप, यश, अपयश, सौभाग्य और दुर्भाग्य आदि की प्राप्ति होती है। इस कर्म की उत्तर प्रकृतियां एक सौ तीन हैं।

(७) गोत्र कर्म—जिस कर्म के कारण जीव को उच्चता-नीचता प्राप्त होती है। उसे गोत्र कर्म कहते हैं। यह दो प्रकार हैं—उच्च गोत्र और नीच गोत्र। जैसे प्रख्यातकुल में अथवा ऊँचे

कुल में जन्म लेने वाला उच्चगोत्री कहलाता है और नीच कुल में अथवा निंद्यकुल में जन्म लेने वाला नीच गोत्री कहलाता है। स्वनिंदा, पर प्रशंसा, सद्गुणों का उद्भाव, नम्रता तथा पठन-पाठ, की प्रवृत्ति द्वारा जीव उच्च-गोत्र बांधता हैं और परनिंदा स्वप्रशंसा, असद्गुणों का उद्भाव, अहकार आदि से जीव नीच गोत्र बांधता है।

(८) अन्तराय कर्म—जिस कर्म के कारण आत्मा की शक्ति में अन्तराय पड़ता है, अथवा विघ्न आता है उसे अन्तराय कर्म कहते हैं। इस कर्म की उत्तर प्रकृतियां पाँच हैं—(१) दानांतराय (२) लाभांतराय (३) भोगांतराय (४) उपभोगांतराय (५)वीर्यांतराय। यह कर्म राजा के कोषाध्यक्ष के समान है। जैसे—राजा ने किसी व्यक्ति को एक लाख रुपये देने की चिट्ठी लिख कर कोषाध्यक्ष के पास भेजा, वह व्यक्ति कोषाध्यक्ष के पास जाता है, उसे वहां पर कोषाध्यक्ष नहीं मिलता अथवा फिर आने के लिए कह देता है। यह सब अन्तराय कर्म के कारण ही होता है। (प्र. १० भी देखें)

प्रश्न 478–तीर्थंकर की माता तीर्थंकर के गर्भ में आने पर कितने स्वप्न देखती है ?

उत्तर—तीर्थंकर की माता तीर्थंकर के गर्भ में आने पर १४ महा-स्वप्न देखती है। ये स्वप्न तीर्थंकर के जन्म होने के लक्षण के रूप में जाने जाते हैं। चक्रवर्ती की माता चक्रवर्ती के गर्भ में आने पर यही १४ स्वप्न धुंधले से देखती है। वासुदेव की माता सात स्वप्न देखती है। बलदेव की माता चार तथा मांडलिक राजा की माता कोई एक स्वप्न देखती है। ये १४ स्वप्न निम्न हैं—

१. हाथी २. बैल ३. सिंह ४. लक्ष्मी देवी ५. पुष्पमाला ६. चन्द्रमा ७. सूर्य ८. ध्वजा ९. कलश १०. पद्म सरोवर ११. क्षीर समुद्र १२. देव विमान १३. रत्नों का ढेर १४. निर्धूम अग्नि।

स्वप्नों का क्रम यही है लेकिन श्री ऋषभदेव की माता मरूदेवी ने प्रथम स्वप्न बैल का देखा था। (कल्पसूत्र टीका)

प्रश्न 479—मनुष्य के शरीर से आत्मा किस किस स्थान से (मृत्यु के समय) निकलती है तथा उसका क्या फल है ?

उत्तर—भिन्न भिन्न अंगों से आत्मा के निकलने के कारण जीव भिन्न गतियों में जाता है—जो निम्न कोष्ठक से स्पष्ट है —

आत्मा के निकलने का स्थान	गति
दोनों पैर	नरक गति
दोनों जानु	तिर्यंच गति
वक्ष (छाती)	मनुष्य गति
मस्तक	देव गति
सर्वांग	सिद्धिगति (मोक्ष)

प्रश्न 480—जीव कितने प्रकार से पुण्योपार्जन करता है ?

उत्तर—जीव ६ प्रकार से पुण्योपार्जन करता है—जिसका वर्णन निम्नलिखित रूप से है :—

१. अन्न पुण्य—सच्चे श्रमण-साधुओं को तथा साधर्मी भाईयों को भक्तिपूर्वक आहार—भोजन देने से अथवा निःसहाय पीड़ित, भिखारी, दीन दुःखियों को भोजन देने से अन्न पुण्य होता है।

२. पान पुण्य—साधुओं को अचित्त जल देने से तथा पशु-पक्षियों व मनुष्यों के लिए पानी की परव (प्याऊ) लगाने से, किसी प्यासे को पानी पिलाने से पान पुण्य होता है।

३. वस्त्र पुण्य—साधुओं को शुद्ध वस्त्र वहोराने से, असहायों को वस्त्र देने से तथा सर्दी में तदनुकूल वस्त्र आदि का दान करने से वस्त्र-पुण्य होता है।

४. लयणपुण्य—साधुओं को शहर या गाँव में अच्छे मकान में ठहराना—जिससे उनको सुखशाता रहे, अथवा मुसाफिरों के लिए धर्मशाला, कमरे आदि बनवाने से लयण पुण्य होता है।

५. शयन पुण्य—त्यागी महात्माओं को उनके संयमानुकूल फलक, संथारा, आदि देने से तथा अतिथि या याचक को विछौना देने से पुण्य होता है।

६. मन पुण्य—प्रत्येक प्राणी के प्रति अपने मन में वात्सल्य रखने से, अच्छी भावनाओं से तथा परोत्कर्ष की भावना से पुण्य होता है।

७. वचन पुण्य—हितकारी, परिमित, मीठा तथा सत्य वचन कहने से, अशांत व्यक्ति को सांत्वना देने से, गुणियों का गुणगान करने से पुण्योपार्जन होता है।

८. काया पुण्य—साधुओं को अपने शरीर से शाता पहुंचाने से, दुःखी पीड़ित लोगों की शारीरिक सेवा या सहायता करने से पुण्य होता है।

९. नमस्कार पुण्य—साधुओं, गुणवानों, विद्वानों, वुजुर्गों, अध्यापकों आदि का वहुमान तथा उन्हें नमस्कार करने से पुण्योपार्जन होता है।

इस प्रकार से पुण्योपार्जन करने वाला ही सभी प्रकार का वैभव तथा साहाय्य प्राप्त करता है। पुण्य मोक्षमार्ग में सहायक है। पुण्य का पर्याप्त संचय होने पर मानव को मोक्षमार्ग, नवकार, व ज्ञान, दर्शन, चारित्र की प्राप्ति होती है अतः मोक्ष भी प्राप्त होता है। पुण्य को शास्त्रकारों ने उपादेय तथा हेय भी माना है। इसके हेय होने का तात्पर्य इसको छोड़ देने से नहीं है। पुण्य तो सतत करते रहना चाहिए—अन्यथा पाप का वन्ध होता रहेगा जो वहुत भयंकर स्थिति है। पुण्य केवल ज्ञान से पूर्व अपने आप ही छूट जाता है—उसे छोड़ने की जरूरत नहीं पड़ती। यदि किसी का मन सदैव निर्जरा या संवर में लगा रहता है तो उसे पुण्य से कोई प्रयोजन नहीं है। धर्म करते हुए भी लक्ष्य निर्जरा का होना चाहिए—भौतिक सुखों का नहीं। क्योंकि निर्जरा (अथवा पुण्य) से भौतिक सुख अनायास ही मिल जाते हैं।

प्रश्न 481–जीव किन कारणों से पापोपार्जन करता है ?

उत्तर—जीव १८ प्रकार से पापों का बन्धन करता है। जीव पापों का बन्ध तो हस हस के करता है परन्तु भोगने के समय रोता है। अतः पाप करने से पहले ही सोचना चाहिए। पाप के १८ कारण निम्नलिखित हैं :—

१. प्राणातिपात (जीवहिंसा) २. मृषावाद (झूठ बोलना) ३. अदत्तादान (बिना दी हुई वस्तु लेना) ४. मैथुन (शील का पालन न करना) ५. परिग्रह (पदार्थों पर ममता रखना) ६. क्रोध ७. मान ८. माया ९. लोभ १०. राग ११. द्वेष १२. कलह १३. अभ्याख्यान (झूठा कलंक लगाना) १४. पैशुन्य (चुगली करना) १५. रति अरति (खुशी तथा शोक) १६. पर-परिवाद (निंदा करना) १७. माया मृषावाद (कपट सहित झूठ बोलना) १८. मिथ्यात्वशल्य (कुदेव कुगुरू कुधर्म पर श्रद्धा रखना)।

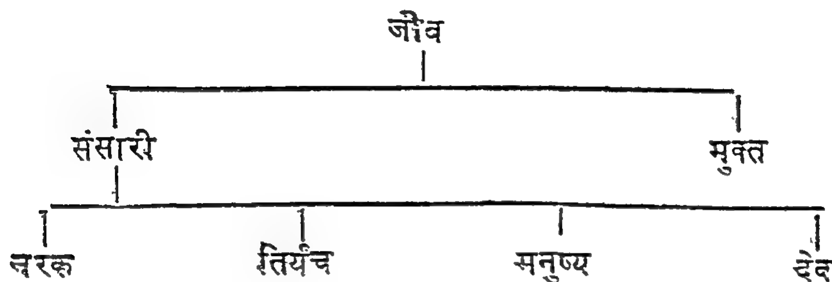
प्रश्न 482–क्या स्वर्ग के देवता मनुष्य की भांति ही विषय सेवन करते हैं ?

उत्तर—सौधर्म तथा ईशान देव लोक के देवता मनुष्यों की भांति ही विषय सेवन करते हैं। क्योंकि देवियों की उत्पत्ति ईशान देव लोक तक ही है। चौथे देव लोक तक के देवता देवियों के स्पर्श से विषय तृप्ति का अनुभव करते हैं। छठे देवलोक तक के देवता देवियों का रूप देखने से ही विषय तृप्ति का अनुभव करते हैं। आठवें देवलोक तक के देवता देवियों का शब्द सुनने से ही विषय तृप्ति का अनुभव करते हैं। नवमें देवलोक से लेकर बारहवें देवलोक तक के देवता, देवियों का चिन्तन करने मात्र से ही विषय तृप्ति का अनुभव करते हैं। (योग शास्त्र ४)

प्रश्न 483–संसारी जीवों के मुख्य भेद कितने हैं तथा कौन २ से हैं ?

उत्तर—संसारी जीवों के मुख्य भेद ५६३ हैं। जिनमें देवताओं के

१९८, नरक के १४, तिर्यंच के ४८ तथा मनष्यों के ३०३ भेद हैं। ये भेद निम्नलिखित कोष्ठकों से स्पष्ट हैं।



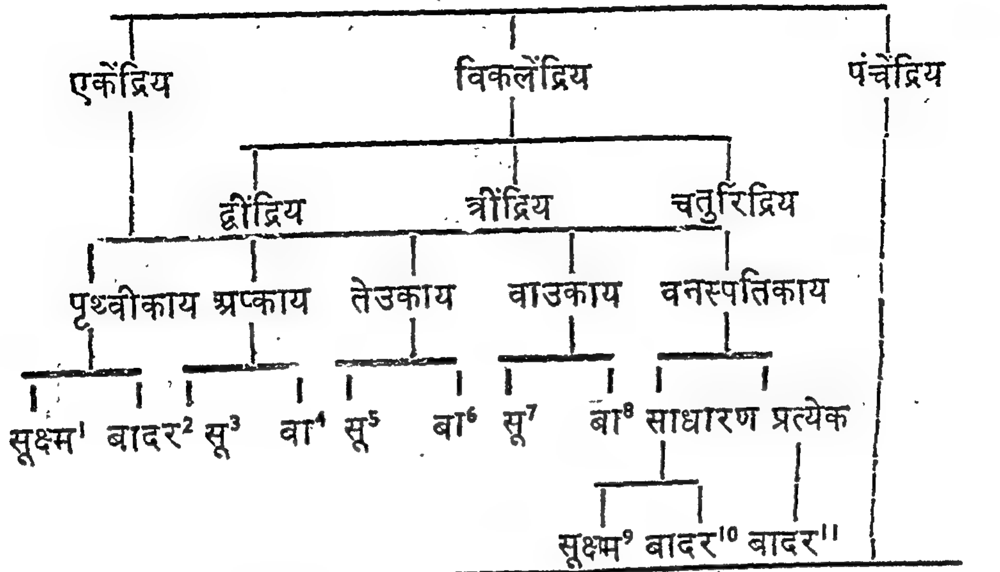
इनका विस्तृत वर्णन इस प्रकार है :—

(१) ७ नरक[1] (इनके पर्याप्त अपर्याप्त करने से १४ भेद होते हैं)

नोट—पर्याप्तियां ६ हैं :—१. आहार २. शरीर ३. इन्द्रिय ४. श्वासोच्छ्वास ५. भाषा और ६. मन। जिस जीव की जितनी पर्याप्तियां होती हैं—यदि वह उन सभी को पूर्ण कर लेता है तो वह पर्याप्त शब्द से अभिहित किया जाता है। एक भी पर्याप्ति कम होने पर वह अपर्याप्त ही कहा जाता है। एकेंद्रिय को प्रथम चार, विकलेंद्रिय तथा असंज्ञी पंचेंद्रिय को प्रथम ५, तथा संज्ञी पंचेंद्रिय को ६ पर्याप्तियां होती हैं।

1. सात नरकों के नाम यह हैं—(१) रत्न प्रभा (२) शर्कराप्रभा (३) वालुकाप्रभा (४) पंक प्रभा (५) धूम प्रभा (६) तमः प्रभा (७) महातमः प्रभा। ये क्रमशः नीचे नीचे हैं।

(२) तिर्यंच के ४८ भेद



इस प्रकार कुल एकेंद्रिय के ११, विकलेंद्रिय के ३, तथा पंचेंद्रिय के २० मिला कर २४ भेद हुए। इनमें प्रत्येक के पर्याप्त अपर्याप्त ये २-२ भेद करने से २४ × २ = ४८ भेद हुए। कुछ विशेष शब्दों के अर्थ :—

(क) विकलेंद्रिय—जिसकी पूरी इंद्रियां न हों, कम हों।

(ख) सूक्ष्म—जो देखे न जा सकें।

(ग) वादर—जो दृष्टिगोचर हों तथा हिलें जुलें।

(घ) गर्भज—जो गर्भ से उत्पन्न हों—इसके ३ भेद हैं :— जरायुज (मनुष्य आदि), अंडज (पक्षी आदि), पोतज (हाथी आदि)।

(ङ) संमूर्च्छिम—जो १४ गंदे स्थानों में पैदा हों तथा उसी आकार के हों।

(च) जलचर—जो जल में रहे (मछली आदि)।

(छ) चतुष्पाद—जिन के चार पैर हों (गाय आदि)।

(ज) उरपरिसर्प—जो पेट के बल चलें (सर्पादि)।

(झ) भुजपरिसर्प—जो भुजा के बल चलें (गिलहरी आदि)।

(ञ) खेचर—जो आकाश में उड़ें (पक्षी)।

(३) देवता के १९८ भेद :—

देवताओं के मुख्य ४ भेद हैं—भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और वैमानिक। इनके अवांतर भेद इस प्रकार से हैं :—

१० भवनपति (इनका निवास पृथ्वी के नीचे है)।
८ व्यंतर ,, ,, ,,
८ वाण व्यंतर ,, ,, ,,
५ चरज्योतिष (सूर्य आदि भ्रमणशील विमान)।
५ स्थिर ज्योतिष (अढ़ाई द्वीप के बाहर स्थिर सूर्यादि)।
१२ कल्पोपन्न (वैमानिक देवलोक– इनमें स्वामी इंद्र है शेष उसके अधीन हैं)।
९ ग्रैवेयक (इनमें स्वामी सेवक संबंध नहीं है)।
५ अनुत्तर (ये सब से सुखी देवता हैं, एक भवावतारी हैं)।
३ किल्विषक (द्वारपाल, ढ़ोलवादक आदि देवता)।
९ लोकांतिक (ब्रह्म देवलोक के नीचे रहने वाले तथा दीक्षा के लिए तीर्थंकरों को प्रार्थना करने वाले)।
१५ परमाधामी (ये नारकी जीवों को दंड देते हैं)।
१० तिर्यक् जृंभक (तीर्थंकर के घर में धन भरने वाले)।
ये ९९ भेद पर्याप्त अपर्याप्त करने से १९८ हो जाते हैं।

(४) मनुष्यों के ३०३ भेद :—

अढ़ाई द्वीप के, ५ भरतक्षेत्र, ५ ऐरावत तथा ५ महाविदेह की, कुल १५ कर्म-भूमियां।

अढ़ाई द्वीप में हैमवतादि क्षेत्रों की कुल ३० अकर्मभूमियां, तथा जंबूद्वीप के हिमवान् तथा शिखरी पर्वतों से जो ४ दाढ़ाएं लवण

समुद्र में पूर्व पश्चिम में गई हैं—उनमें प्रत्येक में १४-१४ द्वीप हैं, यह कुल ५६ अन्तर्द्वीप कहलाते हैं।

इस प्रकार १५ + ३० + ५६ = १०१ क्षेत्रों के १०१ पर्याप्त तथा १०१ अपर्याप्त एवं १०१ संमूच्छिम जीव हैं। इस प्रकार ये ३०३ भेद मनुष्यों के हैं।

प्रश्न 484—सिद्धों के आठ गुण कौन कौन से हैं?

उत्तर—८ कर्मों के क्षय से सिद्ध भगवान् के आत्मीय ८ गुण प्रकट होते हैं, जो निम्न प्रकार से हैं :—

१. अनंत ज्ञान—ज्ञानावरणीयकर्म के संपूर्ण क्षय होने से वे लोक व अलोक के रूपी या अरूपी समस्त पदार्थों को तथा उनकी त्रिकालवर्ती पर्यायों को प्रतिक्षण जानते हैं।

२. अनंत दर्शन—दर्शनावरणीयकर्म के क्षय से वे लोकालोक में त्रिकालवर्ती रूपी अरूपी पदार्थों को प्रतिक्षण देखते हैं।

३. अव्याबाध सुख—वेदनीय कर्म के क्षय से वे बाधारहित, निरंतर व अक्षय नित्य (शाश्वत) सुख को प्राप्त कर लेते हैं।

४. अनंत चरित्र—मोहनीय कर्म के क्षय से वे सदा निज स्वभाव में अवस्थित होकर स्वरूप में ही सहज रमण करते हैं।

५. अक्षय स्थिति—आयु कर्म के क्षय होने के कारण वे अक्षय (नष्ट न होने वाली) स्थिति को प्राप्त हो जाते हैं।

६. अरूपित्व—नाम कर्म के क्षय से वे शरीर अंगोपांग, वर्ण, गंध, रस व स्पर्श से मुक्त हो जाते हैं तथा अरूपी (रूपरहित) हो जाते हैं जो कि आत्मा का निजी स्वभाव है।

७. अगुरूलघुत्व—गोत्र कर्म के क्षय से वे ऊंच नीच के व्यवहार से रहित हो जाते हैं।

८ अनंत वीर्य—अंतराय कर्म के क्षय से उन्हें अनंत दान, लाभ, भोग, उपभोग तथा वीर्य (शक्ति) प्राप्त हो जाता है। इस स्वाभाविक शक्ति से वे क्षणमात्र में सभी कार्य कर सकते हैं, लोक को अलोक तथा अलोक को लोक बना सकते हैं लेकिन इच्छा

का क्षय हो जाने के कारण वे ऐसा कभी भी नहीं करते हैं। न ही उन्हें कुछ करने की आवश्यकता ही होती है। सिद्ध भगवान को किसी के वरदान या शक्ति विशेष से नहीं, बल्कि स्वपुरुषार्थ से ही सिद्धि (मुक्ति) की प्राप्ति होती हैं।

प्रश्न 485—मंदिर में जाने तथा प्रभु का पूजन करने में क्या २ लाभ होते हैं?

उत्तर—श्री जिनमंदिर जी में जाकर प्रभु प्रतिमा के दर्शन वंदन पूजन से अनेक लाभ होते हैं। प्रभु के दर्शन से पापों का नाश होता है, वंदन से इच्छापूर्ति होती है तथा पूजन से लक्ष्मी, वैभव तथा आत्मिक शांति की प्राप्ति होती है। तथाहि—

दर्शनाद् दुरितध्वंसि, वंदनाद् वांछित प्रदः।
पूजनात् पूरकः श्रीणां, जिनः साक्षात् सुरद्रुमः॥

इसके अतिरिक्त जिन भगवान् के दर्शनादि से अन्य भी अनेक लाभ हैं। जो इस प्रकार हैं—

१. जिन मंदिर में जाने का विचार मन में आने पर एक उपवास का फल मिलता है। देव मन्दिर की ओर चलने पर तेले की तपस्या का लाभ मिलता है। दर्शन करने से १ मास की तपस्या का लाभ मिलता है। पूजा करने से १००० वर्ष की तपस्या का फल मिलता है तथा स्तुति इत्यादि से अनंतगुणा फल मिलता है। भगवान् की भक्ति से रावण, श्रेणिक, कृष्ण आदि ने तीर्थंकर गोत्र का उपार्जन किया है। अतः मंदिर में जाने से भी प्रभु भक्ति के द्वारा तप तथा पुण्य का उपार्जन होता है।

२. भगवान् की अंग पूजा करने से समस्त विघ्न शांत होते हैं। अग्रपूजा से सांसारिक सुखों की प्राप्ति होती है तथा भाव पूजा से मोक्षपद की प्राप्ति होती है। श्रद्धायुक्त सविधि पूजा करने से जीव सांसारिक सुख तथा स्वर्ग आदि की प्राप्ति करके अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है क्योंकि पूजा से मानसिक शांति प्राप्त होती है, तदनंतर शुभ ध्यान होता है तथा शुभ ध्यान से मोक्ष मिलता है।

३. मन्दिर जी में जयवीयराय पढ़ते समय 'लोगविरुद्धच्चाग्रो' आदि शब्द आते हैं—अर्थात् लोक विरुद्ध चीजों का त्याग, गुरु जनों की पूजा, परोपकार आदि करूंगा. ऐसी भावना मन में पैदा होने से अपने दुष्कृत्यों का पश्चाताप होता है तथा आगे से पाप न करने की प्रेरणा प्राप्त होती है। स्वयं को लज्जा आने लगती है। अपने मस्तक पर तिलक लगाते समय यह भाव उत्पन्न होते हैं कि मैं वीतराग भगवान् की आज्ञा को शिरोधार्य करता हूं। इस प्रकार प्रभु दर्शन से हृदय पापभीरू बनता है तथा बदलना शुरू हो जाता हैं।

४. मन्दिर में जाने से शुद्ध वातावरण मिलता है जिसमें रहने से पाप के विचार नहीं आते। शुद्ध वातावरण के कारण मन भक्ति में लगता हैं, शुभ विचार आते हैं, मन धर्मध्यान में लीन होता है। जब तक मन्दिर में रहते हैं, तब तक प्राणी १८ पाप स्थानों से बचा रहता है। दुर्गुण दूर होकर सद्गुणों की प्राप्ति होती है।

५. तीर्थंकर भगवान की शाँत मुद्रा देखकर मन में विचार आता है कि भगवान १२ गुणों से युक्त तथा १८ दूषणों से रहित हैं— इस प्रकार उनके स्मरण व दर्शन से उनके गुण हृदय पर चित्रित हो जाते हैं तथा उनके समान बनने की भावना पैदा होती है।

६. जिन प्रतिमा के दर्शन से सम्यग्दर्शन निर्मल होता है। दान-शील आदि की तरह जिन दर्शन भी कर्म क्षय में सहायक है तथा आत्मा को दुर्गति में जाने से रोक कर क्रमशः मोक्ष की प्राप्ति कराता है।

प्रश्न 486—अष्ट प्रकारी पूजा करते समय कौन कौन से दोहे बोलने चाहिएं ?

उत्तर—संक्षिप्त अष्ट प्रकारी पूजा करते समय निम्नलिखित दोहे बोलने चाहिएं तथा प्रत्येक दोहे के अंत में मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए।

१. जल पूजा—

गंगा नदी फुनि तीरथ जल से कनकमय कलशे भरी,
निज शुद्ध भावे विमल थावे न्हवन जिनवर को करी।
भव पाप ताप निवारणी प्रभु पूजना जग हितकरी,
करूं विमल आतम कारणे व्यवहार निश्चय मन धरी ॥
मंत्र–ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय, परमेश्वराय, जन्म जरा मृत्यु निवारणाय श्रीमते जिनेंद्राय जलं यजामहे स्वाहा।

२. चन्दन पूजा :—

सरस चन्दन घसिय केसर भेली माहीं बरास को,
नव अंग जिनवर पूजते भवि पूरते निज आस को।
भवपाप ताप......
मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं...चंदनं यजामहे

३. पुष्प पूजा :—

सुरभि अखण्डित कुसुम मोगरा, आदि से प्रभु पूजिए,
पूजा करो शुभ योग तिग, गति पंचमी फल लीजिए।
भव पाप ताप......
मंत्र :—ॐ ह्रीं श्रीं...पुष्पं...

४. धूप पूजा :—

दशाँग धूप धुखाए के भवि धूप पूजा से लिये,
फल ऊर्ध्व गति सम धूप देहि निज पाप भव-भव के किये।
भव पाप ताप......
मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं...धूपं...

५. अक्षत पूजा :—

शुभ द्रव्य अक्षत पूजना, स्वस्तिक सार बनाइए।
गति चार चूरण भावना, भवि भाव से मन भाइए ॥
भव पाप ताप...
मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं...अक्षतान्...

६. नैवेद्य पूजा :—

सरस मोदक आदि से भरि थाली जिन पुर धारिए।
निर्वेदी गुणधारी मने निज भावना जनि वारिए॥
भव पाप ताप......

मंत्र—ॐ ह्रींश्रीं...नैवेद्यं...

७. फल पूजा :—

फल पूर्ण लेने के लिए फल-पूजना जिन कीजिए।
पण इंद्रि दामी कर्म वामी शाश्वता पद लीजिये।
भव पाप ताप......

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं.. फलं...

प्रश्न 487—चार भावनाओं का क्या स्वरूप है ?

उत्तर :—जैनशास्त्रकारों ने चार भावनाओं का उल्लेख किया है, ये चार भावनाएं ऐसी हैं जो सभी में मानवता के गुणों को दृढ़ करती हैं। ये चार भावनाएं तथा इनका स्वरूप निम्न प्रकार से हैं :—

(१) मैत्री भावना : प्राणी मात्र के प्रति मैत्री भाव। अपनी आत्मा के लिए तथा दूसरों के लिए यह भावना सुख शान्ति और आनन्द देने वाली है। इससे निर्भयता आती है। जब सब की आत्मा स्वतुल्य माने तो पर कौन ? भय किससे ? आचारांग में भी कहा गया है कि समभाव में धर्म है। वहां यह भी आदेश है 'आयओ बहिया पास' दूसरों को अपने समान समझो। आवश्यक सूत्र में उल्लेख है "मेरी सब प्राणियों से मित्रता है, वैर किसी से नहीं।" स्वयं मित्र बन कर दूसरों को मित्र बनाया जा सकता है। मित्र साथी को सन्मार्ग में प्रवृत्त करता है और कुमार्ग से बचाता है। यदि सब मित्र भाव से रहें तो विश्व का रूप ही बदल जाएगा। विश्व शान्ति की स्थापना का भी यह प्रशस्त मार्ग है।

(२) प्रमोद भावना :—इसका भाव है कि गुणी जनों को देख कर मन में प्रसन्नता और हर्ष का अनुभव करना। महाकवि गेटे के

अनुसार प्रसन्नता सभी गुणों की माता है। यह आत्मा की स्वस्थता की प्रतीक है। सज्जनों का, गुणियों का गुणानुवाद, उनकी प्रशंसा आत्मा में सद्गुणों को विकसित करती है। धीरे-धीरे सत् संगति की प्रेरणा प्राप्त होती है। व्यवहार भाष्य में मनः प्रसाद को कर्म-निर्जरा का कारण बताया गया है। गुणियों का समादर, सम्यक्त्व का भूषण है। शिष्टाचार का प्रशंसक बनना, मार्गानुसारी का गुण है। दूसरों के दोष नहीं, गुण देखने चाहिएं। गुणी का, ज्ञानवान् का अपमान करना, उससे घृणा करना, उनके अनिष्ट की दुर्भावना करना, ज्ञानावरणीय कर्म के बन्धन के कारण हैं।

(३) करुणा, अनुकंपा या दया भावना :—संसार में जो प्राणी हैं, वे घृणा, उपेक्षा, तिरस्कार, अत्याचार आदि के अधिकारी नहीं, बल्कि करुणा, दया, उदारता, सहानुभूति के पात्र हैं। कौन सा जीव या मानव है जिस के जीवन में सदैव वसन्त अथवा शुक्ल पक्ष रहा है। कभी हम भी दुःख के भाजन हो सकते हैं। तब दीन दुःखियों के प्रति निर्ममता क्यों ? दयार्द्र हृदय मूल्यवान् सम्पत्ति है। दूसरों के साथ दया की भावना व्यक्ति को दुःख से मुक्त करती है। भगवान् महावीर स्वामी जी ने कहा है कि किसी भी प्राणी को न तो मारना चाहिए, न उस पर अनुचित शासन करना चाहिए और न ही उसे पराधीन बनाना चाहिए। अनुकंपा भी सम्यक्त्व का चिह्न है और साता वेदनीय कर्म के बंधन का हेतु है। भगवान् महावीर, बुद्ध और ईसा आदि दया भाव के कारण विश्व वंद्य बने।

(४) माध्यस्थ्य भाव :—उपर्युक्त तीन भावनाओं की साधना विशेष कठिन नहीं। परन्तु अपने शत्रु के प्रति, विपरीत (प्रतिकूल) व्यवहार करने वाले के प्रति मौन कैसे धारण किया जाए ? उससे विमुख कैसे हुआ जा सकता है। दुष्ट दुष्टता सरलता से नहीं छोड़ता। उसकी उपेक्षा करना वानर के हाथ में बम देना है। परन्तु जैन धर्म मानता है कि भी आत्मा शत-प्रतिशत दुष्ट या पापी नहीं। आज जो शत्रु है वह सदैव ऐसा नहीं रहता। यदि हम कुछ समय तटस्थ रहें, प्रतिकार न करें तो शत्रु की वृद्धि से

अज्ञान का परदा हट सकता है। सूत्र कृतांग में कहा गया है कि बुद्धिमान् किसी से कलह न करे तो संघर्ष हट जाता है। (संस्कृत के एक श्लोक में चार भावनाओं का संक्षिप्त अर्थ है; "पर-हित-चिन्ता मैत्री, पर-दुःख-विनाशिनी तथा करुणा। पर-सुखतुष्टि-मुदिता, परदोषोपेक्षणमुपेक्षा।")

प्रश्न 488—श्रावक के १२ व्रतों का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—भगवान् महावीर स्वामी ने सम्यग्दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र को मोक्ष मार्ग कहा है। जैन शास्त्रों में चारित्र को दो रूपों में देखा गया है। सर्व विरति (साधु के ५ महाव्रत) तथा देश विरति (गृहस्थ के १२ व्रत)।

जो मानव साधु नहीं बन सकता, उसे शुद्ध गृहस्थ धर्म का पालन अवश्य करना चाहिए। यदि कोई गृहस्थ १२ व्रत न भी ले सके तो उसे कम से कम १-२ व्रत तो अवश्य लेने चाहिएं जिससे अन्य व्रतों को लेने की प्रेरणा मिलती रहे। शास्त्र वचन है "शृणोति, जिनवचनमिति श्रावकः" अर्थात् श्रावक वह है जो जिनेश्वर भगवान् के वचनों को साधुओं के मुख से सुने। अथवा श्रावक के तीनों अक्षरों का अर्थ है कि (श्रा—) श्रद्धावान् (व—) विवेकी तथा (क—) क्रियावान्।

श्रावक के १२ व्रतों में पहले पांच अणुव्रत. बाद के तीन गुण व्रत और अन्तिम चार शिक्षा व्रत कहलाते हैं। अणु अर्थात् छोटा। साधु की अपेक्षा कम त्याग होने से इसे अणुव्रत कहा है। व्रतों के गुण जिस में हों वे गुण व्रत तथा जिनमें शिक्षा या आचार बताया हो वे शिक्षा व्रत कहे जाते हैं। इन बारह व्रतों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है :—

१. स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत—चलने फिरने वाले निर-पराध त्रस जीवों को जान बूझ कर निष्कारण पीड़ा न देना। उन पर यथाशक्य प्रहार न करना, उनका अंग छेदन तथा वध

न करना, उन पर अधिक भार न लादना, आहार, पानी में विलम्ब आदि न होने देना।

२. स्थूल मृषावाद विरमण व्रत—कन्यादि के विषय में, पशुओं के विषय में तथा चल अचल सम्पत्ति के विषय में झूठ न बोलना, अमानत में ख्यानत न करना, दूसरे की चीज न हड़पना, झूठी गवाही न देना, निन्दा चुगली न करना, भेद न खोलना आदि।

(३) स्थूल अदत्ता दान विरमण व्रत—राज्य की ओर से दण्डनीय और लोक में निन्दनीय चोरी का काम न करना, चोरी, डाका, लूट खसोट, सेंध लगाना, जेब काटना, करों की चोरी, चोर बाजारी, मिलावट आदि न करना।

(४) स्वदारा सन्तोष व्रत (पर स्त्री गमन विरमण व्रत)—परस्त्री, वेश्या, विधवा एवं कुमारी कन्या के भोग का त्याग, अप्राकृतिक काम क्रीड़ा का त्याग, अपनी विवाहित पत्नी से सन्तोष करना। तीव्र काम वासना का त्याग करना। दूसरों के विवाह में रुचि न लेना।

(५) परिग्रह परिमाण व्रत (स्थूल परिग्रह विरमण व्रत)—धन धान्य, भूमि, मकान, दुकान, बाग बगीचा, सोना चांदी, मोती माणिक्य, वस्त्र, पात्र, दास, दासी, पशु आदि पदार्थों की सीमा निश्चित करना कि इससे अधिक अपने अधिकार में न रखूंगा। अधिक हो तो धर्म और समाज हित के कार्यों में व्यय करना।

(६) दिशा परिणाम व्रत—जीवन पर्यन्त ऊपर नीचे तथा चारों दिशाओं में संसारी कार्यों के लिए जाने की मर्यादा करनी।

(७) भोगोपभोगपरिमाण व्रत—भोग की चीजें वे होती हैं जो एक वार काम में आवें। जैसे—अन्न, पान, फूल आदि। उपभोग अर्थात् वार-वार काम में आने वाले पदार्थ, जैसे—शय्या, कुर्सी, मेज, वाहन, मकान आदि। इनका उचित परिमाण निश्चित कर शेष का त्याग करना। रोज १४ नियम धारण करना। २२ अभक्ष्य, १५ कर्मादान, ३२ अनंत कार्य का त्याग करना। विना

प्रयोजन के पाप का त्याग करना।

(८) अनर्थ दण्ड विरमण व्रत—अनावश्यक पदार्थों का त्याग करना, विशेषत: दुर्ध्यान, पाप के साधनों के निर्माण और प्रदान, पापोपदेश, प्रमाद का त्याग एवं आचरण के विषय में सावधानी रखना।

(९) सामायिक व्रत—सम+आय, इन दो शब्दों से यह शब्द बना है, साँसारिक प्रवृत्तियों का त्याग कर विधि पूर्वक प्रतिज्ञा करके ४० मिनट के लिये एक स्थान पर बैठ कर ज्ञान ध्यान आदि करना तथा सम भाव (समता) की साधना करना।

(१०) देशावकाशिक व्रत—छठे व्रत में नियत की गई सीमा में प्रतिदिन अल्पकाल के लिए और संकोच करना।

(११) पौषधोपवास व्रत—दिन या रात अथवा दिन रात के लिए पूर्ण सामायिक के साथ आहार, शरीर, सत्कार, व्यापार, व्यवसाय, मैथुन का त्याग कर धर्म ध्यान, शुक्ल ध्यान, ज्ञान, साधन में तल्लीन रहना। ऐसी क्रिया आत्मा का पोषण करती है अत: इसे पौषध कहते हैं।

(१२) अतिथि संविभाग व्रत—अतिथि अर्थात् मुख्यत: साधु एवं साध्वी की आवश्यकता के अनुसार वर्ष में कम से कम एक बार दान देना। साधर्मी भाइयों की सेवा भी इसके अन्तर्गत है।

प्रश्न 489—तत्त्व कितने हैं तथा उनका क्या स्वरूप है?

उत्तर—जैन दर्शन के अनुसार विश्व के सार पदार्थों को तत्त्व शब्द से अभिहित किया गया है अथवा जो सत् (विद्यमान) है तथा सत्य है वह तत्त्व है।

तत्त्वों की संख्या नौ है—(१) जीव (२) अजीव (३) पुण्य (४) पाप (५) आश्रव (६) संवर (७) बंध (८) निर्जरा (९) मोक्ष। इन नव तत्त्वों में से जीव तथा अजीव ज्ञेय (जानने योग्य) हैं। पाप, आश्रव तथा बंध हेय (त्याग करने योग्य) हैं।

संवर, निर्जरा तथा मोक्ष उपादेय (ग्रहण करने योग्य) हैं। पुण्य उपादेय (ग्रहण योग्य) है परन्तु सर्वथा कर्मक्षय के लिए पुण्य भी हेय (त्याग करने योग्य) है। जीव प्रथम तत्त्व है तथा मोक्ष अन्तिम। जीव मोक्ष प्राप्त कर सके, इसीलिए बीच के सात तत्त्वों का निरूपण है। इनका स्वरूप इस प्रकार है :—

(१) जीव—जो जीता है, प्राणों को धारण करता है, जिसमें चैतन्य है तथा ज्ञान गुण है वह जीव है। जीव को आत्मा या चैतन्य भी कहा जाता है। जीव में सुख दुःख की अनुभूति करने की क्षमता होती है। मैं सुखी हूं, मैं दुःखी हूं, ऐसा संवेदन जड़ शरीर को नहीं होता है। इच्छा, अनुभूति, संवेदन आदि देह को नहीं होते हैं, आत्मा को होते हैं। शरीर की पांच इन्द्रियां और मन साधन हैं जिन से जीव रूप, रस आदि का ज्ञान प्राप्त करता है।

(२) अजीव—जो पदार्थ चेतनाविहीन है, सुख दुःख की अनुभूति नहीं कर सकता, वह अजीव है। अजीव को जड़ या अचेतन भी कहते हैं। जगत् के समस्त जड़ पदार्थ ईंट, चांदी, सोना, आकाश काल आदि अजीव हैं।

(३) पुण्य—जिसके द्वारा जीव को सुख का अनुभव होता है वह पुण्य है। आरोग्य, सम्पत्ति, रूप, कीर्ति, दीर्घ आयु आदि सुख के साधन जिन कर्मों के कारण उत्पन्न होते हैं वे शुभ कर्म पुण्य हैं। इन से प्राणी देवलोक आदि में जाता है।

(४) पाप—जिसके द्वारा जीव को दुःख का अनुभव होता है वह पाप है। मोक्ष प्राप्ति के लिए इसका त्याग करना आवश्यक है। पाप से नरक आदि में दुःखों की प्राप्ति होती है, लोक में निन्दा अपयश एवं कष्ट प्राप्त होते हैं।

(५) आश्रव—जीव में शुभाशुभ कर्म के आगमन का नाम आश्रव है। जैसे—एक तालाब है उस में नाली से आकर जल भरता रहता है, उसी प्रकार आत्मा रूपी तालाब में हिंसा झूठ आदि

पाप तथा पुण्य कर्म रूप जल भरता रहता है। यानि आत्मा में कर्म के आने का नाम आश्रव है। मन, वचन और शरीर के व्यापार यदि शुभ हों तो शुभ कर्म और अशुभ हों तो अशुभ कर्म का बंध होता है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो काया, वचन और मन की क्रिया रूप योग आश्रव है।

(६) संवर—संवर शब्द सम्+वृ धातु से बना है। इसका अर्थ रोकना होता है। कर्म को रोकना संवर है। संवर आत्मा की ओर आते हुए कर्मों को रोकता है। संवर आश्रव का विरोधी है। आश्रव कर्म रूप जल के आने की नाली के समान है और उसी नाली को रोक कर कर्म रूप जल के आने का रास्ता बन्द करना संवर है। आत्मा की राग द्वेष मूलक अशुद्ध प्रवृत्तियों को रोकना संवर है।

(७) बन्ध—दो पदार्थों के विशिष्ट सम्बन्ध को बन्ध कहते हैं। आत्मा के साथ कर्मों का दूध और पानी की तरह सम्बन्ध होना बन्ध है। लोक में विद्यमान कर्म वर्गणाएं राग द्वेष, मोहरूप चिकनाई के कारण आत्मा के साथ चिपक जाती है। आत्मा में राग द्वेष का प्रवाह अनादिकाल से है इसलिए अनादिकाल से ही आत्मा का शुद्ध स्वरूप कर्मों के आवरण से ढका हुआ है अर्थात् बन्ध की स्थिति में है। बन्ध के कारण जीव का स्वरूप मलीन हो जाता है, और उसे जन्म मरण के चक्कर में से होकर गुजरना पड़ता है। मिथ्यात्व, निद्रा कषाय, अविरति और योग कर्मबन्ध के कारण हैं।

(८) निर्जरा—निर्जरा का अर्थ है—कर्मों को पूर्णतया या आंशिक रूप से आत्मा से दूर करना अथवा क्षय करना। संवर आते हुए कर्मों को रोकता है तो निर्जरा के द्वारा पहले से आत्मा के साथ बंधे हुए कर्मों का क्षय होता है। जिस प्रकार तालाव के जल के आगमन को रोक देने पर सूर्य के ताप आदि से धीरे धीरे तालाव सूख जाता है, वैसे ही कर्मों के आश्रव को संवर द्वारा रोक देने पर १२ प्रकार के तप द्वारा आत्मा के साथ पहले से

बंधे हुए कर्म धीरे-धीरे नष्ट होते जाते हैं। निर्जरा के दो प्रकार हैं—(१) सकाम निर्जरा तथा (२) अकाम निर्जरा। स्वेच्छा से विवेक पूर्वक जप, तप, आदि साधना करने का नाम सकाम निर्जरा है और विना ज्ञान एवं संयम के, पराधीन अवस्था में जो तप आदि कष्ट क्रियाएं की जाती हैं वह अकाम निर्जरा है। १२ प्रकार के तप से निर्जरा होती है।

(९) मोक्ष—नव तत्त्वों में मोक्ष अन्तिम तत्त्व है। सभी कर्मों का नाश, क्षय या आत्मा के शुद्ध स्वरूप का प्रकटीकरण मोक्ष कहलाता है। मोक्ष का सीधा अर्थ हैं—समस्त कर्मों से मुक्ति। मोक्ष की प्राप्ति उस समय होती है जब संवर और निर्जरा अपने परम उत्कर्ष पर होते हैं। इस अवस्था में बंध हेतुओं का अभाव हो जाता है। घाती, अघाती सब कर्मों का क्षय होते ही आत्मा ऊर्ध्वगमन करता हुआ लोक के अग्र भाग में पहुंच कर वहीं स्थिर हो जाता है। मोक्ष में आत्मा परम सुख का अनुभव करता है। मुक्त आत्मा अनन्त काल के लिए जन्म-मरण के चक्र से छूट जाता है। उसके पुनर्जन्म का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है। मोक्ष की प्राप्ति के फलस्वरूप आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेती है। मोक्ष आत्मविकास की पूर्ण अवस्था है। प्रत्येक आत्मा ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त गुणों से परिपूर्ण है और इन्हीं गुणों की प्राप्ति व विकास का नाम ही मोक्ष है। मोक्ष की प्राप्ति मानव शरीर द्वारा होती हैं। जैन शास्त्र के अनुसार मोक्ष प्राप्त करना ही ईश्वरत्व की प्राप्ति है। मोक्ष की अवस्था में आत्मा को केवल ज्ञान अर्थात् पूर्ण ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है। मुक्ति, निर्वाण, सिद्धि आदि मोक्ष के ही नाम हैं। सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र के द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है।

प्रश्न 490–प्रभु का नव अंग पूजन करते समय मन में कैसी भावना होनी चाहिए?

उत्तर—प्रभु की नवांगी चंदन पूजा करते समय भावों (विचारों) की

शुद्धि का विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। क्योंकि किसी भी धर्म क्रिया का अर्थ मन की स्थिरता, आत्मा की शुद्धि तथा कर्मों की निर्जरा होना ही है। अतः नवाँग पूजा की महत्ता जान कर पूजा के समय निम्न भावनाएं करनी चाहिएं।

(१) चरण पूजा करते समय यह भावना होनी चाहिए कि हे वीतराग ! जिस प्रकार आपने अपने चरण कमलों से विचर कर भव्य प्राणियों को धर्मोपदेश देकर उन्हें कृतार्थ करके सेवाभाव का आदर्श उपस्थित किया है। उसी प्रकार मैं भी सेवाभावी बनूँ और मुझे भव-भव में आप के चरणों की सेवा प्राप्त हो।

(२) जानु पूजा करते समय यह भावना होनी चाहिए कि हे परमोपकारी वीतराग देव ! आप के जानु आप के ध्यान में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुए हैं। इन्हीं के बल से आप ने देश विदेश में भ्रमण कर अनेक भव्य जीवों का उद्धार किया और इन्हीं के बल से केवल ज्ञान प्राप्त किया। मैं भी इसी भांति आप के पथ का अनुसरण करूँ।

(३) कर पूजा करते समय यह भावना होनी चाहिए कि हे सर्वज्ञ ! आप ने पवित्र कर-कमलों से सांवत्सरिक दान, दीक्षा आदि देकर अनेक प्राणियों को कल्याण मार्ग पर लगाया। मैं भी इन हाथों से दान आदि पवित्र कार्यों में प्रवृत्त होता रहूँ।

(४) स्कन्ध पूजा करते समय यह भावना होनी चाहिए कि हे देवाधि देव ! जिस प्रकार आप ने अपने ऊपर आरूढ़ काम क्रोधादि कषायों को उतार करके आत्म साधना द्वारा आवागमन रूपी सागर को पार कर लिया है उसी प्रकार मुझ पर आरूढ़ राग द्वेष आदि कषाय दूर हों।

(५) शीर्ष पूजा करते समय यह भावना होनी चाहिए कि हे करुणा निधान ! शरीर में मस्तक के समान आप ने सर्वोत्कृष्ट पंचम गति को जैसे प्राप्त किया है उसी प्रकार मुझे भी यह सर्वोत्तम गति प्राप्त हो।

(६) ललाट पूजा करते समय यह भावना होनी चाहिए कि हे तीर्थपते ! जैसे आप अपनी कर्म रूपी मैल को क्षय करके इस जगत में तिलकवत् शिरोमणि बने हैं उसी प्रकार मेरे भी सब विकार दूर हों और मैं परमोच्चावस्था को प्राप्त करूं।

(७) कंठ पूजा करते समय यह भावना होनी चाहिए कि हे देवाधि देव ! आप ने अपने कंठ से अहिंसा तथा अनेकांतमय सत्य धर्म का उपदेश देकर लोक कल्याण का महान् कार्य किया है। आज भी आप की कंठध्वनि जगत के लिए परम आधार है। इसलिए मैं उसकी पूजा परमोल्लास पूर्वक करता हुआ प्रेरणा चाहता हूं कि मेरा कंठ निरन्तर आपका गुणगान करता रहे, मैं आप की मंगलमय वाणी का सच्चा अनुगामी बनूँ और आप के आदर्शों का प्रचार करूँ।

(८) हृदय की पूजा करते समय यह भावना होनी चाहिए कि हे करुणा सिन्धु ! आप की "सवि जीव करूं शासन रसी" की भावना आप के अनुपम उदार हृदय की परिचायिका है। आप के जिस हृदय में असीम क्षमा, असाधारण धैर्य, अपार सहन शीलता एवं अलौकिक समता का निवास था। उसकी पूजा करके मैं धन्य हूं। वह दिन मेरे लिए धन्य होगा जिस दिन इन गुणों का मेरे हृदय में वास होगा। पूजा करने का सार इसी में है कि मेरे हृदय में मैत्री प्रमोद माध्यस्थ्य एवं करुणा भावना का विकास हो।

(९) नाभि पूजा करते समय यह भावना होनी चाहिए कि हे प्रभु ! आप के नाभि कमल में जो गुण विद्यमान थे उन गुणों का वर्णन करने में सब असमर्थ हैं। उन गुणों की धातृ नाभि कमल का अर्चन करके मैं प्रार्थना करता हूँ कि उस गुण राशि के अंकुर मुझ में भी अंकुरित हों।

— नव अंग पूजन के दोहे —

१. चरण—जल भरी संपुट पत्र मां, युगलिग नर पूजन्त।
ऋषभचरण अंगूठड़े, दायक भव जल अन्त॥

२. घुटने—जानू बले काउसग्ग लह्यो, विचरया देश विदेश।
खड़े खड़े केवल लह्यो, पूजो जानू नरेश ॥

३. कलाइयां—लोकाँतिक वचने करी, वरस्यो बरसी दान।
कर कान्डे प्रभु पूजना, पूजो भवि बहु मान ॥

४. कन्धे—मान गयो दोय अंशथी, देखी वीर्य अनन्त।
भुजा बले भव जल तरयो, पूजो खन्ध महन्त ॥

५. चोटी—सिद्ध शिला गुण ऊजली, लोकांते भगवन्त।
वसिया तिन कारण भवी, शिर-शिखा पूजन्त ॥

६. मस्तक—तीर्थंकर पद पुण्य थी, त्रिभुवन जन सेवन्त।
त्रिभुवन तिलक समा प्रभु, भाल तिलक जयवन्त ॥

७. गला—सोलह पहर प्रभु देशना, कंठे विवर वरतूल।
मधुर ध्वनि सुर नर सुने, तिनें गले तिलक अमूल ॥

८. हृदय—हृदय कमल उपशम बले, बाल्यो राग ने रोष।
हिम दहे वन खण्ड नो, हृदय तिलक सन्तोष ॥

९. नाभि—रत्न-त्रयी गुण ऊजली, सकल सुगुण विसराम।
नाभि कमल नी पूजना, करतां अविचल धाम ॥

अंत में दोनों हाथ जोड़ कर :—

उपदेशक नव तत्त्वना, तिन नव अंग जिनंद।
पूजो बहु विधि राग से, कहे शुभ वीर मुनींद ॥

प्रश्न 491—बारह भावनाओं के नाम क्या क्या हैं, तथा उनका स्वरूप क्या है ?

उत्तर—बारह भावनाओं के नाम तथा स्वरूप निम्न प्रकार से हैं :—

(१) अनित्य भावना—संसार के समस्त पदार्थ नाशवान् हैं, कोई भी पदार्थ स्थायी नहीं है, ऐसे परिणामों को अनित्य भावना कहते हैं।

(२) अशरण भावना—संसार में जीव को कोई भी वस्तु शरण रूप नहीं है। बड़े बड़े चक्रवर्ती, राजा, सेठ, धनाढ्य, व्यक्ति भी मृत्यु के समय असहाय हो जाते हैं, ऐसे परिणामों को अशरण भावना कहते हैं।

(३) संसार भावना—संसार में निर्धन व्यक्ति धन के अभाव में दुःखी रहता है, एवं धनाढ्य व्यक्ति तृष्णाओं से दुःखी रहता हैं। अर्थात् सारा संसार दुःखी है, कोई भी व्यक्ति पूर्ण सुखी नहीं है। ऐसे परिणामों कों संसार भावना कहते हैं।

(४) एकत्व भावना—मैं अकेला ही संसार में आया हूं, और अकेला ही मरूंगा। संसार में मेरा कोई नहीं है, आत्म-विश्वास पूर्वक कृत ऐसे परिणामों को एकत्व भावना कहते हैं।

(५) अन्यत्व भावना—मैं शरीर, इन्द्रियां, मन आदि से भिन्न चैतन्य आत्मा हूं, शरीरादि नाशवान् हैं। मैं अविनाशी हूं। ऐसे परिणामों को अन्यत्व भावना कहते हैं।

(६) अशुचि भावना—यह शरीर गंदगी का पिंड है, कारण कि यह हड्डी, खून, मांस, चमड़ी का बना हुआ है। इस पर ममत्व रखना अज्ञानता है, ऐसे परिणामों को अशुचि भावना कहते हैं।

(७) आश्रव भावना—संसार में जीव पाप प्रवृत्तियों से कर्म को ग्रहण करता है। यह कर्म ही संसार परिभ्रमण का कारण बनता है, मुमुक्षु आत्माओं को पाप कर्म से बचना चाहिए। ऐसे परिणामों को आश्रव भावना कहते हैं।

(८) संवर भावना—धर्म प्रवृत्तियों द्वारा पाप कर्म से बचा जा सकता है, यदि आत्मा शुद्ध धर्माराधन करे तो समस्त कर्मों से बच सकता है। ऐसे परिणामों को संवर भावना कहते हैं।

(९) निर्जरा भावना—बारह प्रकार के तप द्वारा तथा पांच महाव्रतों एवं पांच समिति, तीन गुप्ति का पालन करते हुए

जिन परिणामों द्वारा कर्म का आंशिक तथा सर्वथा क्षय किया जाता है, उसे निर्जरा भावना कहते हैं।

(१०) लोक भावना—चतुर्दश रज्जू लोक के स्वरूप का विचार करना लोक भावना है।

(११) दुर्लभबोधि भावना—यथार्थ रूप से देव, गुरु, धर्म की श्रद्धा का होना अत्यन्त कठिन है, यथार्थ श्रद्धा के अभाव में आत्म-कल्याण असंभव है। ऐसे परिणामों को दुर्लभ वोधि भावना कहते हैं।

(१२) धर्म स्वाख्यातत्त्व भावना—धर्म की प्ररुपणा सर्वज्ञ अरिहन्तों के द्वारा हुई है। धर्म का फल अचिंतनीय है, धर्म महान् सुखों को देने वाला है। ऐसे परिणामों को धर्म स्वाख्यातत्त्व भावना कहते हैं।

प्रश्न 492–सम्यक्त्व के पाँच भूषण कौन २ से हैं?

उत्तर—१. स्थैर्य २. प्रभावना ३. भक्ति ४. जिन शासन में कुशलता ५. तीर्थ सेवा।

(१) स्थैर्य—धर्म में स्थिर रहना तथा दूसरों को भी स्थिर रखना।

(२) प्रभावना—धर्म की प्रभावना करनी, जैसे रथ यात्रा आदि निकालना तथा जैन साहित्य का प्रकाशन करना।

(३) भक्ति—देव तथा गुरु की भक्ति, सेवा, उपासना करनी।

(४) जिनशासन में कुशलता—जिनेश्वर भगवंत द्वारा आत्म-कल्याण-आत्म विकास हेतु, कही हुई क्रियाओं में कुशलता रखनी।

(५) तीर्थ सेवा—तीर्थ दो प्रकार के हैं, जंगम तथा स्थावर। साधु साध्वी जंगम तीर्थ हैं, एवं शत्रुञ्जय, समेतशिखरादि स्थावर तीर्थ हैं। इन दोनों तीर्थों की सेवा करनी चाहिए।

(योग शास्त्र)

प्रश्न 493–बाईस अभक्ष्यों के नाम क्या क्या हैं ?

उत्तर—(१) बड़ का फल (२) पीपल का फल (३) उंबर (४) अंजीर (५) काकोदुंबर (६) मद्य (७) माँस (८) मधु (९) मक्खन (१०) बर्फ (११) करा (१२) विष (१३) समस्त प्रकार की मिट्टी (१४) रात्रि भोजन (१५) बहुबीजा फल (१६) अनंत-काय (१७) आचार (१८) घोलवड़ा (१९) बैंगन (२०) अनजानाफल (२१) तुच्छफल (२२) चलितरस। इस प्रकार से २२ अभक्ष्यों के नाम जानने चाहिएं।

प्रश्न 494–सम्यक्त्व के ६७ भेद कौन २ से हैं ?

उत्तर—४ श्रद्धा, ३ लिंग, १० विनय, ३ शुद्धि, ५ दूषण, ८ प्रभावना, ५ भूषण, ५ लक्षण, ६यतना, ६ आगार, ६ भावना और ६ स्थान—ये शुद्ध सम्यक्त्व के ६७ भेद हैं।

प्रश्न 495–श्री चन्द्र केवली का नाम कितनी चौबीसीयों तक रहेगा ?

उत्तर—श्री चन्द्र केवली का नाम ८०० चौबीसियों तक रहेगा।

प्रश्न 496–मनुष्य शरीर में रुधिर आदि पदार्थ कितनी कितनी मात्रा में हैं ?

उत्तर—मनुष्य शरीर में आठ सेर रुधिर, चार सेर चर्वी, दो सेर मस्तिष्क, आठ सेर मूत्र, दो सेर विष्ठा, आधा सेर पित्त, आधा सेर श्लेष्म एवं पाव सेर वीर्य होता है। (भगवती सार श.१ उ.७)

प्रश्न 497–एक इन्द्रिय वाले जीवों के शरीर एक समान हैं, या छोटे बड़े हैं ?

उत्तर—एक इन्द्रिय वाले जीवों के शरीर एक समान नहीं हैं, छोटे बड़े हैं। वह निम्न प्रकार से हैं:—

सब से छोटा शरीर साधारण वनस्पति अर्थात् सूक्ष्म निगोद का है। उस से असंख्यात गुणा बड़ा शरीर सूक्ष्म अग्निकाय का है। उस से असंख्यात गुणा बड़ा सूक्ष्म पृथ्वीकाय का है। उस से असंख्यात गुणा बड़ा बादर वायु काय का है। उससे असंख्यात गुणा बड़ा बादर अग्निकाय का है। उस से असंख्यात गुणा बड़ा बादर पृथ्वीकाय का है। उस से असंख्यात गुणा बड़ा बादर साधारण वनस्पतिकाय का है। (जीव विचार प्रकरण)

प्रश्न 498—वैमानिक देवलोकों में रहने वाले देवताओं की जघन्योत्कृष्ट आयुष्य कितनी है ?

उत्तर—वैमानिक देवलोकों में रहने वाले देवताओं की आयुष्य कोष्ठक द्वारा समझें। कोष्ठक निम्न प्रकार से है :—

देवलोक	उत्कृष्टायुष्य	जघन्यायुष्य
१. सौधर्म	दो सागरोपम	१ पल्योपम
२. ईशान	साधिक २ सागर	साधिक १ पल्योपम
३. सनत्कुमार	सात सागरोपम	२ सागरोपम
४. माहेन्द्र	साधिक सात सागरोपम	साधिक २ सागरोपम
५. ब्रह्म	दस सागरोपम	सात सागरोपम
६. लान्तक	चौदह सागरोपम	१० सागरोपम
७. महाशुक्र	सत्रह सागरोपम	१४ सागरोपम
८. सहस्त्रार	अट्ठारह सागरोपम	सत्रह सागरोपम
९. आनत	उन्नीस सागरोपम	अट्ठारह सागरोपम
१०. प्राणत	बीस सागरोपम	उन्नीस सागरोपम
११. आरण	इक्कीस सागरोपम	२० सागरोपम
१२. अच्युत	बाईस सागरोपम	२१ सागरोपम

१३ से २१ देवलोकों (९ ग्रैवेयक) की आयु क्रमशः २३ से ३१ सागरोपम है। २२ से २५ देवलोकों (अनुत्तर) की आयु ३२ सागरोपम है तथा २६वें देवलोक (सर्वार्थ सिद्धि अनुत्तर) की

आयु ३३ सागरोपम है।

प्रश्न 499—कौन कौन से पंचेन्द्रिय जीव मर कर उत्कृष्ट कौनसी नरक में पैदा हो सकते हैं?

उत्तर—संमूर्च्छिम तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय प्रथम नरक तक, भुजपरिसर्प द्वितीय नरक तक, खेचर तृतीय नरक तक, चतुष्पाद चतुर्थ नरक तक, उरपरिसर्प पंचम नरक तक, स्त्री षष्ठ नरक तक, तथा पुरुष एवं जलचर मत्स्य सप्तम नरक तक जा सकते हैं।

(दण्डक प्रकरण)

प्रश्न 500—बारह भावना भाने वाले व्यक्तियों के नाम क्या क्या हैं?

उत्तर—बारह भावना भाने वाले व्यक्तियों के नाम जैन इतिहास में क्रमशः निम्न प्रकार से मिलते हैं :—

(१) भरत चक्रवर्ती (२) अनाथी मुनि (३) मल्लिनाथ के छः मित्र (४) नमिराजर्षि (५) मृगापुत्र (६) सनत्कुमार चक्रवर्ती (७) समुद्रपाल मुनि (८) हरिकेशी मुनि (९) अर्जुन माली (१०) शिव-राजर्षि (११) ऋषभ देव के ९८ पुत्र (१२) धर्म रुचि अणगार।

(सूयगडांग श्रु० १ अध्ययन २ उद्देशा १)

प्रश्न 501—साधु की १२ उपमाएं कौन कौन सी हैं?

उत्तर—सर्प, पर्वत, अग्नि, सागर, आकाश, वृक्ष, भ्रमर, मृग, पृथ्वी, कमल, सूर्य, पवन—ये १२ उपमाएं साधु की हैं।

([illegible])

प्रश्न 502—चन्द्र तथा सूर्य के विमान कितने बड़े हैं?

उत्तर—चन्द्र का विमान ५६/६१ योजन है, अर्थात् [illegible] माईल है। एवं सूर्य का विमान ४८/६१ योजन है अर्थात् [illegible] माईल है।

प्रश्न 503–लवण समुद्र की गहराई मध्य में कितनी है ?

उत्तर—लवण समुद्र मध्य में १००० योजन गहरा है।

प्रश्न 504–सिद्धशिला के बारह नाम कौन २ से हैं ?

उत्तर—सिद्धशिला के बारह नाम निम्न प्रकार से हैं :—

(१) ईषत् (२) ईषत्प्राग्भारा (३) तन्वी (४) तनुतरा (५) सिद्धि (६) सिद्धालय (७) मुक्ति (८) मुक्तालय (९) ब्रह्म (१०) ब्रह्मावतंसक (११) लोकप्रतिपूर्ण (१२) लोकाग्र चूलिका।

(समवायांग १२)

———

सहायक ग्रन्थ

१. आचारांग सूत्र
२. नवतत्त्व प्रकरण
३. तत्त्वार्थ
४. पन्नवणा (प्रज्ञापना)
५. ठाणांग
६. लोक प्रकाश
७. स्याद्वाद मंजरी
८. जीवाभिगम सूत्र
९. उत्तराध्ययन सूत्र
१०. अनुयोगद्वार सूत्र
११. आत्मतत्त्व विचार
१२. जीव विचार प्रकरण
१३. दण्डक प्रकरण
१४. बृहत्संग्रहणी
१५. योग शास्त्र
१६. प्रवचन सारोद्धार
१७. श्रावक प्रज्ञप्ति
१८. कर्मग्रंथ प्रथम
१९. कर्मग्रन्थ द्वितीय
२०. विशेषावश्यकभाष्य
२१. जैन सिद्धांत बोल संग्रह
२२. भगवती सूत्र
२३. समवायांग सूत्र
२४. संबोध सत्तरी
२५. अभिधान चिंतामणि कोश
२६. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र
२७. दशवैकालिक सूत्र
२८. ज्ञाता धर्मकथांग सूत्र
२९. कल्पसूत्र
३०. महाभारत
३१. मार्कण्डेय पुराण
३२. शिव पुराण
३३. उपदेश प्रासाद
३४. उपदेश रत्नाकर
३५. ऋग्वेद
३६. यजुर्वेद
३७. ब्रह्माण्ड पुराण
३८. वैराग्य भावना
३९. जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तर
४०. कम्म पयड़ी
४१. क्षेत्र समास
४२. शत्रुञ्जय कल्प
४३. विविध तीर्थ कल्प
४४. उपदेश माला
४५. राय पसेणी सूत्र
४६. सेन प्रश्न
४७. ओघनिर्युक्ति
४८. श्राद्धविधि
४९. षड्दर्शन समुच्चय
५०. रत्न सार
५१. विचार शतक
५२. दशाश्रुत स्कंध
५३. व्यवहार भाष्य
५४. वीतरागस्तव
५५. उपदेश तरंगिणी
५६. महावीर चरित्र

५७. वृन्दारू वृत्ति
५८. पंच संग्रह
५९. वसुदेव हिण्डी
६०. चैत्यवंदन भाष्य
६१. महानिशीथ सूत्र
६२. विपाक सूत्र
६३. संग्रहणी सूत्र
६४. प्रश्न व्याकरण
६५. सप्ततिशतक स्थानक
६६. आवश्यक टीका
६७. गणिविज्झापयन्ना
६८. विवेक विलास
६९. वस्तु सार
७०. बृहत्कल्प भाष्य
७१. प्रश्नोत्तर चिंतामणि
७२. हीर प्रश्न
७३. श्राद्ध दिन कृत्य
७४. औपपातिक सूत्र
७५. कथा कोष
७६. पिंड निर्युक्ति
७७. शांतिनाथ चरित्र
७८. तीर्थोद्गालिपयन्ना
७९. संघाचार भाष्य वृत्ति
८०. लघु प्रवचन सारोद्धार
८१. विशेष शतक
८२. उववाई सूत्र
८३. गुणस्थान क्रमारोह
८४. प्रत्याख्यान भाष्य
८५. व्यवहार भाष्य
८६. अभिधान राजेंद्रकोष
८७. नंदी सूत्र
८८. नियमसार
८९. रत्नकरंड श्रावकाचार
९०. पूजा पंचाशिका
९१. आचार रत्नाकर
९२. विविध प्रश्नोत्तर
९३. जैन प्रश्न मणि माला
९४. जैन धर्म एक झलक

द्रव्य सहायक

श्री आत्मानन्द जैन सभा, अमृतसर	२१००/-
लाला कस्तूरी लाल जैन, जालन्धर	१०००/-
,, पूर्ण शाह जैन, बटाला	१०००/-
,, गुलजारी लाल शोभन लाल, जैन, अम्बाला शहर	५००/-
,, तिलक चन्द जैन, जालन्धर	५००/-
,, लब्भू शाह जैन, जालन्धर	५००/-
,, श्रीमती शीला जैन, अम्बाला	५००/-
श्री शादी लाल जैन, जण्डियाला	५००/-
,, सुवर्ण कुमार जैन, कपूरथला	५००/-
,, सत्यपाल जैन, होशियारपुर	५००/-
,, सुरेन्द्र कुमार जैन, सुनाम	५००/-
,, विजय कुमार जैन, लुधियाना	२५०/-
श्रीमती अमर कौर जैन, जालन्धर	२५१/-
श्रीमती लाज वन्ती जैन, जण्डियाला	२००/-
लाला ज्ञान चन्द जैन, जण्डियाला	२५१/-
,, चरण दास जैन, जण्डियाला	२५१/-
,, लाभ चन्द जैन, फरीदाबाद	२००/-
,, चिन्त राम जैन, करतारपुर	२५१/-
,, खिमत कुमार जैन, जालन्धर	२००/-
,, विनोद कुमार जैन, अमृतसर	१००/-
,, जयकुमार जैन, जण्डियाला	१००/-
श्री आत्मवल्लभ जैन, नवयुवक मण्डल, जालन्धर	१११/-
,, अक्षयनिधि तप वाली बहिनें, नकोदर	५१/-
,, धर्म पाल जैन, अमृतसर	५१/-
,, राम पाल सिंह राजपूत नगलाशीशम	१००/-
श्री बाबू राम पार्श्व कुमार जैन, जालन्धर	५००/-
श्री विमल प्रकाश जैन, जण्डियाला गुरु	२५१/-
श्रीमति प्रकाश वती जैन धर्म पत्नि	
स्व: मनोहर लाल जैन, जीरा	१००/-
लाला केवल कृष्ण जैन, जालन्धर	५०

'जैन प्रश्न-माला' की पाण्डुलिपि देखने का सुअवसर मिला। मुनिवर श्री हेम चन्द्र विजय जी महाराज ने जिस सूक्ष्म विश्लेषण तथा पद्धति का सहारा लेकर आदि-अनादि काल से उठी चली आ रही मानवीय जिज्ञासाओं के प्रश्नचिह्नों को हटाया है उससे उनके प्रकरण, भाष्य, धर्मग्रन्थ तथा तत्त्वार्थ सूत्र आदि अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के गम्भीर अध्ययन एवं चिन्तन का स्पष्ट परिचय मिलता है।

सन्देह नहीं कि 'जैन प्रश्न माला' के अनेक गम्भीर प्रश्नों के सहज-सरल रूप में दिए गए उत्तर साधारण प्राणी के लिए रसमयी सन्तोष देते हैं।

प्रश्नोत्तर रूप में प्रस्तुत ग्रन्थ और भी अधिक सार्थक हो गया है। मुनिराज श्री हेमचन्द्र विजय जी महाराज का ऐसा प्रयत्न वन्दनीय है।

प्रो० मोहन सपरा
डी. ए. वी. कालेज
नकोदर

मुनि हेमचन्द्र विजय जी द्वारा रचित जैन प्रश्न माला के कुछ पृष्ठ देखे, पुस्तक में जैन धर्म के बड़े-बड़े गम्भीर प्रश्नों का उत्तर बड़े ही सरल ढंग से दिया गया है। यह पुस्तक जैन धर्म के विद्वद्-वर्ग के लिए तथा जिज्ञासु जनों के लिए अति उपयोगी होगी ऐसा मेरा विश्वास है। मुनिराज जी का यह प्रयास अति सराहनीय है। एवं जैन जगत में और आगमों के ज्ञान का प्रकाश करने में बड़ा सुन्दर [illegible] [illegible] आजकल के नवयुवकों के चारित्र निर्माण [illegible] [illegible] सिद्ध होगा। अपनी शुभ कामना के [illegible]

[illegible]

परमपूज्य श्रद्धवे मुनि हेमचन्द्र विजय जी महाराज
सादर चरण स्पर्श

अपरंच निवेदन है कि आपका कृपा पत्र मिला। यह जान कर प्रसन्नता हुई कि आप ने अथक परिश्रम से "जैन प्रश्न माला" नामक पुस्तक की रचना की है। विषय विवेचन की दृष्टि से यह एक अमूल्य एवं अद्वितीय संकलन होगा और धर्म प्रेमियों की महती आवश्यकता की पूर्ति कर सकेगा, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। मैं चाहता हूँ कि आप भविष्य में भी इसी प्रकार के साहित्य का सर्जन करके सामाजिक एवं धार्मिक विकास में अमूल्य सहयोग प्रदान करते रहेंगे। मैं इस पुस्तक के शीघ्र प्रकाशन के लिए शुभ कामनायें करता हूँ।

इन्द्रजीत जैन शास्त्री
एम.ए. (स्वर्णपदक प्राप्त) पी.एच.डी.
साहित्याचार्य, ज्योतिष रत्न
४२, कस्तूरवा नगर
जालन्धर छावनी (पंजाब)

विद्वान् मुनिराज श्री हेम चन्द्र विजय जी महाराज द्वारा लिखित इस पुस्तक का मैंने साद्योपान्त अवलोकन किया। इस ग्रन्थ में गणितानुयोग तथा द्रव्यानुयोग के कठिनतम प्रश्नों का प्रश्नोत्तर रूप में प्रतिपादन किया गया है। भाषा सरल है, शैली रोचक है तथा समाज एवं युवा वर्ग की ज्ञान वृद्धि के लिए विशेष उपयोगी है। हिन्दी भाषा में ऐसे साहित्य का निर्माण अत्यावश्यक है। मुनि श्री जी का प्रयास प्रशस्य है तथा भविष्य में मुनि श्री जी से अनेक जनोपयोगी कृतियों की आशा है।

राज कुमार जैन बी.ए.
लुधियाना
१-६-८५

सम्मतियां

मुनिराज श्री हेमचन्द्र विजय जी महाराज द्वारा रचित जैन प्रश्न माला के पृष्ठ मेरे देखने में आये हैं। इन्हें देखने भर से ही मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है कि इस ग्रन्थ के अन्तर्गत मुनिराज श्री जी ने जैन धर्म के विविध गूढ़ प्रश्नों का समाधान बड़ी ही सरल शैली में दिया है। इस ग्रन्थ को तैयार करने में महाराज श्री जी ने सैंकड़ों ही ग्रन्थों का अवलोकन किया होगा। ऐसा मेरा व्यक्तिगत विश्वास है।

यह ग्रन्थ जैन समाज के शिक्षित वर्ग, जिज्ञासु, पिपासु एवं विद्वान् धर्म प्रेमियों के लिए अति उपयोगी सिद्ध होगा।

मनोहर लाल मसौन
एम० ए०, एम० एड्०, साहित्यरत्न ओ० टी०
प्रान्तीय इन्चार्ज व प्रचारक—
भारतीय संस्कृति व कोमल कलाएं
नकोदर
ज़िला जालन्धर (पंजाब)

परमपूज्य श्रद्धवे मुनि हेमचन्द्र विजय जी महाराज
सादर चरण स्पर्श

अपरंच निवेदन है कि आपका कृपा पत्र मिला। यह जान कर प्रसन्नता हुई कि आप ने अथक परिश्रम से "जैन प्रश्न माला" नामक पुस्तक की रचना की है। विषय विवेचन की दृष्टि से यह एक अमूल्य एवं अद्वितीय संकलन होगा और धर्म प्रेमियों की महती आवश्यकता की पूर्ति कर सकेगा, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। मैं चाहता हूँ कि आप भविष्य में भी इसी प्रकार के साहित्य का सर्जन करके सामाजिक एवं धार्मिक विकास में अमूल्य सहयोग प्रदान करते रहेंगे। मैं इस पुस्तक के शीघ्र प्रकाशन के लिए शुभ कामनायें करता हूँ।

इन्द्रजीत जैन शास्त्री
एम.ए. (स्वर्णपदक प्राप्त) पी.एच.डी.
साहित्याचार्य, ज्योतिष रत्न
४२, कस्तूरबा नगर
जालन्धर छावनी (पंजाब)

विद्वान् मुनिराज श्री हेम चन्द्र विजय जी महाराज द्वारा लिखित इस पुस्तक का मैंने साद्योपान्त अवलोकन किया। इस ग्रन्थ में गणितानुयोग तथा द्रव्यानुयोग के कठिनतम प्रश्नों का प्रश्नोत्तर रूप में प्रतिपादन किया गया है। भाषा सरल है, शैली रोचक है तथा समाज एवं युवा वर्ग की ज्ञान वृद्धि के लिए विशेष उपयोगी है। हिन्दी भाषा में ऐसे साहित्य का निर्माण अत्यावश्यक है। मुनि श्री जी का प्रयास प्रशस्य है तथा भविष्य में मुनि श्री जी से अनेक जनोपयोगी कृतियां की आशा है।

राज कुमार जैन बी.ए.
लुधियाना
१-६-८२

'जैन प्रश्न-माला' की पाण्डुलिपि देखने का सुअवसर मिला। मुनिवर श्री हेम चन्द्र विजय जी महाराज ने जिस सूक्ष्म विश्लेषण तथा पद्धति का सहारा लेकर आदि-अनादि काल से उठी चली आ रही मानवीय जिज्ञासाओं के प्रश्नचिह्नों को हटाया है उससे उनके प्रकरण, भाष्य, धर्मग्रन्थ तथा तत्त्वार्थ सूत्र आदि अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के गम्भीर अध्ययन एवं चिन्तन का स्पष्ट परिचय मिलता है।

सन्देह नहीं कि 'जैन प्रश्न माला' के अनेक गम्भीर प्रश्नों के सहज-सरल रूप में दिए गए उत्तर साधारण प्राणी के लिए रसमयी सन्तोष देते हैं।

प्रश्नोत्तर रूप में प्रस्तुत ग्रन्थ और भी अधिक सार्थक हो गया है। मुनिराज श्री हेमचन्द्र विजय जी महाराज का ऐसा प्रयत्न वन्दनीय है।

प्रो० मोहन सपरा
डी. ए. वी. कालेज
नकोदर

मुनि हेमचन्द्र विजय जी द्वारा रचित जैन प्रश्न माला के कुछ पृष्ट देखे, पुस्तक में जैन धर्म के बड़े-बड़े गम्भीर प्रश्नों का उत्तर बड़े ही सरल ढंग से दिया गया है। यह पुस्तक जैन धर्म के विद्वद्-वर्ग के लिए तथा जिज्ञासु जनों के लिए अति उपयोगी होगी ऐसा मेरा विश्वास है। मुनिराज श्री का यह प्रयास अति सराहनीय है। एवं जैन जगत में जैन आगमों के ज्ञान का प्रकाश करने में बड़ा सुन्दर निमित्त बनेगा। विशेषकर आजकल के नवयुवकों के चारित्र निर्माण तथा ज्ञानवृद्धि में अति उपयोगी सिद्ध होगा। अपनी शुभ कामना के साथ मुनिराज जी को धन्यवाद देता हूं।

कुन्दन लाल जैन
बी.ए.,बी.टी.
प्रधान, एस.ए. जैन सभा,
नकोदर

शुद्धिपत्रक

1. पृष्ठ 77 तथा 79 आगे पीछे छप गए हैं ध्यान से पढ़ें।
2. स्थान स्थान पर सम्यक्त्व, पश्चात् प्रवृत्ति शब्दों की जगह सम्यकत्व, पश्चात्, प्रवृति छप गया है। सुधार कर पढ़ें।
3. पृष्ठ 81 से 144 तक 'वल्लभ ग्रन्थ माला' के साथ गल्ती से 'पुष्प' छप गया है, सुधार लें।

पृ.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
6	26	गणस्थान	गुणस्थान
7	6	ससारी	संसारी
10	17	अनतानंत	अनंतानंत
10	23	ससारी	संसारी
11	6	चर्तृ दश	चतुर्दश
15	3	वर्तमान विश्व	(वर्तमान विश्व)
16	10	स्थलचर	स्थलचर
17	17	चौरिन्द्रय	चतुरिन्द्रिय
18	3	तिर्यचं	तिर्यञ्च
18	6	पारिग्रह	परिग्रह
18	20	उद्दे	उद्देशा
19	4	वंध	वंध
19	16	श्रद्धाणं	श्रद्धानं
19	21	सम्यग्दृष्टि	सम्यग्दृष्टिके
20	9	भोगता	भोक्ता
20	17	अपूर्वकरण-	अपूर्वकरण,
20	18	सपरायण	संपराय
21	25	सशय	संशय
23	7	उत्तरोतर	उत्तरोत्तर
25	15	मिथ्यात्व मो०	दर्शनमो०
26	22	भाषय	भाष्य
26	27	उदय प्राप्त	उदयप्राप्त
27	9	जीव	जीव
28	6	दुषमाँधिकार	दुपमाधिकार
29	20	सागरोप्म	सागरोपम
30	6	छमस्थ	छद्मस्थ
30	22	समवसण	समवसरण
30	26	दुंदभि	दुंदुभि
31	12	प्रतिहार्य	प्रातिहार्य
31	18	त्रयि	त्रयी
33	23	प्र. 89	प्र. 98
35	6	वतमान	वर्तमान
35	21	दीप	द्वीप
36	15	अन्तरद्वीप	अन्तर्द्वीप
36	26	पलयोपम	पल्योपम
37	2	पलयोपम	पल्योपम
38	25	अध्यात्मिक	आध्यात्मिक
39	15	चक्रवर्त्वि	चक्रवर्तित्व
40	6	सधि	संधि
40	15	चरित्र	चारित्र

पृ.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
40	22	जघन्यतः एकान्तरे इसकी......है।	इसकी......है जघन्यतः एकांतरे
40	24	उपयुक्त	उपर्युक्त
41	11	यथाख्यात	यथाख्यात
42	15	विक्लेन्द्रिय	विकलेंद्रिय
44	12	विक्लेन्द्रिय	विकलेंद्रिय
44	7	युगयत्	युगपत्
44	10	वड़ने	वढ़ने
44	24	उसकी	उसका
46	3	वैताढ़्य	वैताढ्य
48	7.10	अभ्यंतर	आभ्यंतर
48	8	अनोदरी	ऊनोदरी
48	8	कायकलेश	कायक्लेश
48	10	प्रायश्चित	प्रायश्चित्त
48	16	सम्भाव	समभाव
48	24	गुण	गुणा
50	16	व्रह्मचर्य	ब्रह्मचर्य
52	4	तिर्यक	तिर्यक्
52	12	उद्‌श्य	उद्‌देश
53	18	जाग्रत	जागृत
54	16	जढ़	जड़
57	14	चर्णो	चरणों
57	26	पमाय	पर्यायए
58	4	जाग्रत	जागृत
59	अन्तिम	क्रिया	क्रिया
60	1	अधे	अंधे
60	10	संसारिक	सांसारिक
60	13	रौद्ध	रौद्र
60	27	54	584
62	19	खण्ड से	खण्ड में
62	28	चंद्रायण	चांद्रायण
63	17	वाह्म	बाह्य
64	1	ग्रेवेंवक	ग्रैवेयक
65	16	इंद्रियों का	इंद्रियों के
65	22	सत्यानिद्धि	स्त्यानर्द्धि
66	7	व्राह्मणी	ब्राह्मणी
68	3	लिछवि	लिच्छवि
68	10	वैश्या	वेश्या
68	15	क्षमा-श्रमण	क्षमाश्रमण
68	17	गीण	गणि
68	18	चमत्कारिक	चामत्का०
69	19,23,25	इर्या	ईर्या
70	23,27	पारिष्ठा	पारिष्ठापणिका
71	4	आर्त	आर्त्त
71	4	रौद्ध	रौद्र
71	7	निवंध	निबंध
71	22,03	संसारिक	सांसारिक
71	24	तपादि आदि	तप आदि
72	16	उतरोत्तर	उत्तरोत्तर
72	16	उज्जवल	उज्ज्वल
72	17	प्रशाद	प्रासाद
73	13	मुख्यतः	मुख्यता
76	8	हुए। इस चौबीसी में पहले भी तीर्थंकरों की	

पृ.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
			अनंत चौवीसिया हो चुकी हैं, जिन्होंने जैन धर्म का प्रचार किया।
79	11	सवथा	सर्वथा
79	14	सचित्र	सचित्त
79	20		नहीं करना। तथा वर्षा काल में मंदिर उपाश्रय के निमित्त को छोड़ कर महल से वाहर न जाना।
79	24	विवेक	विवेकी
80	9	प्रमु	प्रभु
82	3	पेढ़ी	पयढ़ी
82	9	शला का	शलाका
82	23	भिन्न	भिन्न-२
82	27	श्वोसोछ	श्वासोछ्
84	1	2	28
84	24	अभिह्या	अभिहया
86	8	ओघनियुक्ति	ओघनिर्युक्ति
86	19	तिर्यम्	तिर्यक्
87	25	प्रायश्चित	प्रायश्चित्त
88	23	धर्मदास	धर्मदास
89	7	ममय	समय
89	9	भवगती	भगवती
91	1	स्थानस्थ	स्थानस्थ
91	17	दड	दंड
91	18	निशीथ्य	निशीथ
94	18,20,21	अचित	अचित्त
95	11	विशँति	विंशति
96	7	शकरादि	शर्करा आदि
96	13	संचित	सचित्त
96	22	परमार्थी	प्रमाण
97	13	धनिष्टा	धनिष्ठा
98	14	भाग	भाग प्रकाशित
99	25	उडावत्यं	उडावणत्यं
101	12	श्राविकी	श्राविका
101	27	अधकार	अंधकार
102	21.22	सोधर्मेद्र	सौधर्मेन्द्र
105	2	लव्धि	लब्धि
106	9	वैताढय	वैताढ्य
106	21	चक्रायुद्ध	चक्रायुध
109	6	प्ररूपणा	प्ररूपणा
109	23,26	चारित्र	चरित्र
109	26	वह्मदत्त	ब्रह्मदत्त
115	21	$\frac{1}{3}$	$\frac{2}{3}$
116		अंतिम संपरायन	सपंराय
117	2	कम	कर्म
119	22	896	396
121	7	करेमी	करेमि
121	25	ग्रेवैयक	ग्रैवेयक
125	25	ईशाना वतसक	ईशानावतंसक
127	13	(१)	(९)
127	19	वाला	वाला
127	19	१६८०	—१९८०
130	28	केवल	केवल
131	25	वास	पास

पृ.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
132	3	वो 29एकों	वो भी कभी 29 आंकड़ों
132	3	वश	वश
134	4	मने	माने
134	19	वल	बल
134	29	गणों	गुणों
135	16	वाले	वाले
136	4	यावत्	यावत्
136	10	विकल्प	विकल्प
138	9	नये	नय
139	11	नाटकी	नारकी
140	15	मघवा	मघवा
141	9,13	वासुदेव	वासुदेव
141	26	नवमें	नवमें
142	20	वर्षे	वर्ष
144	14	षिता	पिता
145	22	मलेच्छ	म्लेच्छ
145	27	पकता	पकता है
146	2	ज्ञानवरणीय	ज्ञानावरणीय
150	5	प्रचीन	प्राचीन
153	17	हिंस्यात	हिंस्यात्
153	अंतिम	ऋभ	ऋषभ
154	19	भग्वद्	भगवद्
157	6	ज्योतिषी देव तथा	तथा
157	14	चूड़ी	चूढी
158	20	कालेदधि	कालोदधि
159	18	र्स्वथा	सर्वथा
160	8	घूप	धूप
161	5	पूर्ण	पूजा
163	3	निद्रा	मिथ्यात्व
167	6	योज	योजन
175	1	विरताविति	विरताविरति
175	19	देशीन	देशोन
175	25	अनागार	अनगार
176	2	तथादि	तथाहि
186	3	हस हस	हंस हंस
189	13	कलपोपन्न	कलपोपयन्न
189	20	परमाधामी	परमाधर्मिक
190	10	यां	तथा
190	11	पयायों	पर्ययायों
190	16	चरित्र	चारित्र
192	2	चीजों	प्रवृतियों
197	28	कार्य	काय
198	6	व्रत	व्रत
198	8	40 मिनट	48 मिनट
200	1	यानि	अर्थात्
200	21	निद्रा	अविरति
200	21	कषाय	प्रमाद
200	21	अविरति	कषाय
203	28	युगलिग	युगलिक